THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

महावीर-हिन्दी-जैन-ग्रंथमाला-ग्रंथ पहिला ।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य रचित-

त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र सप्तम पर्वका हिन्दी अनुवाद-

जैन रामायण ।

अनुवादक-

श्रीयुत—कृष्णलाल वर्मा 'प्रेम'

प्रकाशक—

ग्रंथ-भंडार, माटूँगा, (बम्बई ।)

2806/H
3

25930

वीर निर्वाण—२४४६

पुस्तक मिलने का पता— [मूल्य चार रुपये

प्रकाशक—

कृष्णलाल वर्मा,

व्यवस्थापक ग्रंथ-भंडार,

लेडी हार्डिज रोड, माटूँगा (बम्बई)

मुद्रक—

श्रीयुत चिन्तामण सखाराम देवळे,

बम्बई वैभव प्रेस, सेंढर्स्टरोड,

गिरगाँव, बम्बई ।

UNIVERSITY LIBRARY
REGISTERED
JAN 28 1924
ALLAHABAD

समर्पण ।

जिन्होंने इस ग्रंथकी सवासौ प्रतियाँ एक साथ
खरीदकर हमें इसको प्रकाशित कर-
नेमें और महावीर-हिन्दी-जैन-
ग्रंथ-मालाको प्रारंभ कर-
नेमें सक्षम किया
उन्हीं
ऑनरॅरी मजिस्ट्रेट, विद्याप्रेमी सेठ
केसरीमलजी गूगलिया
धामक निवासीके करकमलोंमें
यह ग्रंथ-रत्न सादर
समर्पित किया
जाता है ।

कृष्णलाल वर्मा.

प्रेमोपहार ।

श्री ______________________

____

के करकमलोंमें

____

____

द्वारा पठानार्थ

प्रेमपूर्वक

सादर समर्पित ।

प्रस्तावना ।

कलिकाल सर्वज्ञके नामसे ख्यात प्रातःस्मरणीय श्रीमद् **हेमचंद्राचार्य**के नामसे जैन समाजका बहुत बड़ा भाग परिचित है। बच्चा बच्चा परिचित है, यह कहनेका हम साहस नहीं कर सकते। क्योंकि राजपूतानामें, वराड प्रान्तमें और मुगलाईमें हजारों, लाखोंकी संख्या ऐसे लोगोंकी है कि, जो अपने सब तीर्थंकरोंकी बात तो दूर रही मगर वर्तमानमें जिनका शासन है, उन **महावीरस्वामी**का, काम की कौन कहे, नाम भी नहीं जानते। नाम और काम तो दूर रहा हजारों, ऐसे हैं जो यह भी नहीं जानते कि, वे जैनी हैं।

ऐसी दशा होनेपर भी हिन्दी भाषा बोलनेवाले श्वेतांबर समाजमें हजारों ऐसे हैं जो **हेमचंद्राचार्य**का नाम जानते हैं; तीर्थंकरोंका भी नाम जानते हैं; परन्तु वे उनके कार्योंसे सर्वथा अजान हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें अपने पूर्व पुरुषोंके चरित्र जाननेको मिलें। जिससे वे भी उनके समान अपने चरित्रोंको संगठन कर सकें। मगर अपनी मातृभाषा हिन्दीमें उनके लिए कोई साधन नहीं। जितने भी ग्रंथ हैं वे सब संस्कृतमें मागधीमें या गुजरातीमें हैं। इसलिए हिन्दी भाषी भाइयोंकी इच्छा; जिज्ञासा; पूर्तिके लिए हमने यह प्रयत्न किया है।

मूल ग्रंथ श्रीमद् हेमचंद्राचार्य द्वारा लिखा गया है। हेमचंद्राचार्यने त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्र, नामा ग्रंथ लिखा है। उसमें दस पर्व हैं। प्रत्येक पर्वमें निम्न प्रकारसे चरित्र आये हैं।

१–२४ तीर्थंकर; १२ चक्रवर्ती; ९ बलदेव; ९ वासुदेव; और ९ प्रति वासुदेव; इनकी जोड़ ६३ होती है। इन्हींके चरित्रोंका इसमें वर्णन है। इनको शलाका पुरुष कहते हैं। इसी लिए इस ग्रंथका नाम 'त्रिषष्टिशलाका'–पुरुष-चरित्र रक्खा गया है।

१–प्रथम पर्वमें प्रथम तीर्थंकर श्री **ऋषभदेव** भगवान और **चक्रवर्ती** भरतके चरित्र हैं।

२–दूसरे पर्वमें दूसरे तीर्थंकर श्री **अजितनाथ** भगवान और दूसरे चक्रवर्ती **सगरके** चरित्र हैं।

३–तीसरे पर्वमें तीसरे तीर्थंकर **श्रीसंभवनाथ**; चौथे **श्रीअभिनंदन**; पाँचवें **श्रीसुमतिनाथ**; छठे **श्रीपद्मप्रभु**; सातवें **श्रीसुपार्श्वनाथ**; आठवें **श्रीचंद्रप्रभु**; नवें **श्रीसुविधिनाथ** (पुष्पदन्त) और दसवें **श्रीशीतलनाथ**; भगवानके; ऐसे कुल मिलाकर आठ तीर्थंकरोंके चरित्र हैं।

४–चौथे पर्वमें पाँच तीर्थंकरोंके दो चक्रवर्तियोंके, पाँच वासुदेवोंके, पाँच बलदेवोंके और पाँच प्रतिवासुदेवोंके ऐसे सब मिलाकर २२ महापुरुषोंके चरित्र हैं। उनके नाम इस तरह हैं:—

पाँच तीर्थंकरोंके नाम—ग्यारहवें **श्रेयांसनाथजी**; बारहवें **वासुपूज्यजी**; तेरहवें **विमलनाथजी**; चौदहवें **अनंतनाथजी** और पन्द्रहवें **धर्मनाथजी**।

दो चक्रवर्तियोंके नाम—तीसरे **मघवा** और चौथे **सनत्कुमार**।

पाँच वासुदेवोंके नाम—प्रथम **त्रिपृष्ट**; दूसरे **द्विपृष्ट**; तीसरे **स्वयंभू** चौथे **पुरुषोत्तम** और पाँचवें **पुरुषसिंह**।

पाँच बलदेवोंके नाम—प्रथम **अचल**; दूसरे **विजय**; तीसरे **भद्र**; चौथे **सुप्रभ** और पाँचवें **सुदर्शन**।

पाँच प्रतिवासुदेवोंके नाम—प्रथम **अश्वग्रीव**; दूसरे **तारक**; तीसरे **मेरक**; चौथे **मधु** और पाँचवें **निशंभु**।

५–पाँचवें पर्वमें सोलहवें तीर्थंकर श्री **शान्तिनाथ** भगवान और पाँचवें चक्रवर्ती **शान्तिनाथके** चरित्र हैं।

६–छठे पर्वमें चार तीर्थंकरोंके; चार चक्रवर्तियोंके; दो वासुदेवोंके; दो बलदेवोंके और दो प्रतिवासुदेवोंके; ऐसे कुल मिलाकर १४ महा-पुरुषोंके चरित्र हैं। उनके नाम ये हैं:—

चार तीर्थंकरोंके नाम—सत्रहवें **श्रीकुंथुनाथजी**; अठारहवें **श्रीअरनाथजी**; उन्नीसवें **श्रीमल्लिनाथजी** और बीसवें **श्रीमुनि सुव्रतस्वामी**।

चार चक्रवर्तियोंके नाम—छठे **कुंथुनाथ**; सातवें **अरनाथ**; आठवें **सुभूम** और नवें **महापद्म**।

दो वासुदेवोंके नाम—छठे **पुरुषपुंडरीक** और सातवें **दत्त**।

दो बलदेवोंके नाम—छठे **आनंद** और सातवें **नंदन**।

दो प्रतिवासुदेवोंके नाम—छठे **बलिराजा** और सातवें **प्रल्हाद**।

७–सातवें पर्वमें इक्कीसवें तीर्थंकर **श्रीनमिनाथ** भगवानका; दसवें चक्रवर्ती **हरिषेणका**; ग्यारहवें चक्रवर्ती **जयका**; और आठवें वासुदेव **लक्ष्मणका**; आठवें बलदेव **रामका** और आठवें प्रतिवासु-देव **रावणका**; ऐसे सब मिलाकर छः महापुरुषोंके चरित्र हैं।

८–आठवें पर्वमें बाईसवें तीर्थंकर **श्रीनेमिनाथ** भगवानका; नवें वासुदेव **श्रीकृष्णका**; नवें बलदेव **श्रीबलभद्रका** और नवें प्रति वासुदेव **जरासंधका**; ऐसे सब मिलाकर चार महापुरुषोंके चरित्र हैं।

९–नवें पर्वमें, तेईसवें तीर्थंकर **श्रीपार्श्वनाथ** भगवान और बार-हवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्तके चरित्र हैं।

१०–दसवें पर्वमें अन्तिम, चौबीसवें तीर्थंकर श्री **महावीर** स्वामीका–(श्रीवर्द्धमान स्वामीका) चरित्र है।

इनके सिवाय और भी सैकड़ों कथायें, प्रसंगोपात इन पर्वोंमें आ हैं। इस ग्रंथको हम जैन महापुरुषोंके चरित्रोंका भंडार कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रस्तुत पुस्तक सातवें पर्वका अनुवाद है। सातवें पर्वमें तेरह स हैं। मगर हमने दस सर्गोंका ही अनुवाद किया है। क्योंकि यह तक राम, लक्ष्मण और रावणके चरित्र हैं। शेष तीन सर्गोंमें दूस चरित्र हैं। इस लिए हमने उनको छोड़ दिया है। अगर हम ती सर्ग नहीं छोड़ देते तो इस ग्रंथका नाम '**जैनरामायण**' रखन सार्थक नहीं होता।

गुजराती भाषामें दो जगहसे इस पर्वके अनुवाद प्रकाशित हु हैं। दोनों हमारे पास हैं। पहिला अनुवाद बम्बई निवासी चमनला साँकलचंद मारफतियाने संवत १९५२ में लिखकर प्रकाशित कराय था, और दूसरा अनुवाद संवत १९६४ में भावनगरकी जैनधर्मप्र सारक सभाने। पहिले अनुवादमें अनुवादकने स्वाधीनतासे काम लिय है। दूसरे अनुवादमें आचार्य महाराजके शब्दोंके अतिरिक्त और को नवीन बात नहीं मिलाई गई है। हमें भावनगरकी सभावाला अनुवा बहुत पसंद आया। इसलिए इसी अनुवादसे हमने इस ग्रंथका अनु वाद किया है। हाँ लिखते हुए जो कोई बात हमें संदेह-जनव मालूम हुई, या गुजरातीमें हम न समझ सके उसको हमने मूलसे देख लिया है। ऐसे कई प्रसंग आये हैं।

गुजराती अनुवादकी अपेक्षा हिन्दी अनुवादमें एक बातकी विशे षता है। वह विशेषता यह है कि, आचार्य महाराजने इसमें जितन नीतिके वाक्य दिये हैं; हमने उन सबको मूल सहित लिखा है अर्थात मूल संस्कृत पद लिखकर नीचे ब्रेकेटमें उसकी हिन्दी लिख

दी है । इससे संस्कृतके नीति वाक्य जबानी याद कर पाठक बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं ।

श्रीयुत चमनलाल सांकलचंदके अनुवादमें राक्षसवंशकी मूल उत्पत्तिके विषयमें कुछ उल्लेख है । यद्यपि इसका होना हम भी आवश्यकीय, समझते हैं; तो भी हमने अपने अनुवादमें उसका उल्लेख नहीं किया है । इसके दो कारण हैं; प्रथम तो हमको आचार्य महाराजकी कृतिमें कुछ इधर उधर करना अभीष्ट नहीं था । दूसरे हम हेमचंद्राचार्य-रचित संपूर्ण त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्रका अनुवाद करना चाहते हैं। दूसरे पर्वमें सगर चक्रवर्तीके अधिकारमें ये सब बातें आगई हैं । इसलिए पाठक वहाँसे ये बातें देख सकेंगे ।

अपने अनुवादसे हमें हिन्दी करनेकी अनुमति दी इसके लिए हम जैनधर्म-प्रसारक सभा भावनगरके कृतज्ञ हैं ।

इस ग्रंथकी आलोचना लिखकर, इसकी खूबियोंपर विशेष प्रकारसे प्रकाश डालनेकी हमारी इच्छा थी; मगर उस इच्छाको हम शीघ्रताके कारण कार्यरूपमें परिणत नहीं कर सके । दूसरे हमने ऐसा करना अपना अनुचित साहस भी समझा । क्योंकि एक महान आचार्यकी कृति पर आलोचना करने जितना सामर्थ्य अबतक हममें नहीं है ।

हम यह भली भाँति समझते हैं कि कलिकाल सर्वज्ञके नामसे ख्यात आचार्य महाराजकी कृतिको ठीक ठीक हिन्दीमें लिखनेकी हमारी योग्यता नहीं है; यह कार्य किसी विद्वान साधु या श्रावकको करना चाहिए था; मगर किसीने नहीं किया । हमने दो चारोंको लिखा भी मगर किसीने आशाप्रद उत्तर नहीं दिया । इसलिए, अपने हिन्दी भाषी भाइयोंकी इच्छाको तृप्त करनेके लिए; हिन्दी

बोलनेवाले अपने पूर्वजोंके चरित्रोंसे परिचित होकर अपना चारि
उन्नत बना सकें इस लिए; हमने यह साहस किया है । अगर हम
हिन्दी भाषी भाइयोंने इससे लाभ उठाया तो हम अपने साहस
शुभ और अपने परिश्रमको सफल समझेंगे ।

अनुवादमें कई त्रुटियाँ होंगी । हम इसको स्वीकार करते हैं ।
भी उनके लिए क्षमा माँगना नहीं चाहते, क्योंकि हमने अपने
अयोग्य समझते हुए भी जब साहस किया है, तब उसमें होनेवा
भूलोंकी क्षमा कैसी ? हाँ विद्वान सज्जन इस भूल भरे अनुवाद
देखकर यदि कोई नवीन उत्तम अनुवाद करेंगे या हमारी भूलें ह
बतानेकी कृपा करेंगे, तो हम उनके बहुत कृतज्ञ होंगे ।

हमारे हिन्दी भाषी जैन भाई इस अनुवादसे लाभ उठावें य
आशा रखनेवाला—

३४ डालमिया बिल्डिंग
लेडी हार्डिंज रोड,
माटुँगा—बम्बई ।

विनीत—
कृष्णलालवर्मा 'प्रेम'

धामकनिवासी, आनरेरी मजिस्ट्रेट,

सेठ केसरीमलजी गूगलिया ।

The Manoranjan Press. Bombay.

सेठकेसरीमलजी गूगलियाका परिचय ।

आप धामकके रहनेवाले हैं। गंभीरमलजी बख्तावरमलजीके नामसे आपकी दुकान चलती है। आपके यहाँ बहुत बड़ी जमींदारी है। लेन देनका व्यापार है। यही खास आमदनीका जरिया है। रूईकी गाँठें भी बँधवाकर आप बम्बईमें भेज दिया करते हैं। आपको लोग लग भग तीस चालीस लाखकी आसामी बताते हैं।

आपका जन्म संवत १९४७ के बै. सु. ४ को एक साधारण गृहस्थके घरमें हुआ था; परन्तु आपका पुण्य बड़ा प्रबल था, इस लिए धामकमें आप गंभीरमल बख्तावरमलके यहाँ सात आठबरस-हीकी आयुमें गोद आगये।

यद्यपि आपकी शिक्षा बहुत ही साधारण हुई है; तथापि विद्यासे आपको बहुत बड़ा प्रेम है। आप विद्याप्रचारके कार्यमें और ज्ञान-प्रचारके कार्यमें यथेष्ट भाग लेते हैं। पुस्तक प्रकाशकोंको भी आप इकट्ठी पुस्तकें खरीदकर उत्साहित किया करते हैं। आपके यहाँ ज्ञान प्रचारके उद्देश्यको लेकर गये हुए व्यक्तिको कभी निराश नहीं होना पड़ता।

आपका पहिला ब्याह संवत १९६१ में हुआ था। नौ बरसके बाद यानी संवत १९७० में आपकी पहिली पत्नीका देहान्त होगया।

शिक्षाके प्रभावसे आपने यह बात भली प्रकारसे जान ली थी, कि अपने जीवन भरका साथी यदि किसी को बनाना हो, तो पहिले उसके गुण स्वभाव और रूप रंगसे परिचय होना चाहिए; बादमें उसे अपना साथी बनाना चाहिए। जहाँ इसके विपरीत व्यवहार होता है, वहाँ प्रायः सुख शान्तिका अभाव रहता है। इसलिए दूसरा ब्याह आपने इसी तरहसे किया था। यानी

पहिले आपने लड़कीको देखा, उसके गुणस्वभावसे परिचय पाया, तब ब्याह किया। इस प्रकारसे ब्याह करनेकी इच्छाहीसे आपने बड़े बड़े लखपति घरोंपर सम्बंध न करके एक साधारण गृहस्थके घर संबंध किया था। इस तरहसे ब्याह करनेके कारण आपकी, गृहिणिके साथ बहुत अच्छी पटती है। प्रायः घरोंमें जो झगड़े देखे जाते हैं, वे आपके घरमें कभी नहीं होते। बड़े आनंद और प्रेमके साथ आपके दिन बीतते हैं।

मारवाड़ी समाजमें इस तरहसे ब्याह करना बहुत ही साहसका काम है। मगर आपने वह साहस किया और वर्तमान पीढीके युवकोंके सामने एक उत्तम उदाहरण रक्खा।

आपके अबतक चार सन्तानें हुईं। दो पहिली स्त्रीसे और दो वर्तमानसे। पहिलीके दोनों लड़कियाँ थीं और वर्तमानके दोनों पुत्र। दैववशात तीन संतानें मरगईं। वर्तमानमें एक बरसकी आयुका एक लड़का है।

आप प्रायः सब पेशेवाले लोगोंको आश्रय और उत्तेजना देते हैं। आपके यहाँ इस समय एक पहलवान और एक गवैया है। पहलवान सर्कसके काम भी अच्छे किया करता है। सर्कसके कार्यके लिए आपने और भी दो तीन मनुष्य रख रक्खे हैं। दो घोड़े भी आपने इसीके लिए खरीदे हैं और वे अच्छे तैयार किये गये हैं।

संवत १९७० में आप अमरावतीसे एक गानेवालेको भी लाये थे। तबसे वह आपहीके पास है।

पहलवान भी लगभग दस बरससे आपके यहाँ रह रहा है।

आपके पहिले पुत्रका देहान्त हो गया, तबसे आपने खेलतमाशे–जैसे सर्कस, कुश्ती आदि–कराना बहुत कम कर दिया। कम क्यों, बिल्कुल ही बंद कर दिया, कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

आपने तीन बिरहमन लड़कियोंके धर्मार्थ ब्याह करा दिये। गवैयेका और पहलवानका भी आपने खर्चा देकर ब्याह करवाया। गये बरस अपने सालेका ब्याह भी आपहीने करवा दिया था। कई औरोंके ब्याहोंमें भी आपने थोड़ी बहुत सहायताएँ दी हैं।

आप स्थानकवासी जैन हैं; परन्तु दान देते समय आप इस बातका खयाल नहीं रखते। जैसे आप स्थानकवासी समाजके कार्योंमें मदद देते हैं, वैसे ही मूर्तिपूजक समाजको सहायता देनेमें भी आप आगा पीछा नहीं किया करते हैं। सर्व साधारणके कार्योंमें भी आप इसी भाँति सहायता दिया करते हैं। यह बात आपकी दी हुई सहायताकी निम्न लिखित सूचिसे भली प्रकार पाठकोंके समझमें आजायगी।

दानसूची।

१०००) भाँदकजी तीर्थमें मंदिर आदि तैयार करानेको।
५०१) पंचराज नासिक।
७००) जल गाँवकी पाँजरापोलमें।
७५०) जलगाँवकी धर्मशाळामें।
१००) मारवाड़ी हितकारकमें।

१७५०) अमरावतीके मुकदमेमें। (यह मुकदमा स्थानकवासी मुनि कुंदनमलजीपर अमरावतीनिवासी फतेराजजी फलोदियाने चलाया था।)

३०००) रुपये अन्यान्य ज्ञान प्रचार, स्कूल आदिके कार्योंमें।

इस दानके अतिरिक्त लड़ाईमें जो लोग मारेगये या निकम्मे होगये उनकी सहायताके लिए जो फंड खुला था, उसफंडमें, एक चाँदीका पानदान खरीदकर, आपने २१००) रुपये दिये थे।

शित करनेके लिए न दे सके। कारण यह है कि, हम किसी ऐसे पुस्तक प्रकाशकको नहीं जानते थे कि, जो हिन्दी भाषाके श्वेतांबर ग्रंथ प्रकाशित करता हो। दैविक विपत्तिमें पड़जानेके कारण, हस्त-लिखीत जीव विचारकी पुस्तक–जो हमने लिखी थी–और एक तत्व-चर्चाकी नोट बुक–जिसमें कुछ तात्विक विषयोंके प्रश्न और उनके उत्तर थे–खोये गये । हमें भी कई विपत्तियोंका मुकाबिला करना पड़ा। अस्तु।

श्वेतांबर समाजका बहुत बड़ा भाग राजपूतानेमें है। राजपूतानाकी प्रधान बोली हिन्दी है। उसी भाषामें श्वेतांबर आम्नायके ग्रंथोका अभाव हरेक धर्मप्रेमीको जरूर खटकता है। हाँ इतना है कि जो धर्मकी कुछ परवाह नहीं करते हैं, वे इन बातोंकी भी कुछ परवाह नहीं करते हैं। इतना ही क्यों ? वे इन बातोंको फिजूल भी समझते हैं। मौका मिलनेपर ऐसे प्रयत्नोंकी वे निन्दा भी करते हैं । हमें भी ऐसे व्यक्तियोंसे मिलनेका काम पड़ा है। और उनसे उल्टी सीधी बातें सुननी पड़ी हैं।

मगर ऐसे व्यक्तियोंसे–धर्मविमुख लोगोंसे–डर कर अपना प्रयत्न छोड़देना कायरता है; धर्मविमुख होजाना है। यही सोचकर हमने अपना प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नको पूर्ण करनेमें जिन लोगोंने हमें खास तरहसे उत्साह प्रदान किया है–जिनके नाम धन्य-वादके पृष्ठमें आगये हैं–उनके हम कृतज्ञ हैं। तीन व्यक्तियोंके हम खास तरहसे कृतज्ञ हैं। (१) धामकनिवासी सेठ केसरीमल-जी गूगलिया (२) दारव्हा निवासी सेठ कुंदनमलजी कोठारी और (३) बंबईनिवासी पंडित उदयलालजी कासलीवाल । क्योंकि प्रथम महाशयने सवासौ प्रतियाँ एक साथ खरीद कर और दूसरे और तीसरे महाशयने अमुक समयतकके लिए रुपयोंकी सहायता देकर, इस ग्रंथको प्रकाशित करनेका कार्य बहुत सरल बना दिया

इस महावीर-हिन्दी-जैन-ग्रन्थमालामें हमने खास तरहसे प्राचीन श्वेताम्बर-आचार्योंके बनाए हुए ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित करना स्थिर किया है। मालाका प्रथम ग्रंथ, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य रचित त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्रके सातवें पर्वका हिन्दी अनुवाद पाठकोंके हाथमें है। दूसरा ग्रंथ इन्हीं आचार्य महाराजके बनाये हुए त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्र प्रथम पर्वका अनुवाद होगा। उसमें श्री **ऋषभदेव** भगवानका और उनके पुत्र **भरतचक्रवर्तीका** जीवनवृत्तान्त है।

मालाको सचित्र निकालनेका हमारा विचार है। प्रस्तुत ग्रंथमें शीघ्रताके कारण हम केवल एक ही चित्र दे सके हैं। वह चित्र है, '**सीताका अग्निप्रवेश**'। अगले ग्रंथमें हम विशेष चित्र देनेका प्रयत्न करेंगे।

सर्व साधारणके सुभीतेके लिए, थोड़े पढ़े लिखे हमारे मारवाड़ी भाई भी सरलतासे पढ़ सकें इसलिए हमने ग्रंथमें बड़े टाइपका उपयोग किया है।

आशा है पाठक हमारे इस प्रयत्नको अपनायँगे और मालाके स्थायी ग्राहक बन हमारे उत्साहको बढ़ायँगे।

मालाके स्थायी ग्राहकोंके नियम।

१—आठ आने जमा करानेसे स्थायी ग्राहक होते हैं।

२—स्थायी-ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तक पौनी कीमतमें दी जाती है।

३—स्थायी-ग्राहकोंको मालाकी ४) रु. की पुस्तकें वर्षभरमें जरूर लेनी पड़ती हैं। विशेष लेना न लेना उनकी इच्छा पर निर्भर है।

४–इस मालामें केवल श्वेतांबर जैनाचार्य रचित ग्रंथोंका हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित होता है ।

५–जो सज्जन एक ग्रंथकी एक साथ तीन या ज्यादा प्रतियाँ लेना चाहते हैं, और ग्रंथ छपनेके पहिले १) रु. पेशगी भेज देते हैं, उनका नाम धन्यवादपूर्वक प्रकाशित किया जाता है । रुपया पुस्तकोंकी कीमतमें मुजरे दे दिया जाता है ।

६–ग्रंथ तैयार होने पर, कार्डद्वारा उसके मूल्य आदिकी सूचना दी जाती है और फिर ग्रंथ पौनी कीमतकी वी. पी. से भेजा जाता है ।

७–जो विनाकारण ग्रंथ वापिस लौटा देते हैं उनको डाक व्यय देना पड़ता है ।

८–स्थायी ग्राहक-श्रेणीसे नाम निकलवा लेनेवालोंके ।।) आने वापिस नहीं दिये जाते ।

पाठक ! हमारे लिए, महावीर हिन्दी-जैन-ग्रंथमालाके लिए आपके लिए; सबहीके लिए; यह आनंदकी बात है कि, आज महावीर भगवानका निर्वाणोत्सव है । इसी उत्सवके दिन अपनी ग्रंथमाला प्रारंभ हुई है । इसलिए हमें आशा है कि, माला सदा फली फूली रहेगी और पाठक जैसे भगवानके निर्वाणोत्सवसे प्रेम करते हैं उसी तरह उनकी दिव्यवाणी सुनानेवाली इस ग्रंथमालासे भी प्रेम करेंगे ।

पत्रव्यवहारका पता–

व्यवस्थापक ग्रंथ भंडार,
माटूंगा (बम्बई)
कार्तिक विद ऽऽ वीर संवत २४४६.

निवेदक,
व्यवस्थापक ।

विषय सूची ।

प्रथम सर्ग ।

(राक्षस वंश और वानरवंशकी उत्पत्ति ।) पृष्ठ

वानर वंशकी उत्पत्ति	....	१
नवकार मंत्रके प्रभावसे एक बंदरका देवता होना	...	६
तडित्केश और उक्त देवका पूर्वभव	....	७
विजयसिंह और किष्किंधींका युद्ध	....	८
सुकेशके पुत्रोंका पुनः लंकाका राज्य लेना	....	११
राजा इन्द्र और मालीका युद्ध	....	१२
रावण, कुंभकर्ण और विभीषणका जन्म	....	१६

द्वितीय सर्ग ।

(रावणका दिग्विजय ।)

रावणका मंत्रसाधना	....	२१
रावणका मंदोदरी आदिके साथ ब्याह	... .	२८
लंकापति वैश्रवणका पराभव और दीक्षाग्रहण	....	३२
रावणद्वारा यमराजका पराभव	....	३५
खर विद्याधरके साथ सूर्पणखाका ब्याह	....	३९
वाली और रावणका युद्ध, वालीका दीक्षा ग्रहण	....	४२
रावणका अष्टापद गिरि उठाना	....	४८

रावणका पश्चात्ताप और वाली मुनिका मोक्ष गमन ९०
साहसगतिका शेमुषी विद्या साधने जाना ९३
रावणका दिग्विजयके लिए प्रयाण करना ९५
रेवा नदीके पूरसे रावणकी पूजाका प्लावित होना ९६
रावणका सहस्रांशुको हराना; सहस्रांशुका दीक्षा ग्रहण करना ९८
यज्ञोंमें पशु होमनेकी प्रवृत्ति कैसे हुई?.... .... ६३
महाकाल असुरकी उत्पत्ति ७५
पर्वतका हिंसात्मक यज्ञकी प्रवृत्ति करना ७८
नारदका वृत्तान्त ८१
सुमित्र और प्रभवका वृत्तान्त ८३
नल, कूबरका पकड़ा जाना.... .... ८७
रावण और इन्द्रका युद्ध ९१
रावणका अपनी मृत्युके कारण जानना.... .... १००

तीसरा सर्ग।

(हनुमानकी उत्पत्ति और वरुणका साधन।)

अंजनासुंदरीका जन्म १०२
अंजनाका पवनंजयके साथ ब्याहका निश्चय १०३
अंजनाके प्रति पवनंजयकी अप्रीति १०४
अंजनासुंदरीका ब्याह १०८
रावणकी सहायताके लिए पवनंजयका प्रयाण १०९
पवनंजयका अंजनाके महलमें आना १११

गर्भवती अंजनाका सासु केतुमतीके द्वारा तिरस्कार ११८
पिताके घरसे भी अंजनाका तिरस्कार ११९
अंजनाका पूर्वभव १२२
अंजनाका अपने मामाके साथ जाना १२७
अंजनाकी शोधके लिए पवनंजयका प्रयाण १३०
पवनंजय और अंजनाका संमेलन १३२
हनुमानका वरुणको हराना १३७

चौथा सर्ग ।

(रामलक्ष्मणकी उत्पत्ति, विवाह और वनवास)

वज्रबाहुका दीक्षाग्रहण करना १४१
कीर्तिधर राजाका दीक्षा लेना १४५
सुकोशल राजाका दीक्षा ग्रहण करना १४६
कीर्तिधर और सुकोशल मुनिका मोक्ष—गमन ... १४८
नघुष राजाका सिंहिकाको त्यागना, पुनः ग्रहण करना १४९
राजा सोदासका परम श्रावक बनना १५१
दशरथ राजाका जन्म, राज्य और ब्याह ... १५४
कैकेयीका स्वयंवर और उसके साथ दशरथका ब्याह १६०
राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म १६३
सीता और भामंडलका पूर्वभव और जन्म, ... १६७
रामका जनककी मददको जाना, सीताके साथ रामका
संबंध निश्चय होना १७३

रावणका पश्चात्ताप और वाली मुनिका मोक्ष गमन ९०
साहसगतिका शेमुषी विद्या साधने जाना ९३
रावणका दिग्विजयके लिए प्रयाण करना ९५
रेवा नदीके पूरसे रावणकी पूजाका प्लावित होना ९६
रावणका सहस्रांशुको हराना; सहस्रांशुका दीक्षा ग्रहण करना ९८
यज्ञोंमें पशु होमनेकी प्रवृत्ति कैसे हुई?.... .... ६३
महाकाल असुरकी उत्पत्ति ७५
पर्वतका हिंसात्मक यज्ञकी प्रवृत्ति करना ७८
नारदका वृत्तान्त ८१
सुमित्र और प्रभवका वृत्तान्त ८३
नल, कूबरका पकड़ा जाना.... .... ८७
रावण और इन्द्रका युद्ध ९१
रावणका अपनी मृत्युके कारण जानना.... .... १००

तीसरा सर्ग ।

(हनुमानकी उत्पत्ति और वरुणका साधन ।)

अंजनासुंदरीका जन्म १०२
अंजनाका पवनंजयके साथ ब्याहका निश्चय १०३
अंजनाके प्रति पवनंजयकी अप्रीति १०४
अंजनासुंदरीका ब्याह १०८
रावणकी सहायताके लिए पवनंजयका प्रयाण १०९
पवनंजयका अंजनाके महलमें आना १११

गर्भवती अंजनाका सासु केतुमतीके द्वारा तिरस्कार ११८
पिताके घरसे भी अंजनाका तिरस्कार ११९
अंजनाका पूर्वभव १२२
अंजनाका अपने मामाके साथ जाना १२७
अंजनाकी शोधके लिए पवनंजयका प्रयाण १३०
पवनंजय और अंजनाका संमेलन १३२
हनुमानका वरुणको हराना १३७

चौथा सर्ग ।

(रामलक्ष्मणकी उत्पत्ति, विवाह और वनवास)

वज्रबाहुका दीक्षाग्रहण करना १४१
कीर्तिधर राजाका दीक्षा लेना १४५
सुकोशल राजाका दीक्षा ग्रहण करना १४६
कीर्तिधर और सुकोशल मुनिका मोक्ष—गमन ... १४८
नघुष राजाका सिंहिकाको त्यागना, पुनः ग्रहण करना १४९
राजा सोदासका परम श्रावक बनना १५१
दशरथ राजाका जन्म, राज्य और ब्याह ... १५४
कैकेयीका स्वयंवर और उसके साथ दशरथका ब्याह १६०
राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म १६२
सीता और भामंडलका पूर्वभव और जन्म, ... १६७
रामका जनककी मददको जाना, सीताके साथ रामका संबंध निश्चय होना १७३

भामंडलका सीतापर आसक्त होना १७६
सीताके वरके लिए चंद्रगतिका जनकसे प्रतिज्ञा कराना १८०
सीताका स्वयंवर और राम, लक्ष्मण और भरतका ब्याह १८२
दशरथके हृदयमें मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छा होना ... १८५
भामंडलका जनकपुत्र होना प्रकट होना ... १८७
दशरथ राजाके पूर्वभव १८९
दशरथ राजाको दीक्षा लेनेकी इच्छा होना १९२
राम, लक्ष्मण और सीताका वनवास १९५
दशरथकी आज्ञासे रामको लानेके लिए सामंतोंका जाना २०१
रामको बुलानेके लिए भरत और कैकेयीका जाना २०२
वनमें रामका भरतको राज्याभिषेक करना २०४

पाँचवाँ सर्ग ।

(सीताहरण ।)

वज्रकरणका उद्धार २०७
लक्ष्मण और कल्याणमालाका मिलन २१६
वालिखिल्यका छुटकारा २१९
कपिल ब्राह्मणके घर रामचंद्रका जाना २२२
गोकर्ण यक्षका रामपुरी बनाना २२३
रामका कपिलको दान देना २२४
लक्ष्मण और वनमालाका मिलन २२८

रावण सीताको लेगया इसके समाचार मिलना २८८
हनुमानका अपने नानासे युद्ध २९३
गंधर्व राजाकी कन्याओंसे हनुमानकी भेट २९५
हनुमानका लंकाको पत्नी रूपमें ग्रहण करना २९७
रात्रिवर्णन २९९
प्रातःकाल वर्णन ३०२
विभीषणसे हनुमानका मिलना ३०३
हनुमानकी देखी हुई सीताकी स्थिति ३०४
हनुमानका सीतासे मिलना ३०६
हनुमानका रावणके उद्यानको नष्ट करना ३०९
हनुमान और इन्द्रजीतका युद्ध ३११
रावण और हनुमानका संवाद ३१२
हनुमानका रामको सीताके समाचार देना ३१४

सातवाँ सर्ग ।

(रावण वध)

रामका लंकापर चढ़ाई करना ३१५
विभीषणका रामके शरणमें जाना ३१६
रावणका युद्धके लिए लंकासे बाहिर आना ३२०
राम और रावणकी सेनका युद्ध ३२२
हनुमानकी युद्धक्रीडा ३२५
युद्धकरके कुंभकरणका मूर्च्छित होना ३२९

रावणके पुत्रों और सुग्रीवका युद्ध ३३१
रावणका युद्धमें प्रवृत्त होना ३३५
रामका शत्रु योद्धाओंको बाँधना ३३७
लक्ष्मणका मूर्च्छित होना ३३९
रामका शोक ३४१
लक्ष्मणके लिए सीताका विलाप ३४३
रावणका अपने बन्धुओंके लिए विलाप ३४४
प्रतिचंद्र विद्याधरका रामके पास आना ३४५
विशल्याके स्नानजलसे लक्ष्मणका सचेत होना ३४७
लक्ष्मणके जी उठनेसे पीडित रावणकी मंत्रणा ३५०
शान्तिनाथ प्रभुकी स्तुति ३५३
रावणका बहुरूपिणी विद्या साधना ३५५
रावणका वध ३५७

आठवाँ सर्ग।

(सीताको रामचंद्रका त्यागना।)

कुंभकर्ण और इन्द्रजीतका बंधनमुक्त होना ३६१
इन्द्रजीत और मेघवाहनका पूर्वभव ३६३
सीता और रामका मिलन. ३६५
रामका विभीषणको राज्य देना ३६६
रामलक्ष्मणका अयोध्या-आगमन ३६८
भरतके हृदयमें दीक्षाकी प्रबल इच्छा होना ३७२

रामके हाथी भुवनालंकार और भरतका पूर्वभव ३७३
शत्रुघ्नका मथुराको जाना ३८०
मथुरापति मधुकी मृत्यु ३८१
शत्रुघ्नका पूर्वभव ३८२
सुरनंदादि महर्षियोंका प्रभाव ३८६
सीतासे उसकी सौतोंका ईर्ष्या करना। ३९०
सीताको अशुभकी शंका होना। ३९२
सीतापर कलंक ३९४
सीताका परित्याग ३९६

(नवाँ सर्ग।)

(सीताकी शुद्धि और व्रत ग्रहण।)

सीताका पुंडरीकपुरमें जाना ४०१
रामका सीताको लेने जाना ४०३
सीताका पुत्र युगलको जन्म देना ४०५
वज्रजंघ और पृथुराजाका युद्ध ४०७
लवण और अंकुशका पृथ्वीपुरसे प्रस्थान ४०९
लवण और अंकुशका अयोध्यामें जाना ... ४११
रामलक्ष्मण और लवण अंकुशका युद्ध ... ४१३
नारदका रामको लवण अंकुशका हाल बताना ... ४१८
शुद्धिके लिए सीताका अग्निमें प्रवेश करना ४२०
सीताका दीक्षाग्रहण ४२७

दसवाँ सर्ग ।

(रामका निर्वाण ।)

रामका जयभूषण मुनिके पास जाना । ४२९

राम और सुग्रीवका पूर्वभव । ४३०

सीता, रावण और लक्ष्मणादिके पूर्वभव । ४३३

कनक राजाकी लड़कियोंके साथ लवणांकुशके लग्न ४३९

भामंडलकी मृत्यु । ४४०

हनुमानकी दीक्षा और निर्वाण । ४४१

दो देवोंका अयोध्यामें आना लक्ष्मणकी मृत्यु । ४४१

लवण, अंकुशका दीक्षाग्रहण । ४४३

रामका कष्ट वर्णन । ४४४

रामका प्रबुद्ध होना । ४४७

रामका दीक्षा लेना । ४४९

रामका प्रतिमा धारण कर रहना । ४४९

रामका अभिग्रह पूर्ण होना । ४५२

रामको सीतेन्द्रका उपसर्ग करना; रामको केवलज्ञान होना ४५३

नरकमें शंबूक, रावण और लक्ष्मणका दुःख । ४५६

रामका निर्वाण गमन । ४५८

ॐ

जैन रामायण ॥

प्रथम सर्ग ।

राक्षसवंश और वानरवंशकी उत्पत्ति ।

वानरवंशकी उत्पत्ति ।

अंजनके समान कान्ति वाले, हरिवंशमें चंद्रमाके समान श्री 'मुनिसुव्रतस्वामी' अरिहंतके तीर्थमें बलदेव 'राम' (पद्म) वासुदेव 'लक्ष्मण' (नारायण) और प्रतिवासुदेव 'रावण' उत्पन्न हुए थे । उन्हींके चरित्रोंका अब वर्णन किया जायगा । जिस समय श्री 'अजितनाथ' प्रभु विचरते थे उस समय भरतक्षेत्रके राक्षसद्वीपकी 'लंका' पुरीमें राक्षस वंशका अंकुरभूत—राक्षसवंशका आदिपुरुष—'घनवाहन' नामका राजा हुआ था । वह सद्बुद्धि राजा अपने पुत्र 'महाराक्षस' को राज्य दे 'अजितनाथ' प्रभुसे दीक्षा ले, तपश्चरण कर मोक्षमें गया । 'महाराक्षस' भी अपने पुत्र 'देवराक्षस' नामके पुत्रको राज्य सौंप, व्रत अंगीकार कर, पाल, मोक्षमें गया । इस तरह उत्तरोत्तर राक्षस-

द्वीपमें असंख्य राजा होगये । पीछे श्रेयांस प्रभुके तीर्थमें 'कीर्तिधवल' नामक राजा राक्षस-द्वीपमें राज्यकरने लगा ।

उसी कालमें वैताढ्य पर्वतपर 'मेघपुर' नगरमें विद्याधरोंका प्रसिद्ध राजा 'अतींद्र' हुआ । उसके 'श्रीमती' नामकी पत्नी थी । उसकी कूखसे दो सन्तान हुई । 'श्रीकंठ' नामक एक पुत्र और देवीके समान स्वरूपवान 'देवी' नामक एक कन्या । रत्नपुरके राजा 'पुष्पोत्तर' नामक विद्याधरोंके स्वामीने अपने पुत्र 'पद्मोत्तरके' लिए उस चारुलोचना देवीको, माँगा । मगर 'अतीन्द्रने' गुणवान और श्रीमान 'पद्मोत्तरको' अपनी कन्या देना अस्वीकार कर दिया। दैवयोगसे कन्याके लग्न राक्षस-द्वीपके राजा 'कीर्तिधवलके' साथ हुए ।

'देवीका ब्याह कीर्तिधवलके साथ होगया है, यह बात सुनकर पुष्पोत्तरको बहुत क्रोध आया । उसी समयसे इस अपमानका बदला लेनेके लिए वह अतींद्र और उसके पुत्र श्रीकंठसे शत्रुता रखने लगा ।

श्रीकंठ एकवार मेरुपर्वतसे वापिस अपने नगरको जा रहा था । रास्तेमें उसने पुष्पोत्तर राजाकी कन्या, पद्मा–लक्ष्मी–के समान रूपवान पद्माको देखा । दोनोंका दृष्टिमेल हुआ । तत्काल ही श्रीकंठ और पद्माका, कामदेवके विकारसागरको तरंगित करनेमें (वायुरूपी) दुर्दिनके समान, एक दूसरेपर अनुराग होगया । कुमारी पद्मा अपने

स्निग्ध दृष्टिपूर्ण मुखकमलको श्रीकंठके मुखकी ओर करके खड़ी होगई, ऐसा ज्ञात होता था कि वह स्वयंवरा होनेके लिए–श्रीकंठके गलेमें वरमाला डालनेको–उत्सुक हो रही है। कामातुर श्रीकंठने इस बातको समझा। उसने पद्माके हृदयको अपने अनुकूल समझा; अतः वह उसको उठा अपने रथमें बिठा, आकाशमार्गके द्वारा अपने नगरकी ओर रवाना हुआ। पद्माके साथकी दासियाँ हा, हा कार करती हुई पुष्पोत्तर राजाके पास गईं, और कहने लगीं कि कोई पद्माका हरणकर उसको लेजा रहा है। यह समाचार सुन, सेनाको सज्जितकर, पुष्पोत्तर श्रीकंठके पीछे दौड़ा। श्रीकंठ भागकर कीर्तिधवलके शरणमें आया और उसने, इसको पद्माको हर लानेकी सब बात सुना दी। प्रलयकालमें सागरका जल जैसे सब दिशाओंको ढक देता है, इसी प्रकार अपने सैन्य-जलसे दिशाओंको आच्छादन करता हुआ, पुष्पोत्तर भी वहाँ जा पहुँचा। कीर्तिधवलको ये समाचार मिले। उसने पुष्पोत्तरके पास एक दूत भेजा और उसके साथ कहलायाः—“ विना विचारे क्रोधके वशमें होकर तुमने यह युद्ध-प्रयास प्रारंभ किया है सो ठीक नहीं है–व्यर्थ है। कन्याके लग्न तुमको करने ही थे; कन्या स्वयंवरा हुई है; वह निज इच्छासे श्रीकंठके साथ आई है। इसमें श्रीकंठका कोई अपराध नहीं है। अतः युद्धकी इच्छाको छोड़, कन्याकी इच्छानु-

सार श्रीकंठके साथ उसका ब्याह कर दो।" पद्माने भी एक दूतीके द्वारा कहलायाः—"पिताजी! श्रीकंठने मेरा हरण नहीं किया; मैं स्वयमेव उसके साथ, स्वयंवरा होकर, आई हूँ।" यह बात सुनते ही पुष्पोत्तरका क्रोध शान्त हो गया।

'प्रायो विचारचंचूनां कोपः सुप्रशमः खलु।'

(विचारवान पुरुषोंका क्रोध सरलतासे—वास्तविक बात जानकर—शान्त हो जाता है।)

फिर पुष्पोत्तर बड़े उत्सवके साथ पद्मा और श्रीकण्ठ-का ब्याह कर अपने नगरको वापिस चला गया। कीर्ति-धवलने श्रीकण्ठसे कहाः—"हे मित्र! तुम यहीं रहो; क्योंकि वैताढ्य गिरिपर तुम्हारे बहुतसे शत्रु हैं। राक्षस-द्वीपसे थोड़ी ही दूर वायव्य कोणमें तीनसौ योजन प्रमाणका वानरद्वीप है। इसके सिवाय, बरबरकुल, सिंहल आदि भी मेरे द्वीप हैं—वे ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं कि मानो स्वर्गके खंड ही स्वर्गसे भ्रष्ट होकर यहाँ आये हैं—उनमेंसे एक द्वीपमें अपनी राजधानी बनाकर, तुम मेरे पासहीमें सुखसे रहो। यद्यपि शत्रुओंसे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि तुम्हारा वियोग मेरे लिए असह्य होगा इस लिए तुम यहीं रहो।" कीर्तिधवलके इन स्नेहवाक्योंको सुन, उसका वियोग अपने लिए भी आपदा पूर्ण समझ, श्रीकं-ठने वानरद्वीपमें रहना स्वीकार कर लिया। कीर्तिधवलने

वानरद्वीपकी किष्किधागिरिपर बसी हुई 'किष्किंधा' पुरीको राजधानी बना, उसका राजतिलक श्रीकंठके कर दिया। श्रीकंठने एक दिन वहाँ बड़ी बड़ी देहवाले फलभक्षी, सुन्दर वानर देखे । उनके लिए उसने अमारीघोषणा करवा दी, और किसी नियत स्थानपर उनके अन्नजल आदिका भी प्रबंध कर दिया। यह देख प्रजाजन भी बंदरोंका सत्कार करने लगे।

" यथा राजा तथा प्रजाः । "

उसके बाद वहाँके विद्याधर लोग कौतुकवश, चित्रोंमें, लेप्यमें और ध्वजा, छत्र आदिमें भी बन्दरोंके चिन्ह बनाने लगे। वानरद्वीपके राज्यसे और सर्वत्र बंदरोंके चिन्होंके रहनेसे, वहाँके विद्याधर 'वानर' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीकंठके एक पुत्र हुआ। उसका नाम 'वज्रकंठ' रक्खा गया। युद्धक्रीड़ा करनेमें उसे बहुत आनंद आता था। वह अकुंठ–किसी स्थानमें न रुकनेवाला–पराक्रमी था। एकवार श्रीकंठ अपने सभास्थानमें बैठा हुआ था, उस समय उसने देवताओंको, शाश्वत अर्हतकी यात्राके लिए, नंदीश्वरद्वीप जाते देखा। उसके भी जीमें भक्तिवश यात्रार्थ जानेकी आई। विमानमें बैठ अनेक विमानोंके पीछे उसने अपना विमान भी रवाना कर दिया। मार्गमें जाते हुए मानुषोत्तर पर्वतपर उसका विमान अटक गया; जैसे कि पर्वतके आजानेसे वेगवती नदी रुक जाती है।

श्रीकंठको खेद हुआ। 'पूर्वजन्ममें मैंने अल्प तप किया था इसी लिए नंदीश्वरद्वीपमें जा शास्वत तीर्थंकरके दर्शन करनेका मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ।' इस विचारसे निर्वेदी बन उसने वहीं दीक्षा ग्रहण कर ली, और कठोर तपस्या कर वह मोक्षको चला गया।

श्रीकंठके बाद वज्रकंठ आदि अनेक राजा होगये। बादमें मुनिसुव्रत स्वामीके तीर्थमें वानरद्वीपमें घनोदधि नामका राजा हुआ। उस समय राक्षसद्वीपमें 'तड़ित्केश' नामक राजा राज्य करता था। उन दोनोंके बीचमें भी अच्छा स्नेह होगया था।

नवकारमंत्रके प्रभावसे एक बंदरका देवता होना।

एकवार राक्षसद्वीपाधिपति तड़ित्केश अपनी रानियों-सहित 'नंदन' नामके सुंदर उद्यानमें क्रीड़ा करनेको गया। तड़ित्केश क्रीड़ा करनेमें निमग्न था; इतनेहीमें एक बंदरने वृक्षसे उतरकर उसकी 'श्रीचंद्रा' नामकी पट्टरानीके स्तनोंको नखोंसे क्षत किया। यह देख तड़ित्केशको बहुत क्रोध आया, और अपने बालोंको पीछेकी ओर हटाते हुए उसने बंदरके एक बाण मारा।

'असह्यो स्त्रीपराभवः'

(प्राणियोंके लिए अपनी स्त्रीका अनादर असह्य होता है।) बाणविद्ध बंदर, वहाँसे भागता हुआ, पासहीके उद्यानमें एक मुनि कायोत्सर्ग कर रहे थे, उनके चरणोंमें

जा गिरा । मुनिने परलोक जानेमें 'पाथेय-सूँकड़ी-के समान नवकार मंत्र उसको दिया । नवकार मंत्रके प्रभावसे बंदर मरकर भुवनवासी देवलोकमें अब्धिकुमार (उदधिकुमार) नामक देव हुआ । उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे उसे अपना पूर्वभव मालूम हुआ । उसने तत्काल ही आकर मंत्रदाता मुनिकी चरणवंदना की ।

'वन्दनीयः सतां साधुर्ह्युपकारी विशेषतः ।'

(साधु मुनिराज सज्जनोंके लिए सदावंदनीय हैं; उनमें भी उपकारी तो खास तरहसे वंदनीय ही हैं ।) इधर तड़ित्केशकी आज्ञासे उसके सुभट बंदरोंको मारने लगे । यह देख उस देवताको बहुत क्रोध आया । वह, विक्रियालब्धिसे बन्दरोंको बड़े बड़े रूप धारण करवा; वृक्षों और शिला समूहोंके द्वारा, राक्षसोंको निहत करवाने लगा; सताने लगा । तड़ित्केश इसको देव-कृत उपद्रव समझ, वहाँ आया और पूजा करके उसने पूछा कि-" तुम कौन हो ? और किसलिए उपद्रव करते हो ? " पूजासे शान्त होकर अब्धिकुमारने पूर्व योनिमें अपने निहत होनेकी और नवकार मंत्रके प्रभावसे देवता होनेकी बात कह सुनाई । यह सुनकर लंकापति उस देवताके साथ मुनिराजके पास गया ।

तड़ित्केश और उक्त देवका पूर्वभव ।

तड़ित्केशने मुनिराजकी चरणवंदना कर पूछाः-" हे

प्रभो ! इस वानरके साथ मेरा वैर क्यों हुआ ?" मुनिने उत्तर दियाः—" श्रावस्ती नगरीमें तू एक मंत्रीका लड़का था और यह वहीं एक लुब्धक—पारधी—था । एकवार तू दीक्षा लेकर काशीमें जाता था; लुब्धक भी शिकारके लिए काशीसे जा रहा था। उसने तुझको सामने आते देखा। तेरे वेशसे उसने अपशकुन समझा और बाण मारकर तुझे धराशायी कर दिया। वहाँसे मरकर तू महेंद्रकल्पमें—चौथे देवलोकमें—देवता हुआ। और वहाँसे चवकर यहाँ लंकाधिपति हुआ है। यह लुब्धक भी मरकर नरकमें गया और वहाँसे आकर यह बंदर हुआ था।"

वैरका दोनोंने कारण समझा। असाधारण उपकारी मुनिकी वंदना कर, लंकापतिकी आज्ञा ले वह देवता अन्तर्द्धान हो गया । तड़ित्केशने अपने पूर्वभवका स्मरण कर अपने 'सुकेश' नामक पुत्रको राज्य दे, दीक्षा ले, तप कर, परमपदको पाया । राजा घनोदधि भी अपने 'किष्किंधी' नामके पुत्रको किष्किंधाका राज्य दे, दीक्षा ले, मोक्षको गया।

विजयसिंह और किष्किंधीका युद्ध ।

उस समय वैताढ्यगिरिपर 'रथनुपुर' नगरमें विद्याधरोंका राजा 'अशनिवेग' राज्य करता था। उसके सशक्त भुजदंडोंके समान 'विजयसिंह' और 'विद्युद्वेग' नामके दो पुत्र थे। उसी गिरिपर 'आदित्यपुरमें' मंदि-

रमाली' नामक विद्याधरोंका राजा राज्य करता था। उसके 'श्रीमाला' नामकी एक कन्या थी। उसके स्वयंवरमें मंदिरमालीने सब विद्याधरोंको आमंत्रण दिया। ज्योतिषी देवताओंकी भाँति विमानोंमें बैठ बैठकर विद्याधर आकाश मार्गसे आये और स्वयंवर मंडपमें बैठे। राजकुमारी श्रीमाला वरमाला लेकर मंडपमें चली। प्रतिहारी विद्याधर राजाओंका वर्णन सुनाता जाता था, और नीकधारा—जैसे जलसे वृक्षोंको स्पर्श करती है, वैसे ही श्रीमाला उन राजाओंको निजदृष्टि द्वारा स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती जाती थी। क्रमशः अनेक विद्याधर राजाओंको उल्लंघन कर श्रीमाला, गंगा जैसे समुद्रमें जाकर स्थगित हो जाती है वैसे ही, किष्किंधीके पास जाकर ठहर गई और उसने, भविष्यकालमें भुजलताके आलिंगनकी पवित्र जामिन, वरमाला किष्किंधीके कंठमें पहिना दी। यह देख सिंहके समान साहससे प्यार करनेवाला, विजयसिंह भ्रकुटी चढ़ा, क्रोधसे मुखको भयंकर बना, कहने लगाः—"जैसे चोरको निकाल देते हैं वैसे ही अन्यायके करनेवाले, इस वंशके विद्याधरोंको, पहिले इस वैताढ्य गिरिसे—मेरी राजधानीसे—हमारे बड़ोंने निकाल दिया था; अब इनको पीछे यहाँ किसने बुलाया है? मगर चिन्ता नहीं, ये फिर यहाँ न आसकें इसलिए मैं इनको पशुओंकी भाँति अभी ही मार डालता हूँ।" ऐसे बोलता हुआ, यमराजतुल्य

महावीर्यवान, विजयसिंह आयुधोंको उछालता हुआ, किष्किधीराजाको वध करनेके लिए उसके पास जा खड़ा हुआ। यह देखकर सुकेश आदि विद्याधर किष्किंधीकी ओरसे और कई अन्य विद्याधर विजयसिंहकी ओरसे परस्पर युद्ध करनेको खड़े होगये। हाथियोंके दांतोंके संघर्षसे आकाशमें तिनखे उड़ने लगे; सवारोंके भालोंके मेलसे बिजलियोंसी कड़क होने लगी; महारथियोंकी धनुष-टंकारसे आकाश गूँजने लगा; और खड्गोंकी मारसे पैदल सिपाहियोंकी लाशोंका ढेर लगने लगा। इस तरह कल्पान्त कालकी भाँति युद्ध होने लगा। थोड़े ही समयमें सारी भूमि लोहूसे पट गई। थोड़ी देरके युद्ध बाद किष्किंधीके छोटे भाई 'अंधकने' एक बाणसे, वृक्षसे फलको गिराते हैं ऐसे, विजयसिंहका सिर धड़से जुदा कर दिया। यह देख विजयसिंहके पक्षके विद्याधर घबरा गये।

'निर्नाथानां कुतः शौर्यं, हतं सैन्यं ह्यनायकं।'

(स्वामीके विना शौर्य कैसे रह सकता है? नायक विनाका सैन्य मरे समान ही होता है।

युद्धमें जीत, साक्षात शरीरधारिणी जयलक्ष्मीके समान श्रीमालाको ले, किष्किंधी अपने सब सहायकों और सैनिकोंसहित किष्किधा गया। अकस्मात वज्र गिरता है, वैसे ही पुत्रवधके समाचार सुन अशनिवेग, किष्किंधापर चढ़ आया और नदी जैसे–जलका पूर होता है तब–नगरको

घेर लेती है वैसे ही, उसने सैन्य-जलसे किष्किधाको घेर लिया। सुकेश और किष्किंधी, अंधकको साथ लेकर, युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहिर निकले; मानो गुफामेंसे दो सिंह निकले हैं। अति क्रोधवाला अशनिवेग, शत्रुओंको तिनकेके समान समझता हुआ, युद्धमें प्रवृत्त हुआ। सिंहके समान बली वीर और पुत्रघातक अंधकको क्रोधांध अशनिवेगने मार डाला। यह देखकर पवनसे जैसे बादल छिन्नभिन्न हो जाते हैं वैसे ही, वानर और राक्षस सेना छिन्नभिन्न होगई। किष्किंधी और लंकापति सुकेश दोनों भी अपने अपने परिवारको लेकर पाताल लंकामें चले गये। 'ऐसे विकट समयमें किसी जगह भाग जाना भी एक उपाय है।' आराधर—महावत—को मारकर, हाथी जैसे शांत होता है वैसे ही, अपने पुत्रके मारनेवालेको नष्ट कर अशनिवेग शान्त हुआ। शत्रुओंके नाशसे हर्षित, नवीन राज्य स्थापन करनेमें आचार्यके समान, अशनिवेगने, लंकाके राज्यपर 'निर्घात' नामक खेचरको बैठाया। फिर अशनिवेग जैसे अमरावतीमें इन्द्र आता है वैसे ही अपनी राज्यधानी रथनुपुरमें वापिस आया। अन्यदा वैराग्य उत्पन्न होनेसे अपने पुत्र सहस्रारको राज्य सौंप उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

सुकेशके पुत्रोंका पुनः लंकाका राज्य लेना।

पाताल लंकामें निवास करते हुए सुकेशके रानी

'इन्द्रानी' से, माली, 'सुमाली' और 'माल्यवान' तीन पुत्र हुए। और किष्किंधीके श्रीमालासे 'आदित्यरजा' और 'ऋक्षरजा' नामक दो पराक्रमी पुत्र हुए। एकवार किष्किंधी मेरुपर्वतपरसे शास्वत अर्हतकी यात्रा करके वापिस लौटा था; उस समय उसने मार्गमें एक मधु नामक पर्वतको देखा। वह गिरि दूसरे मेरुके समान जान पड़ता था। उसके उद्यानमें किष्किंधीने क्रीड़ा की। वहाँ उसे विशेष शान्ति मिली। इस लिए, जैसे कैलाशपर्वतपर कुबेरने नगर बसाया है वैसे ही, किष्किंधी उस पर्वतपर नगर बसाकर, परिवार सहित निवास करने लगा।

सुकेशके शक्तिशाली तीनों पुत्रोंको जब ज्ञात हुआ कि उनका राज्य शत्रुने छीन लिया है; तब उनको बहुत क्रोध आया। वे तत्काल ही लंकामें आये; और 'निर्घात' का बध कर उन्होंने अपना राज्य वापिस ले लिया। 'वीरोंके साथ किया हुआ वैर चिरकालके बाद भी मृत्युका कारण होता है।' फिर लंकापुरीमें माली राजा बना और किष्किंधीके कहनेसे किष्किंधामें आदित्यरजा राज्य करने लगा।

राजा इन्द्र और राजा मालीका युद्ध।

वताढ्य गिरिपर रथनुपुरके राजा सहस्रारकी भार्या चित्तसुंदरी' को मंगलकारी शुभ स्वप्न आये। किसी देवताका उसके गर्भमें अवतरण हुआ। कुछ काल बाद

चित्तसुंदरीको इन्द्रके साथ संभोग करनेका दोहद–इच्छा– हुआ। मगर वह दुर्वच–न कहने योग्य, और दुष्पूर–पूरा न होने योग्य–था इस लिए उसकी शरीरकी दुर्बलताका कारण होगया। सहस्रारने जब बहुत आग्रहके साथ उसका कारण पूछा, तब उसने लज्जासे नम्र मुखकर पतिको अपने दोहदकी बात कही। सहस्रारने विद्याबलसे इन्द्रका रूप धारण कर, उसको इन्द्र पन समझा, उसका दोहद पूर्ण किया। समय पर पूर्ण पराक्रमी पुत्र जन्मा। माताको इन्द्रके संभोगका दोहद हुआ था इस लिए लड़केका नाम 'इन्द्र' रक्खा गया। वह जब युवक हुआ तब, सहस्रारने विद्याओं और भुजाओंके पराक्रमी पुत्रको राज सौंप दिया और आप धर्म ध्यानमें दिन बिताने लगा। इन्द्रने प्रायः सब विद्याधर राजाओंको अपने वशमें कर लिया। और इन्द्रके दोहदसे उत्पन्न हुआ था इस लिए वह अपने आपको साक्षात इन्द्र ही समझने लगा। उसने इन्द्रहीकी भाँति, चार दिग्पाल, सात सेनाएँ, तथा सेनापति, तीन प्रकारकी पर्षदा, वज्र आयुध, ऐरावत हाथी, रंभादि वारांगनाएँ, बृहस्पति नामक मंत्री और नैगमेषी नामक पत्तिसैन्यका नायक आदि सब स्थापन किये। इस तरह इन्द्रकी सारी संपदाके नामधारण करनेवाले विद्याधरों पर हूकूमत करता हुआ; वह अपने आपको 'इन्द्र' कहलवाने लगा, और अखंडराज्य करने लगा। ज्योतिःपुरके राजा 'मयूरध्वजकी' स्त्री

'इन्द्रानी' से, माली, 'सुमाली' और 'माल्यवान' तीन पुत्र हुए। और किष्किंधीके श्रीमालासे 'आदित्यरजा' और 'ऋक्षरजा' नामक दो पराक्रमी पुत्र हुए। एकवार किष्किंधी मेरुपर्वतपरसे शास्वत अर्हतकी यात्रा करके वापिस लौटा था; उस समय उसने मार्गमें एक मधु नामक पर्वतको देखा। वह गिरि दूसरे मेरुके समान जान पड़ता था। उसके उद्यानमें किष्किंधीने क्रीड़ा की। वहाँ उसे विशेष शान्ति मिली। इस लिए, जैसे कैलाशपर्वतपर कुबेरने नगर बसाया है वैसे ही, किष्किंधी उस पर्वतपर नगर बसाकर, परिवार सहित निवास करने लगा।

सुकेशके शक्तिशाली तीनों पुत्रोंको जब ज्ञात हुआ कि उनका राज्य शत्रुने छीन लिया है; तब उनको बहुत क्रोध आया। वे तत्काल ही लंकामें आये; और 'निर्घात' का बध कर उन्होंने अपना राज्य वापिस ले लिया। 'वीरोंके साथ किया हुआ वैर चिरकालके बाद भी मृत्युका कारण होता है।' फिर लंकापुरीमें माली राजा बना और किष्किंधीके कहनेसे किष्किंधामें आदित्यरजा राज्य करने लगा।

राजा इन्द्र और राजा मालीका युद्ध।

वैताढ्य गिरिपर रथनुपुरके राजा सहस्रारकी भार्या 'चित्तसुंदरी' को मंगलकारी शुभ स्वप्न आये। किसी देवताका उसके गर्भमें अवतरण हुआ। कुछ काल बाद

चित्तसुंदरीको इन्द्रके साथ संभोग करनेका दोहद–इच्छा–हुआ। मगर वह दुर्वच–न कहने योग्य, और दुष्पूर–पूरा न होने योग्य–था इस लिए उसकी शरीरकी दुर्बलताका कारण होगया। सहस्रारने जब बहुत आग्रहके साथ उसका कारण पूछा, तब उसने लज्जासे नम्र मुखकर पतिको अपने दोहदकी बात कही। सहस्रारने विद्याबलसे इन्द्रका रूप धारण कर, उसको इन्द्र पन समझा, उसका दोहद पूर्ण किया। समय पर पूर्ण पराक्रमी पुत्र जन्मा। माताको इन्द्रके संभोगका दोहद हुआ था इस लिए लड़केका नाम ‘इन्द्र’ रक्खा गया। वह जब युवक हुआ तब, सहस्रारने विद्याओं और भुजाओंके पराक्रमी पुत्रको राज सौंप दिया और आप धर्म ध्यानमें दिन बिताने लगा। इन्द्रने प्रायः सब विद्याधर राजाओंको अपने वशमें कर लिया। और इन्द्रके दोहदसे उत्पन्न हुआ था इस लिए वह अपने आपको साक्षात इन्द्र ही समझने लगा। उसने इन्द्रहीकी भाँति, चार दिग्पाल, सात सेनाएँ, तथा सेनापति, तीन प्रकारकी पर्षदा, वज्र आयुध, ऐरावत हाथी, रंभादि वारांगनाएँ, बृहस्पति नामक मंत्री और नैगमेषी नामक पत्तिसैन्यका नायक आदि सब स्थापन किये। इस तरह इन्द्रकी सारी संपदाके नामधारण करनेवाले विद्याधरों पर हूकूमत करता हुआ; वह अपने आपको ‘इन्द्र’ कहलवाने लगा, और अखंडराज्य करने लगा। ज्योतिःपुरके राजा ‘मयूरध्वजकी’ स्त्री

आदित्यकीर्तिसे उत्पन्न हुए 'सोम' नामक लड़केको उसने पूर्व दिशाका दिग्पाल बनाया। किष्किंधापुरीके राजा 'कालाग्निकी' स्त्री 'श्रीप्रभाके' पुत्र 'यम' नामक राजाको उसने दक्षिण दिशाका दिग्पाल बनाया। मेघपुरके राजा 'मेघरथकी' स्त्री 'वरुणाके' गर्भसे जन्मे हुए 'वरुण' नामक विद्याधरको उसने पश्चिम दिशाका दिग्पाल बनाया और कांचनपुरके राजा 'सुरकी' स्त्री 'कनकावतीके' पुत्र 'कुबेर नामक' विद्याधरको उसने उत्तर दिशाका दिग्पाल किया। इसतरह सर्व सम्पत्ति सहित इन्द्रराजा राज्य करने लगा।

'मैं इन्द्र हूँ' यह मानकर राज्य करनेवाले इन्द्र विद्याधरके बड़प्पनको–जैसे मदगंधी हाथी दूसरे हाथीको नहीं सह सकता है वैसे–लंकापति माली न सह सका; इस लिए वह अपने अतुल पराक्रमी भाइयों, मंत्रियों और मित्रों सहित इन्द्रके साथ युद्ध करनेको रवाना हुआ। "पराक्रमी पुरुषोंको (युद्धके सिवा) कोई दूसरा विचार नहीं सूझता" दूसरे राक्षस वीर भी वानर वीरोंको ले, सिंहों, हाथियों, घोड़ों, महिषों, वराहों और वृषभादि वाहनोंपर बैठ, आकाशमार्गसे चलने लगे। चलते समय गधे, सियार, और सारस आदि उनके दाहिनी ओर थे; तो भी वे फलमें वामपनको धारण करते हुए उनके लिए अरिष्ट रूप हुए, उनको अनेक अपशकुन होने लगे,

इस लिए बुद्धिमान सुमालीने युद्धके लिए रवाना होनेसे मालीको रोका । परन्तु भुजबलके गर्वसे गर्वित मालीने उसका वचन नहीं माना; और अपने दल-बल सहित वैताढ्य गिरिपर पहुँच, उसने इन्द्रका युद्धके लिए आव्हान किया । हाथमें वज्र उछालता हुआ, अपने नैगमेषी आदि सेनापातियों, सोमादि दिग्पालों और विविध शस्त्रधारी सुभटोंसे घिरा हुआ इन्द्र ऐरावतपर बैठ रणक्षेत्रमें आ उपस्थित हुआ । विद्युत-अस्त्रोंसहित आकाशमें जैसे मेघोंका संघट्ट होता है वैसे ही, इन्द्र और राक्षसोंकी सेनाओंका संघट्ट होगया । लड़ाई छिड़ गई । किसी जगह पर्वतोंके शिखरोंकी तरह रथ गिरने लगे; किसी जगह राहुकी शंका कराते हुए सुभटोंके मस्तक गिरने लगे; और एक पैरके कटजानेसे घोड़े ऐसे चलने लगे जैसे उन्हें किसीने बाँध रक्खा हो । इस तरह इन्द्रकी सेनाने माली राजाकी सेनाको त्रस्त किया ।

' बलवानपि किं: कुर्यात् प्राप्तः केशरिणा करी ।

(केसरीके पंजेमें फँसा हुआ हाथी बलवान होनेपर भी क्या कर सकता है ?)

फिर सुमाली आदि प्रमुख वीरोंसहित, यूथसहित वन हस्तीकी भाँति, राक्षस द्वीपाधिपति मालीने इन्द्रकी सेना पर आक्रमण किया । उस पराक्रमी वीरने, मेघ जैसे ओलोंसे उपद्रावित करते हैं वैसे गदा, मुद्गर और बाणोंसे

इन्द्रकी सेनाको घबरा दिया । यह देखकर लोकपालों और सेनापतियों सहित युद्ध करनेके लिए इन्द्र आगे आया । इन्द्र, मालीके साथ और लोकपाल आदि सुमाली आदि सुभटोंके साथ युद्ध करने लगे । जीवनकी आशंका हो इस प्रकार दोनों ओरके वीर बहुत देर तक युद्ध करते रहे ।

'जयाभिप्रायिणां प्रायः प्राणा हि तृणसन्निभाः ।'

(प्रायः जयाभिलाषी लोगोंको प्राण तृणवत मालूम होते हैं ।) दंभरहित युद्ध करते हुए इन्द्रने—मेघ जैसे बिजलीसे गोको मार डालता है वैसे ही—वज्रसे मालीको मार डाला । मालीकी मृत्युसे राक्षस और वानर व्याकुल हो गये और सुमालीके साथ सब पाताल लंकामें चले गये । इन्द्र 'कौशिका' की कुक्षीसे जन्मे हुए 'वैश्रवाके' पुत्र 'वैश्रमणको' लंकाका राज्य दे अपने नगरको लौट गया ।

रावण, कुंभकर्ण (भानुकर्ण) और विभीषणका जन्म ।

पाताल लंकामें रहते हुए, सुमालीके 'प्रीतिमति' नामकी स्त्रीसे रत्नश्रवा नामक एक पुत्र हुआ । जवान होनेपर वह एक वार विद्या साधनेके लिए कुसुमोद्यानमें गया । वहाँ वह अक्षमाला हाथमें ले, नासिकाके अग्र भागपर दृष्टि जमा जप करने लगा । उसकी स्थिरता देखकर ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो कोई चित्र है । रत्नश्रवा ऐसे जापकर रहा था उस समय, निर्दोष अंगवाली

एक विद्याधरकी कुमारी कन्या, अपने पिताकी आज्ञासे, उसके पास आई और कहने लगी:–" मैं मानवसुन्दरी नामक महाविद्या तुझे सिद्ध हुई हूँ ।" यह वचन सुन, विद्यासिद्ध हुई जान, रत्नश्रवाने जपमाला डाल दी। आँखें खोलने पर वह विद्याधर-कुमारी उसकी दृष्टिमें आई । रत्नश्रवाने पूछा:–" तू कौन है ?" उसने उत्तर दिया:–" अनेक कौतुकोंके घररूप 'कौतुकमंगल' नामके नगरमें 'व्योमबिन्दु' नामका एक विद्याधर राजा है। कौशिका नामकी उसकी एक बड़ी लड़की है; वह मेरी बहिन लगती है । यक्षपुरके राजा 'विश्रवा' के साथ उसका व्याह हुआ है । उसके एक नीतिमान 'वैश्रमण' नामका पुत्र है; जो अभी इन्द्रकी आज्ञासे लंकापुरीमें राज्य कर रहा है । मेरा नाम 'कैकसी' है । किसी निमित्तियाके कहनेसे मेरे पिताने मुझे तुमको सौंपा है; इसलिए मैं यहाँ आई हूँ ।" फिर सुमालीके पुत्र रत्न-श्रवाने अपने बंधुओंको बुलाकर वहीं कैकसीके साथ व्याह किया और पुष्पक नामके विमानमें बैठकर उसके साथ क्रीड़ा करने लगा ।

एक वार कैकसीने रातमें स्वप्न देखा–उसने देखा कि हाथीके कुंभस्थलको भेदन करनेमें आसक्ति रखनेवाले सिंहने उसके मुखमें प्रवेश किया है । सबेरे ही उसने स्वप्नकी बात

अपने पतिसे कही । रत्नश्रवाने कहा:—" इस स्वप्नसे तेरे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो संसारमें अद्वितीय होगा । " स्वप्न प्राप्त होनेके बाद उसने चैत्यकी पूजा की; और उस रत्नश्रवाकी प्रियाने महासारभूत गर्भ धारण किया । गर्भके सद्भावसे कैकसीकी वाणी अत्यंत क्रूर हो गई और उसका सारा शरीर श्रमको जीतनेवाला दृढ़ हो गया। दर्पण होते हुए भी वह खड्गमें मुख देखने लगी; और निःशंक होकर इन्द्रको भी आज्ञा करनेकी इच्छा रखने लगी । हेतु बिना भी उसके मुखसे हुंकार शब्द निकलने लगा; गुरुजनके आगे मस्तक नमाना भी उसने बंद कर दिया; और शत्रुओंके सिर पर सदा सिर रखनेकी वह इच्छा रखने लगी । इस तरह गर्भके प्रभावसे वह कठोर भाव धारण करने लगी । समय आने पर शत्रुओंके आसनको कँपानेवाले और चौदह हजार वर्षकी आयुवाले पुत्रका उसने प्रसव किया । सूतिकाकी शय्यामें उछलता हुआ और चरणोंको पछाड़ता हुआ वह अति पराक्रमी शिशु खड़ा हो गया; और पासमें रक्खे हुए करंडिएमेंसे उसने नौ माणिक्यवाले हारको—जो हार पहिले भीमेंद्रने दिया था—अपने हाथोंसे बाहिर निकाल लिया; और अपनी सहज चपलतासे उसने हारको गलेमें पहिन लिया । यह देख

१ राक्षस नामक व्यंतर निकायका इन्द्र ।

कैकसी परिवार सहित बहुत विस्मित हुई। उसने अपने पतिसे कहा:-"हे नाथ! पहिले राक्षसोंके इन्द्रने जो हार तुम्हारे पुरुषा मेघवाहन राजाको दिया था; आपके पूर्वज आजतक जिस हारकी देवताकी भाँति पूजा करते आये हैं उस नौ माणिकके बने हुए हारको आजतक कोई धारण न कर सका था; और निधानकी भाँति एक हजार नागकुमार जिसकी रक्षा करते थे; उसी हारको आज तुम्हारे नवजात शिशुने खेंचकर अपने गलेमें पहिन लिया है।" शिशुका मुख उन नवों माणिकोंमें दिखाई दिया, इस लिए उसके पिता रत्नश्रवाने उसका नाम 'दशमुख' रक्खा और अपनी प्रियासे कहा:-"मेरे पिता सुमाली एक वार जब मेरुपर्वत पर चैत्यवंदन करने गये थे, तब उन्होंने एक मुनि महाराजसे प्रश्न पूछा था। चार ज्ञानके धारी मुनिमहाराजने उत्तर दिया था:-तुम्हारे पास परंपरासे जो नौ माणिकोंका हार चला आ रहा है; उसको जो पहिनेगा वह अर्द्धचक्री (प्रति वासुदेव) होगा।"

उसके बाद कैकसीने फिर गर्भधारण किया। गर्भधारण करते समय सूर्यका स्वप्न देखा; इस लिए जन्म हुआ तब बच्चेका नाम 'भानुकर्ण' रक्खा; उसका दूसरा नाम 'कुंभकर्ण' भी हुआ। उसके बाद कैकसीने एक पुत्रीको जन्म दिया। उसके नख चंद्रके समान थे; इस

लिए उसका नाम ' चंद्रनखा ' रक्खा गया । यह प्रायः ' शूर्पणखा 'के नामसे प्रसिद्ध है । कुछ कालके बाद चंद्र-स्वप्नसे सूचित उसने ' बिभीषण ' नामके पुत्रको जन्म दिया । उन तीनोंका शरीरमान सोलह धनुषसे कुछ अधिक था । तीनों सहोदर प्रतिदिन बालकवयके योग्य क्रीड़ाएँ करते हुए सुखपूर्वक अपना बाल्यकाल बिताने लगे ।

द्वितीय सर्ग।

रावणका दिग्विजय।

रावणका मंत्रसाधना।

एक वार दशमुख अपने आँगनमें, अपने बन्धुओंसहित बैठा हुआ था। उन्होंने विमानमें बैठकर जाते हुए समृद्धिवान वैश्रवण राजाको देखा। रावणने अपनी मातासे पूछाः—" वह कौन है ? " माता कैकसीने उत्तर दियाः— " वह मेरी बड़ी बहिन कौशिकीका पुत्र है। उसके पिताका नाम विश्रवा है; और सारे विद्याधरोंके अधीश्वर ' इन्द्र ' का वह मुख्य सुभट है। इन्द्रने तेरे पितामहके ज्येष्ठ बंधु माळीको मारकर राक्षसद्वीपसहित लंकानगरी उसको दे दी है। हे वत्स ! उसी समयसे तेरे पिता लंकापुरीको वापिस लेनेकी अभिलाषा मनमें रखकर अबतक यहाँ ठहरे हुए हैं। ' समर्थ शत्रुके लिए ऐसा ही करना उचित है। ' राक्षसपति भीमेंद्रने शत्रुओंका प्रतिकार करनेके लिए, अपने पूर्वजोंके पुत्र मेघवाहनको—जो राक्षसवंशके मूल पुरुष हैं—पाताल लंका, राक्षसी विद्या और लंका दी थी। तबहीसे तेरे पुरुषा उनपर राज्य करते आ रहे थे। शत्रुओंने तेरे पितामहके ज्येष्ठ भ्रातासे लंकाका राज्य छीन लिया। तबहीसे तेरे पिता और पितामह प्राणहीन जड़ पदार्थकी भाँति यहाँ रह रहे हैं। और साँढ़ जैसे रक्षक-हीन क्षेत्रमें

स्वच्छंद होकर फिरते हैं वैसे ही शत्रु लंकापुरीमें स्वेच्छा-विहारी हो रहे हैं । यह बात तेरे पिताके हृदयमें हर समय शालती रहती है ।

हे वत्स ! मैं मन्दभाग्या कब तुझे अपने अनुजों सहित लंकामें राज्य करता देखूँगी ? और कब तेरे जेलखानेमें लंकाके लुटेरे तेरे शत्रुओंको पड़े देख अपने आपको पुत्रवतियोंमें शिरोमणी समझूँगी ? हे पुत्र ! आकाशपुष्पोंके समान इस मनोरथको हृदयमें रखकर दिन बिता रही हूँ, और आशाको पूरी न होते देख हंसिनी जैसे मरुभूमिमें सूख जाती है वैसे ही रातदिन चिन्ताके मारे सूखती जा रही हूँ !'

माताके ऐसे वचन सुन, क्रोधके मारे बिभीषणका मुख भीषण हो गया । वह बोलाः—" माता दुःखी न बनो । तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे । तुम अभीतक अपने पुत्रोंके पराक्रमसे अजान हो । हे देवी ! इन्द्र, वैश्रवण और दूसरे विद्याधर इस बली आर्य दशमुखके आगे क्या चीज हैं ? सोता हुआ सिंह जैसे गजेन्द्रकी गर्जनाको सहन करता है वैसे ही; अजानमें भाई दशमुखने शत्रुओंका राज्य लंकापुरीमें होना सहन किया है । आर्य दशमुखकी बात जाने दो; भाई कुंभकर्ण ही इन शत्रुओंको निःशेष करनेमें समर्थ है । हे माता ! कुंभकर्णकी बात भी अलग रहने दो; यदि ज्येष्ठ बँधु आज्ञा दें तो मैं स्वयं ही वज्रपातकी तरह शत्रुओंको नाश करनेमें समर्थ हूँ । "

यह सुन दाँतोंसे ओष्ठको चबाता हुआ रावण बोला:— "हे माता! तुम वज्रके समान कठोर मालूम होती हो; इसी लिए ऐसे शल्यको अबतक हृदयमें दाबकर बैठी हो। इन इन्द्रादि विद्याधरोंको मैं अपने भुजबलसे ही मर्दन कर सकता हूँ; तो फिर शस्त्रास्त्रोंकी तो बात ही क्या है? वस्तुतः ये सब मेरे लिए एक तिनकेके समान हैं। यद्यपि भुजबलसे ही मैं शत्रुओंका संहार कर सकता हूँ; तथापि ऐसा न कर कुलक्रमागत विद्याका साधन कर लेना पहिले आवश्यकीय है। इस लिए हे जननी! आज्ञा दो कि मैं अपने अनुज बन्धुओं सहित जाकर उस निर्दोष विद्याका साधन करूँ।" माताने पुत्रोंके मस्तकको चूम उन्हें विद्या-साधन करनेको जानेकी आज्ञा दी। रावण मातापिताको प्रणामकर अपने अनुज बन्धुओं सहित 'भीम' नामक वनकी ओर चला। उस वनमें सोते हुए सिंहोंके निश्वा-सोंसे आसपासके वृक्ष काँपते थे; गर्विष्ठ केसरिओंकी पूँछोंकी फटकारसे पृथ्वी फटी जाती थी; उल्लुओंके फूत्कारसे वृक्ष और गुफाएँ अति भयंकर लगते थे। ना-चते हुए भूतोंके चरणाघातसे पर्वतके शिखरोंसे पत्थर टूट टूटकर गिरते थे। देवताओंकोभी भीत कर देनेवाले आप-त्तिके स्थानरूप ऐसे भीम वनमें रावणने बन्धुओं सहित प्रवेश किया। तपस्वीके समान जटामुकटको धारणकर, अक्षसूत्र–माला–हाथमें ले, श्वेतवस्त्र पहिन, नासिकाके

अग्रभागपर दृष्टि जमा तीनों भाई जाप करने लगे। दोही प्रहरमें उन्होंने अष्टाक्षरी विद्या साधली। फिर उन्होंने सोलह अक्षरी विद्याको—जो दश हजार जापसे सिद्ध होती है—सिद्ध करनेके लिए जप करना प्रारंभ किया।

उस समय जंबूद्वीपका स्वामी अनाहत नामक देवता अपनी स्त्रियों सहित आया। उसने उन तीनोंको मंत्र साधते देखा। उसके मनमें, मंत्रसाधनमें विघ्न डालनेकी इच्छा हुई। इस इच्छाको पूरी करनेके लिए उसने अनुकूल उपसर्गकर उनको क्षुब्ध करनेके लिए, अपनी स्त्रियोंको भेजा। स्त्रियाँ उनके सुन्दर रूप यौवनको देखकर स्वयमेव क्षुब्ध हो गईं; वे अपने स्वामीके शासनको भूल उनके रूप यौवनपर मुग्ध होगईं। उनको निर्विकारी, स्थिर आकृतिवाले और मौन बैठे देख, कामांध हो वे बोलीं:— "अरे! ध्यानमें जड़ बने हुए वीरो! हमारी तरफ तो जरा यत्नपूर्वक देखो! हम देवियाँ भी तुम्हारे वश होगई हैं! अब तुम्हें कौनसी दूसरी सिद्धि चाहिए? अब विद्या सिद्धिके लिए क्यों यत्न करते हो? ऐसा कष्ट सहनेकी आवश्यकता नहीं है; विद्याको तुम क्या करोगे? अब तो हम साक्षात देवियाँ हीं तुम्हें सिद्ध होगई हैं। अतः हे देव समान पुरुषो! तीनलोकके सबसे रमणीय प्रदेशोंमें चलकर तुम हमारे साथ यथारुचि क्रीड़ा करो।" बड़ी कामनाके साथ उन यक्षिणियोंने कहा; परन्तु धैर्यशाली तीनों भाई

अपने ध्यानसे चलित नहीं हुए। इस लिए यक्षिणियाँ बहुत लज्जित हुईं। कहा है कि 'तालिका नैक हस्तिका' (कभी एक हाथसे ताली नहीं बजाती।)

बादमें जंबूद्वीपपति यक्ष स्वयं वहाँ आकर कहने लगाः—" रे मुग्ध पुरुषो ! तुमने ऐसा काष्ठ-चेष्टित कार्य कैसे प्रारंभ किया है ? जान पड़ता है कि तुमको किसी अनाप्त[1] पाखंडीने अकाल मृत्युपानेको यह पाखंडमय शिक्षा दी है। अतः अब ऐसे ध्यानका दुराग्रह छोड़ दो और चले जाओ। यदि इच्छा हो तो मुझसे याचना करो, मैं तुम्हें वांछित दूँगा।" यक्षके वचनोंसे भी उन्होंने मौन त्याग नहीं किया। तब यक्ष क्रोध करके बोलाः—" रे मूर्खो ! मेरे समान प्रत्यक्ष देवको छोड़ कर तुम दूसरोंका ध्यान कैसे कर रहे हो ?" ऐसा कहने बाद यक्षने अपने वाण-व्यंतर[2] सेवकोंको भ्रकुटीके इशारेसे आज्ञा की। सेवक किलकारियाँ करते हुए; विविध प्रकारके रूप धारण कर पर्वत-शिखर और बड़ी बड़ी शिलाएँ लाकर उनके आगे डालने लगे। कई सर्पका रूपधर, चंदनकी तरह, उनसे लिपटने लगे; कई सिंह बन उनके सामने गर्जना करने लगे और कई रींछ, बंदर, व्याघ्र, बिलाव आदिके स्वरूप बना उनको डराने लगे। तोभी वे तीनों धीर क्षुब्ध नहीं हुए। फिर

१—अप्रमाणिक; जिसका वचन प्रमाण न हो ऐसा। २—व्यंतर जातिके देव।

उन्होंने कइयोंको कैकसी, रत्नश्रवा और सूर्पणखा बना; उन्हें बाँध दिया और उन्हें लेजाकर उनके सामने डाल दिया। मायामयी रत्नश्रवा, कैकसी आदि आँसू बहाने लगे और आक्रंदन करते हुए कहने लगे:–"हे वत्सो! शिकारी जैसे तिर्यंचोंको मारते हैं वैसे ही ये निर्दय पुरुष तुम्हारे सामने हमें मारने लग रहे हैं, और तुम बैठे देख रहे हो। हे दशमुख! तू हमारा एकान्त भक्त होकर भी कैसे शान्त है? कैसे उपेक्षा कर रहा है? हे पुत्र! तू बालक था तब तो तूने स्वयमेव हार पहिन लिया था। आज तेरा वह भुजबल और वह दर्प कहाँ है? हे कुंभकर्ण! हमें दीनावस्थामें देखकर भी, तू वैरागियोंकी तरह, हमारी उपेक्षा कैसे कर रहा है? रे पुत्र विभीषण! आजतक तू एक क्षणके लिए भी हमारी भक्तिसे विमुख नहीं हुआ था। आज देवोंने क्या तेरी बुद्धिको भ्रमित कर दिया है?" इस विलापसे भी जब वे विचलित नहीं हुए तब यक्ष-किंकरोंने उन रूपधारियोंको माया-मय सिर काट-कर उनके आगे डाल दिये। इससे भी जब वे विचलित नहीं हुए तब यक्ष-सेवकोंने माया रच विभीषण और कुंभ-कर्णके सिर काट रावणके आगे डाले और रावणका सिर उन दोनोंके आगे डाला। रावणका सिर देख उन दोनोंको कुछ क्रोध हो आया। उसका कारण उनकी गुरुभक्ति थी; अल्प स्वत्व नहीं। परमार्थके ज्ञाता रावणने उस अन-

र्थकी तरफ कुछ भी लक्ष नहीं दिया; प्रत्युत विशेषरूपसे ध्यानमें दृढ़ होकर वह पर्वतकी प्रतिस्पर्द्धा करने लगा। उस समय आकाशवाणी हुई 'साधु, साधु'। इस देव-वाणीको सुनकर चकित, भीत हो यक्षसेवक तत्काल ही वहाँसे भाग गये। उसी समय आकाशसे, उतरकर एक हजार विद्याएँ दिशा-विदिशाओंको प्रकाशित करती हुई रावणके सामने आखड़ी हुई और कहने लगीं—"हम तुम्हारे अधीन हैं।"

प्रज्ञप्ति, रोहिणी, गौरी, गांधारी, नभःसंचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, अणिमा, लघिमा, अक्षोभ्या, मनःस्तंभनकारिणी, सुविधाता, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शनी, अजरामरा, अनलस्तंभनी, तोयस्तंभनी, गिरिदारणी, अवलोकिनी, वन्हि, घोरा, वीरा, भुजंगिनी, वारिणी, भुवना, अवंध्या, दारुणी, मदनाशनी, भास्करी, रूपसंपन्ना, रोशनी, विजया, जया, वर्द्धनी, मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शांति, कौबेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चंडा, भीति, प्रधर्षिणी, दुर्निवारा, जगत्कंपकारिणी और भानुमालिनी आदि एक हजार महाविद्याएँ, पूर्व सुकृतके उदयसे महात्मा रावणको थोड़े ही दिनोंमे सिद्ध होगई। संवृद्धि, जृंभणी, सर्वहारिणी, व्योमभामिनी और इन्द्राणी, पाँच विद्याएँ कुंभ-

कर्णको सिद्ध हुई। सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी ये चार विद्याएँ विभीषणको सिद्ध हुई। जंबूद्वीपके पति अनाहतदेवने आकर रावणसे क्षमा माँगी। "बड़े पुरुषोंका अपराध किया हो तो उनसे क्षमा माँगना ही (अपनी भलाईका) उपाय है।" पहिले किये हुए विघ्नोंका प्रायश्चित्त करता हो ऐसा व्यक्त करते हुए, बुद्धिमान यक्षने वहीं पर एक 'स्वयंप्रभ' नगर रावणके लिए बसा दिया। विद्या-सिद्धिके समाचार सुन उनके मातापिता और बन्धुभगिनी भी वहाँ आये। रावणादिने उनका सत्कार किया। मातापिताकी दृष्टिमें अमृतवृष्टि और बन्धुवर्गके हृदयोंमें आनंद उल्लास उत्पन्न करते हुए तीनों भाई वहीं रहने लगे। फिर रावणने छः दिनके उपवास करके दिशाओंका साधन करनेमें उपयोगी ऐसे चंद्रहास नामक श्रेष्ठ खड्गकी साधना की।

रावणका मंदोदरी और अन्य कई कन्याओंके साथ ब्याह करना।

उस समय वैताढ्य गिरिपर दक्षिणश्रेणीके आभूषणभूत 'सुरसंगीत' नामक नगरमें 'मय' नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसके गुणोंकी धाम 'हेमवती' नामक पत्नी थी। उसकी कूखसे एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम 'मंदोदरी' था। जब वह पूर्ण यौवना हुई तब मय उसके योग्य वर खोजने लगा। समस्त विद्या-

धर कुमारोंके रूपगुणकी जाँच की, मगर मंदोदरीके योग्य एक भी वर उसकी दृष्टिमें नहीं आया । इससे वह बहुत चिन्तित रहने लगा । एक दिन उसके मंत्रीने कहा:– " स्वामिन् ! दुःख न कीजिए । रत्नश्रवाका बली और रूपवान पुत्र दशमुख कन्याके लिए योग्य वर है । पर्वतोंमें जैसे मेरु वैसे ही, विद्याधर कुमारोंमें वह सहस्र विद्याओंका साधक कुमार है; उस बलीको देवता भी चलित नहीं कर सकते हैं " । मयने प्रसन्न होकर कहा:– "ठीक है ।" फिर मय अपने परिवारको ले, सेनासे सुसज्जित हो मन्दोदरी रावणको अर्पण करनेके लिए स्वयंप्रभ नगरमें गया । पहुँचनेके पहिले उसने अपने आनेकी खबर करवा दी । सुमाली आदिने मंदोदरीके साथ रावणका संबंध करना स्वीकार कर लिया । शुभ दिवस देखकर बड़े ठाटके साथ उनका विवाह-संस्कार पूरा कराया गया । मय विवाहोत्सव समाप्तकर अपने परिवार सहित निज नगरको चला गया । रावण सुन्दरी मंदोदरीके साथ आनंदपूर्वक क्रीड़ा करने लगा ।

एकबार रावण मेघरव नामक पर्वतपर क्रीड़ा करने गया । पर्वत मेघोंके झुके रहनेसे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह पाँखोंवाला है । वहाँ एक सरोवर था । उसकी शोभा क्षीरसागरके समान थी । दशाननने उसमें अप्सराके समान रूपवाली एक हजार खेचरकन्या

ओंको क्रीड़ा करते देखा। उन्होंने भी उसको देखा। पद्मिनियाँ जैसे सूर्यको देख कर विकसित होती हैं वैसे ही वे अपने नेत्र-पद्मिनियोंको विकसित करती हुई, उसको, पति बनानेकी भावना हृदयमें धारणकर, सानुराग देखने लगीं। थोड़ी देरमें वे कामसे अति व्याकुल हो, लज्जा छोड़, रावणके पास जा कहने लगीः—"तुम हमें पत्नीरूपमें ग्रहण करो।" उनमें सर्वश्रीकी पुत्री पद्मावती, सुरसुंदरीकी पुत्री मनोवेगा, बुधकी कन्या अशोकलता और कनककी पुत्री विद्युत्प्रभा मुख्य थीं। उनके तथा दूसरी जगत्प्रसिद्ध कुलोंकी कन्याओंके साथ जो कि रावणपर मुग्ध हो रही थीं—रागी रावणने गांधर्व विधिसे ब्याह किया। उन कन्याओंकी रक्षाके लिए जो पुरुष आये थे, उन्होंने जाकर अपने स्वामियोंसे कहा कि कन्याओंको ब्याह कर कोई लेजा रहा है। यह सुन, कन्याओंके पिताओंको साथ ले, क्रोधके साथ अमरसुंदर नामक विद्याधरोंका इंद्र रावणको मारनेकी इच्छासे उसके पीछे दौड़ा। उसको आते देख, सब नवौढ़ा कन्याएँ कहने लगीं:—हे स्वामी! विमानको शीघ्रतासे चलाओ, विलंब न करो; क्योंकि अकेला अमरसुंदर ही अजेय है, और इस समय तो वह कनक और बुध आदि योद्धाओं सहित आया है, इससे उसको युद्धमें जीतना कठिन है।" उनके ऐसे वचन सुनकर रावण हँसा और बोलाः—"हे सुन्दरियो!

तुम देखोगी कि सर्पोंके साथ जैसे गरुड़ युद्ध करता है, वैसे ही मैं उनके साथ युद्ध करूँगा।" इसतरह रावण कह रहा था कि इतनेहीमें, विद्याधर रावणके ऊपर ऐसे चढ़ आये, जैसे बड़े पर्वतपर बादल चढ़ आते हैं। शक्तिसे दारुण बने हुए रावणने अपने शस्त्रोंसे उनके सब शस्त्र काट-दिये; फिर उनको नहीं मारनेकी इच्छासे उसने प्रस्वापन नामक अस्त्र छोड़कर सबको मोहित कर दिया और नाग-पाश द्वारा जानवरोंकी तरह सबको बाँध लिया। यह देख खेचरकन्याओंने अपने पिताओंकी प्राण-भिक्षा माँगी। रावणने अपनी प्रियाओंकी प्रार्थना स्वीकार कर सब-को छोड़ दिया। सब विद्याधर अपने नगरोंको चले गये। हर्षित मनुष्योंसे अर्घ ग्रहण करते हुए रावणने अपनी प्रिया-ओंसहित स्वयंप्रभ नगरमें प्रवेश किया।

कुंभपुरके राजा 'महोदर' की स्त्री 'सुरूपनयना' के गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी। उसका नाम 'तड़ि-न्माला' था। विद्युन्मालाके समान कांतिवाली, पूर्णकुंभके समान स्तनवाली उस युवती तड़िन्मालाके साथ कुंभकर्ण-का ब्याह हुआ था।

वैताढ्य गिरिकी दक्षिणश्रेणीमें ज्योतिषपुर नामका नगर था। उसके राजा 'वीर' की पत्नी 'नंदवती' के गर्भसे एक कन्याका जन्म हुआ। उस पंकज–कमल–की शोभाको चुरानेवाली पंकजनयनी, देवांगनाके समान

रूपवान् कन्याका नाम ' पंकजश्री ' था । उसके साथ बिभीषणके लग्न हुए ।

चंद्रके समान तेजस्वी और अद्भुत पराक्रमधारी, ऐसे एक पुत्रका मंदोदरीने प्रसव किया । उसका नाम ' इन्द्रजीत ' रक्खा गया । कुछ काल बीतनेके बाद मेघके समान नेत्रोंको आनंद पहुँचानेवाले ' मेघवाहन ' नामक दूसरे पुत्रको मंदोदरीने और जन्म दिया ।

लंकापति वैश्रवणका पराभव; और दीक्षाग्रहण ।

पिताका वैर याद कर बिभीषण और कुंभकर्ण वैश्रवणाश्रित लंका राज्यमें उपद्रव करने लगे । एक वार वैश्रवणने दूतके साथ रत्नश्रवासे कहलाया कि " रावणके अनुजबंधु-तुम्हारे छोटे लड़के कुंभकर्ण और विभीषणको समझाकर उपद्रव करनेसे रोको । ये दोनों दुर्मद लड़के पाताल लंकामें रहनेसे, कूएके मेंडककी तरह, अपनी और दूसरोंकी शक्तिको नहीं पहिचानते हैं; इसलिए वे मत्त होकर विजयकी इच्छासे मेरे राज्यमें उपद्रव किया करते है । मैंने बहुत दिनोंतक उनकी उपेक्षा की है; उनको क्षमा किया है । हे क्षुद्र ! तू अब भी उनको न समझावेगा तो उन्हें और साथ ही तुझे भी जहाँ माली गया है वहाँ पहुँचा दूँगा । तू हमारी शक्तिको भली प्रकारसे जानता है ।" दूतके ऐसे वचन सुन महामनस्वी रावण क्रोध करके बोलाः—" अरे यह श्रवण कौन चीज है " जो

दूसरोंको कर देता है, जो दूसरोंके सहारेसे राज्य करता है उसको ऐसे वचन बोलते लाज नहीं आती ? ओह ! कैसी धृष्टता है! तू दूत है इसलिए मैं तुझको मारता नहीं हूँ। अब तू तत्काल ही यहाँसे चलाजा।"

रावणके वचन सुन, दूत तत्काल ही वैश्रवणके पास गया और उसको रावणका पूरा कथन सुना दिया। क्रोधित रावण भी दूतके पीछे ही पीछे अपने अनुजों सहित सेना लेकर लंकापर चढ़ गया, और दूत भेजकर युद्धके लिए उसने वैश्रवणको निमंत्रण दिया। वैश्रवण बड़ी भारी सेना लेकर युद्धके लिए नगरसे बाहिर आया। युद्ध-प्रारंभ हुआ। थोड़ी ही वारमें अनिवारित पवन जैसे वन-भूमिको भंग करता है वैसे ही रावणने उसकी सेनाको भंग कर दिया। वैश्रवणने सेनाका भंग होना अपना ही भंग होना समझा। उसका क्रोध बुझ गया। वह विचार करने लगा—कमलोंके छिन्न होनेसे सरोवरकी, दाँतोंके टूट जानेसे हाथीकी, शाखाओंके गिर पड़नेसे वृक्षकी, मणि-विहीन अलंकारकी ज्योत्स्ना रहित चंद्रमाकी और जल-हीन मेघोंकी जैसी स्थिति होती है वैसी ही स्थिति शत्रु द्वारा जिस पुरुषका मान मर्दित होता है उस पुरुषकी भी होजाती है। ऐसी स्थिति धिक्कार योग्य है। मगर वह मानभंग पुरुष यदि उस स्थितिमें मुक्तिके लिए यत्न करे तो वह वास्तविक स्थानको पा सकता है।

'स्तोकं विहाय बह्विष्णुर्नहि लज्जास्पदं पुमान्।'

(थोड़ा छोड़ विशेषकी इच्छा करनेवाला पुरुष कभी लज्जाका स्थान नहीं बनता।) अतः मैं वही करूँगा। अनेक अनर्थोंके मूल इस राज्यकी अब मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं मोक्षमंदिरकी द्वाररूप दीक्षा ग्रहण करूँगा। यद्यपि कुंभकर्ण और रावण मेरा अपकार करते थे; परन्तु उन्हींके कारणसे मुझे आज सुमार्गका दर्शन हुआ है; इस लिए वे मेरे उपकारी हैं। रावण मेरी मासीका लड़का होनेसे वैसे ही मेरा बन्धु था; और अब इसकी कृतिसे भी यह मेरा बन्धु ही हुआ है; क्योंकि यदि इसकी ओरसे ऐसा उपक्रम नहीं होता—यदि यह युद्धकर मेरी सेनाका भंग नहीं कर देता—तो ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि मुझे कभी नहीं सूझती।" ऐसा सोच, शस्त्रास्त्रोंका त्यागकर, वैश्रवणने अपने आप ही दीक्षा ग्रहण कर ली।

यह खबर सुन रावण उसके पास गया और नमस्कार कर, हाथ जोड़, बोलाः—"तुम मेरे ज्येष्ठ बन्धु हो; अतः अनुजके इस अपराधको क्षमा करो। हे बन्धु! तुम निःशंक हो लंकामें राज्य करो। हम और जगह चले जायँगे। पृथ्वी बहुत विशाल है।" रावणकी बात सुनी; मगर उसी भवमें मोक्ष जाने वाले महात्मा वैश्रवणने—जो कि प्रतिमा धारण कर खड़े थे—कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वैश्रवणको निस्पृह हुआ समझ, रावणने, उससे क्षमा

माँगी। फिर लंका और पुष्पक विमानको उसने अपने अधिकारमें कर लिया। तत्पश्चात् विजयलक्ष्मी रूप लतामें पुष्पके समान उस पुष्पक विमानमें बैठकर रावण समेत-गिरि–समेत शिखर–पर अर्हंत प्रतिमाकी वंदना करनेके लिए गया। वंदना करके नीचे उतरते समय रावणने सेनाकी कल कल ध्वनिके साथ वनके हाथीकी गर्जना सुनी। उसी समय प्रहस्त नामक एक प्रतिहारीने आकर रावणसे कहाः—“ हे देव ! यह हस्ति रत्न आपका वाहन बननेके योग्य है।” सुनकर रावण वहाँ गया और उसने उस हस्तिको, उस वन गजेंद्रको–जिसके दांत ऊँचे और लंबे थे; जिसके नेत्र मधु, या पिंगल–दीप–शिखा–के वर्णवाले थे; जिसका कुंभस्थल शिखरके समान उन्नत था; मद बहानेवाली नदीका जो उद्गमस्थान–गिरि–था; और जो सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लंबा था–क्रीडामात्रसे ही अपने वशमें कर लिया। फिर उस पर सवारी की। उसपर बैठा हुआ रावण ऐसा मालूम होने लगा मानो ‘ इन्द्र ’ अपने ऐरावत हाथीपर बैठा है। रावणने उसका नाम ‘ भुवनालंकार ’ रक्खा। हाथी को हाथियोंके साथमें बँधवा रावणने वह रात वहीं बिताई।

रावणद्वारा यमराजाका पराभव।

प्रातःकाल ही रावण सपरिवार सभामें बैठा हुआ था। उस समय पहरेदारसे आज्ञा मँगवाकर ‘ पवनवेग ’ नामक

विद्याधर—जिसका सारा शरीर घाव लगनेसे जर्जरित हो रहा था—सभामें गया और रावणको प्रणाम कर कहने लगाः—" हे देव किष्किंधी राजाके पुत्र सूर्यरजा और ऋक्षरजा पाताल लंकासे किष्किंधामें गये थे। वहाँ यमके समान भयंकर और प्राणोंको संशयमें डालनेवाले 'यम राजाके साथ उनका तुमुल युद्ध हुआ। बहुत देर तक युद्ध होनेके बाद; यमराजाने दोनों भाइयोंको चोरकी भाँति बाँध लिया और जेलखानेमें डाल दिया। उस जेलखानेको उसने वैतरणीवाला नरक बनाया है; और दोनों भाइयोंको और उसके परिवारको वह छेदन भेदन आदि नरक-यातना दे रहा है। हे अलंघनीय आज्ञादायक दश-मुख! तुम उनको शीघ्र ही छुड़ाओ। क्योंकि वे तुम्हारे क्रमागत सेवक हैं; उनका पराभव तुम्हारा ही पराभव है।"

यह सुनकर रावण बोलाः—" तुम कहते हो यह बात बिलकुल ठीक है। 'आश्रय-दाताकी दुर्बलताहीसे आश्रि-तका पराभव होता है। मेरे परोक्षमें दुर्बुद्धि 'यम' ने मेरे सेवकोंको, बाँध कर काराग्रहमें डाल दिया है; इसका प्रतिफल मैं उसको शीघ्र ही दूँगा।"

फिर अनेक प्रकारकी इच्छाओंका रखनेवाला, उग्र भुज-वीर्यका धारक रावण सेना लेकर 'यम' दिग्पाल पालित किष्किंधापुरी पर चढ़ गया। वहाँ त्रपुपान, शिला-

स्फालन, और पर्शुच्छेद आदि[1] महा दुःखदायी सात दारुण नरक रावणने देखे। उनमें अपने सेवकोंको दुःख पाते देख रावणने वहाँके रक्षक परमाधार्मीकोंको[2]–जैसे गरुड सर्पोंको त्रस्त करता है वैसे–त्रासित–पीड़ित–कर दिया; और उन कल्पित नरकोंका ध्वंस कर उसमें रहे हुए अपने आश्रित सेवकोंको और अन्य सब कैदियोंको छुड़वा लिया? 'बड़े पुरुषोंका आगमन किसके कष्ट नहीं मिटाता है?'

नरकके रक्षक रोते चिल्लाते, दोनों हाथ ऊँचे कर दुहाई देते, यमराजके पास गये, और सारे समाचार उन्होंने उसको सुनाये। सुनकर साक्षात् दूसरे 'यम' के समान प्रतिभासित होता हुआ युद्धरूपी नाटकका सूत्रधार यमराज अपनी सेना ले क्रोधसे लाल आँखें करता हुआ; युद्ध करनेके लिये नगरसे बाहिर आया। युद्ध प्रारंभ होगया। सैनिक सैनिकोंके साथ, सेनापति, सेनापतियोंके साथ और क्रोधी यमराज क्रोधी रावणके साथ जुट गये–युद्ध करने लगे।

---

१ नरकोंकी कल्पना करके अपराधियोंको तपाया हुआ शीशा पिलाना; पत्थरकी शिलापर पछाड़ना; कुल्हाड़ीसे छेदन करना आदि दुःख।

२ नरकमें जैसे परमाधामी देव दुःख देते हैं वैसे ही यहाँ भी नाम दिया गया था।

बड़ी देरतक रावण और यमराजके आपसमें बाण-युद्ध होता रहा। फिर जैसे उन्मत्त हाथी शुण्ड-दंड-सूंड-रूपी दंड-को ऊँचा करके दौड़ता है वैसे, ही यमराज दारुण दंड लेकर, बड़े वेगके साथ रावणपर दौड़ा। शत्रुओंको नपुंसकके समान समझनेवाले रावणने क्षुरप्र बाणसे कमलके समान उस दंडके टुकड़े कर दिये; यमराजने रावणको बाणोंसे ढक दिया; रावणने उन बाणोंको ऐसे ही नष्ट कर दिये जैसे लोभ सब गुणोंको नष्ट करदेता है। फिर एक साथ बाण-वर्षाकर रावणने यमराजको जर्जर कर दिया; जैसे जरा-बुढ़ापा-शरीरको जर्जर बना देता है। तब यमराज संग्रामसे मुहँ मोड़ भागा और शीघ्रतासे रथनुपुरके राजा इन्द्र विद्याधरकी शरणमें चला गया।

इन्द्र राजाको नमस्कार कर, हाथ जोड़ वह बोला:-"हे प्रभो! मैं अब अपने यमपनेको जलांजुली देता हूँ। हे नाथ अब मैं, तोषसे-प्रसन्नतासे, या रोषसे किसी तरहसे भी यमपना न करूँगा; क्योंकि आजकल यमका भी यम रावण उत्पन्न हुआ है। उसने नरकके रक्षकोंको मार सारे नारकियोंको छोड़ दिये हैं। उसके पास क्षात्र-व्रतरूप धन है इसी लिए उसने मुझे भी जिवित छोड़ दिया है। उसने वैश्रवणको जीत, लंका और पुष्पकविमान उससे ले लिए हैं; और सुरसुंदरके समान बली विद्याधरको भी उसने हरा दिया है।"

यमराजके ऐसे वचन सुनकर विद्याधर इन्द्रको बड़ा क्रोध आया; वह युद्ध करनेको तत्पर हुआ। परन्तु बलवान्के साथ युद्ध करनेमें भीत, कुल-मंत्रियोंने, अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे इन्द्रको समझाकर, उसे युद्ध करनेसे रोक दिया। इसलिए यमराजको सुरसंगीत नामके नगरका राजा बना इन्द्र रथनुपुरमें रहकर पहिलेके समान ही विलास-आनंद-करने लगा।

इधर पूर्ण पराक्रमी रावणने आदित्यरजाको किष्किंधापुरीका और ऋक्षरजाको ऋक्षपुरका राज्य दिया और फिर देवताकी जैसे लोग स्तुति करते हैं वैसे ही; बंधुओं और नगरजनोंके द्वाराकी हुई अपनी स्तुतिको सुनता हुआ आप लंकामें चला गया। इन्द्र जैसे अमरावतीमें रहकर राज्य करता है वैसे ही रावण लंकामें राज्य करने लगा।

खर विद्याधरके साथ सूर्पणखा का ब्याह।

वानरोंके राजा आदित्यरजाकी स्त्री 'इंदुमालिनी' के गर्भसे एक बलवान पुत्र जन्मा। उसका नाम 'वाली' रक्खा गया। उग्र भुजबल धारी 'वाली' जंबूद्वीपकी, समुद्रपर्यंत प्रदक्षिणा देताथा और सर्व चैत्योंकी वंदना करता था। आदित्यरजाके दो सन्तानें और हुईं। एक लड़का और दूसरी लड़की। लड़केका नाम 'सुग्रीव' था और लड़कीका 'श्रीप्रभा'। यह सबसे छोटी थी। ऋक्ष-

रजाकी पत्नी 'हरिकांताने' दो पुत्र प्रसवे। उन जगत-प्रसिद्ध बालकोंके नाम 'नल' और 'नील' थे। राजा आदित्यरजाने अपने महान बलवान पुत्र बालीको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और तपश्चरण कर मोक्षको प्राप्त किया। वालीने अपने ही समान सम्यग्दृष्टि, न्यायी, दयालु और महान: पराक्रमी, अपने: अनुज सुग्रीवको युवराज बनाया-अपने राज्यका उत्तराधिकारी बनाया।

एकवार रावण अपने अंतःपुर सहित हाथीपर बैठकर, मेरुगिरिपर चैत्यकी वंदना करनेको गया। पीछेसे मेघ-प्रभ नामक खेचरका पुत्र खर कारणवश लंकामें आया। उसने सूर्पणखाको देखा। वह उसका अनुरागी बन गया। वह भी उससे अनुराग करने लगी। खर अपने ऊपर अनुराग करनेवाली सूर्पणखाको, हरण करके पाताल-लंकामें गया और आदित्यरजाके पुत्र चंद्रोदरसे वहाँका राज्य छीन स्वतः वहाँका राजा बन बैठा।

रावण मेरुगिरिसे लौटकर लंकामें आया, वहाँ उसने चंद्रनखा-सूर्पणखाके हरणका समाचार सुना। इससे उसको अतीव क्रोध हो आया, और हाथीका शिकार करने जाते वक्त जैसे केसरीसिंह विकाल बन जाता है वैसी ही विकाल मूर्ति धारणकर रावण, खरका नाश करनेके लिए जानेको उद्यत हुआ। तब मंदोदरीने आकर रावणसे कहा:-"हे मानद!-सन्माननीय! इतना क्रोध न करो, जरा

विचार करो। कन्या–दान अन्तमें किसीको देना ही था। फिर कन्या यदि अपनी इच्छासे किसी कुलीन वरको वरले तो इसमें बुरा क्या है? यह तो उल्टे अच्छा ही है। (मुझे ज्ञात हुआ है कि सूर्पणखा स्वयं, उसकी अनुरागिणी होकर, उसके साथ गई है।) दूषणका पुत्र खर विद्याधर सूर्पणखाके योग्य वर है। वह पराक्रमी आपका एक निर्दोष सुभट बन सकता है। इसलिए उसपर प्रसन्न हो ओ; और प्रधान पुरुषोंको भेज, सूर्पणखाके साथ उसका ब्याह करवा दो। पाताल लंकाका राज्य भी उसीको दे दो। " दोनों अनुज बन्धुओंने भी रावणको इसी तरह समझाया। रावणने शान्त होकर उनकी बात मान ली और मय व मरीच नामके दो राक्षस अनुचरोंको भेज, उसने खरके साथ सूर्पणखाका ब्याह करवा दिया। तत्पश्चात् पाताल लंकामें रह रावणकी आज्ञा पालता हुआ, खर सूर्पणखा सहित आनंदसे भोग भोगता हुआ दिन बिताने लगा।

राज्यभ्रष्ट चंद्रोदय कालयोगसे मर गया। उस समय उसकी पत्नी 'अनुराधा' गर्भिणी थी। वह भाग कर वनमें चली गई। वहाँ उसने, सिंहनी जैसे सिंहको जन्म देती है वैसे ही एक (पुरुषसिंह) पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम 'विराध' रक्खा। वह बड़ा ही नीतिमान और बलवान हुआ। युवावस्था तक वह सर्व कलासागरको पार कर गया–सारी कलाओंमें प्रवीण होगया।

फिर वह महाबाहु अस्खलित वेगसे पृथ्वीपर विचरण करने लगा।

वाली और रावणका युद्ध; वालीका दीक्षाग्रहण।

रावण अपनी राजसभामें बैठा हुआ था। प्रसंगोपात किसीने कहा कि–" वानरेश्वर वाली बड़ा प्रौढ प्रतापी और बलवान पुरुष है।" रावण वालीकी इस प्रशंसाको न सह सका; जैसे कि सूर्य किसी अन्यके प्रकाशको नहीं सह सकता है; इस लिए उसने वालीके पास एक दूत भेजा।

दूत वालीके पास गया और नमस्कार कर उसको कहने लगा:—" मैं रावणका दूत हूँ। उसने आपको कुछ संदेश कहलाया है। उसने कहलाया है– तुम्हारे पूर्वज श्रीकंठ शत्रुओंसे पराजित होकर हमारे पूर्वज शरणागतवत्सल कीर्तिधवलके शरणमें आये थे। उन्होंने उनको अपने श्वसुरपक्षके समझ उनकी रक्षा की थी; और फिर उनसे उनको बहुत स्नेह होगया था; उनका वियोग उनके लिए असह्य था इस लिए उन्होंने उन्हें अपने वानरद्वीपका राज्य देकर यहीं रखलिया था। तबहीसे अपना स्वामी, सेवकका संबंध है। अपने दोनों वंशोंमें तबसे अबतक कई राजा होगये हैं; और वे उस संबंधको बराबर निभाते आये हैं। उनसे सत्रहवीं पीढ़ीमें तुम्हारे पितामह किष्किंधी हुए थे। उस समय मेरे प्रपितामह सुकेश लंकामें राज्य करते थे। उनका भी वैसा ही संबंध रहा था। बादमें

अठारहवीं पीढ़ीमें तुम्हारे पिता सूर्यरजा हुए। वे यमराजके कैदखानेमें पड़े थे । उनको मैंने छुड़ाया था; और मैंने ही उनको वापिस किष्किंधाका राजा बनाया था । इस बातको सब लोग जानते हैं। अब तुम उनके राज्यपर बैठे हो अतः उचित है कि वंशपरंपरागत संबंधके अनुसार तुम भी हमारी सेवा करो।"

दूतके ऐसे वचन सुन, गर्वरूप अग्निके शमी वृक्ष समान, महामनस्वी वालीने अविकारी आकृति रख, गंभीरस्वरमें कहाः– "राक्षसवंशके और वानरवंशके राजाओंमें; अर्थात तेरे स्वामीके कुलमें और मेरे कुलमें परस्पर, अखंड रूपसे, स्नेहका संबंध चला आ रहा है। उसको मैं भली प्रकारसे जानता हूँ। अपने पूर्वजोंने एक दूसरेको संपत्ति और विपत्तिमें सहायता दी थी। उसका कारण केवल स्नेह था। स्वामीसेवक भाव नहीं था। हे दूत! सर्वज्ञ देव और साधुगुरुके सिवा मैं किसी दूसरेको पूजने योग्य नहीं समझता हूँ। मेरे लिए तो वे ही पूज्य हैं। तेरे स्वामीके हृदयमें ऐसा मनोरथ कैसे उत्पन्न हुआ है? उसने अपनेको स्वामी और हमको सेवक समझ, आज कुल क्रमागत स्नेहसंबंधका खंडन किया है । तो भी मैं, मित्रकुलमें जन्मे हुए और अपनी शक्तिसे अजान, तेरे स्वामीको हानि पहुँचानेवाली कोई क्रिया नहीं करूँगा; क्योंकि मैं लोकापवादसे-लोक-निंदासे-डरता हूँ । यदि वह

मुझे हानि पहुँचानेवाली कोई क्रिया करेगा तो फिर मुझे भी उसका प्रतिकार अवश्यमेव करना पड़ेगा। मगर मैं अपने पूर्व-स्नेहरूपी वृक्षका छेदन करनेमें कभी अग्रसर नहीं होऊँगा। हे दूत! तू यहाँसे जा। उसको, अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ करना हो करने दे।" दूतने जाकर रावणको सब बातें सुना दीं।

दूतकी बातें सुनकर रावणकी क्रोधाग्नि भभक उठी। वह बड़ी भारी सेना लेकर किष्किंधा पर चढ़ गया। भुज-वीर्यसे सुशोभित वाली राजा भी तैयार होकर उसके सामने आया।

'दोष्मतां हि प्रियो युद्धातिथिः खलु।'

(पराक्रमी वीरोंको युद्धके अतिथि सदा प्रिय होते हैं।) दोनों दलोंमें युद्ध प्रारंभ होगया। पाषाणोंका, वृक्षोंका और गदाओंका दोनों सैन्य परस्पर प्रहार करने लगे। रथोंका,गिर कर पापड़ोंकी तरह चूर्ण होने लगा; हाथी मिट्टीके पिंडकी तरह टूटने लगे, घोड़े कद्दूकी तरह स्थान स्थानसे खंडित होने लगे और पैदल, चंचा—घासके पुतले—की भाँति भूमि पर गिरने लगे। इस तरह प्राणियोंका घात होते देखकर वीर वालीको दया आई। वह रावणके पास गया और कहने लगाः—

"विवेकी पुरुषोंके लिए एक सामान्य प्राणिका वध करना भी अनुचित है; तब हस्ति आदि पंचेन्द्री प्राणियों-

की तो बात ही क्या है ? यद्यपि शत्रुओंको (हरप्रकारसे) जीतना योग्य है, तथापि पराक्रमी पुरुष तो निज भुजसे ही शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं । हे रावण ! तू पराक्रमी है और श्रावक भी है इस लिए सेना-युद्धको बंद कर दे; क्योंकि ऐसे युद्धोंमें अनेक (निर्दोष) प्राणियोंका संहार होता है; इस लिए ये चिर नरकवासकी प्राप्तिके कारण होते हैं । ”

वालीने रावणको जब इस भाँति समझाया तब, धर्मके जानने वाले; सब प्रकारकी युद्धविद्यामें चतुर, रावणने स्वयमेव, वालीसे युद्ध करना प्रारंभ किया । रावणने वालीपर जितने शस्त्र चलाये उन सबको वालीने अपने शस्त्रोंसे निरर्थक—हत-शक्ति कर दिया । जैसे कि अग्निके तेजको सूर्यकी किरणें कर देती हैं । रावणने सर्पास्त्र और वरुणास्त्र आदि मंत्रास्त्र चलाये । वालीने गरुडास्त्र आदि शस्त्रोंसे उनको नष्ट करदिया । जब सारे शस्त्र मंत्रास्त्र निष्फल होगये, तब रावणने, एक दीर्घकाय भुजंगके समान, ‘ चंद्रहास ’ नामक खड्गको खींचा; और उसे ऊँचा कर वह वालीको मारने चला । उस समय रावण खड्ग सहित ऐसा दिखाई देता था मानो कोई एक दाँत-वाला हाथी जा रहा है; अथवा मानो कोई पर्वतका शिखर उठाकर लेजा रहा है ।

जैसे कोई हाथी लीलामात्रमें किसी वृक्षको डालोंसहित उखाड़ डालता है वैसे ही वालीने, चंद्रहास खड्ग सहित रावणको बाएँ हाथसे उठाकर अपनी बगलमें दबालिया और फिर आप अव्यग्रतासे क्षणवारमें, चार समुद्रोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा देआया। लज्जाके मारे रावणका सिर झुक गया; वालीने रावणको छोड़ दिया और कहाः—"हे रावण! वीतराग, सर्वज्ञ, आप्त और त्रैलोक्यपूजित अरिहंतके सिवा मेरे लिए संसारमें कोई भी नमस्कारके योग्य नहीं है। तेरे शरीरोद्भूत—शरीरमेंसे उत्पन्न हुए हुए—तेरे उस-मानको धिक्कार है, कि जिसके कारण तू मुझे अपना सेवक बनानेकी इच्छा कर, इस स्थितिको प्राप्त हुआ है; परंतु मैं मेरे बड़ों पर किये हुए तेरे उपकारोंको याद कर, तुझे छोड़ देता हूँ, और इस पृथ्वीका राज्य भी मैं तुझे देता हूँ। तू इसपर अखंड आज्ञा चला और इसका पालन कर। यदि मैं विजयकी इच्छा करूँ—यदि मैं इस पृथ्वी पर अधिकार करना चाहूँ—तो फिर तुझे यह पृथ्वी कैसे मिले? क्योंकि जहाँ सिंह बसते हैं वहाँ हाथियोंको कैसे जगह मिल सकती है? मगर मुझे अब कुछ इच्छा नहीं है। मैं मोक्ष साम्राज्यकी कारणभूत दीक्षा ग्रहण करूँगा। किष्किंधाका राज्य सुग्रीवको देता हूँ। यह तेरी आज्ञा पालता हुआ यहाँका राज्य करेगा।'

इतना कह, सुग्रीवको राज्य—सिंहासनापर बिठा, वालीने

'गगनचंद्र' मुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। विविध प्रकारके अभिग्रहधर, तपको आचरणमें लाते हुए, और मुनिप्रतिमाको भली प्रकार निभाते हुए, वाली मुनि ममता-रहित बन, पृथ्वीपर शुभ ध्यानपूर्वक विहार करने लगे। जैसे वृक्षको पुष्प, पत्ते और फलादि संपत्तियाँ प्राप्त होती हैं, वैसे ही भट्टारक वाली मुनिको भी अनुक्रमसे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुईं। एकवार विहार करते हुए, वे अष्टापद गिरिपर गये और वहाँ वे दोनों भुजाएँ लंबीकर कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे। उनकी ध्यान-प्रतिमा ऐसी मालूम होती थी कि मानो वृक्षके ऊपर झूले डाले हुए हैं। एक महीने तक उन्होंने इसी तरह ध्यानमें रह व्रत किया। महीनेके बाद पारणा किया; फिर एक महीनेका कायोत्सर्गकर व्रत किया। महीनेके बाद पारणा किया। इसीप्रकार वे मास क्षमण तप करने लगे।

उधर सुग्रीवने अपनी बहिन श्रीप्रभाका ब्याह रावणके साथ कर दिया; इस ब्याहने सूखते हुए पूर्वस्नेहरूपी वृक्षको हरा करनेमें सारणी-जलधारा-का कार्य किया। फिर चंद्रके समान उज्ज्वल कीर्तिवाले सुग्रीवने वालीके चंद्ररश्मि नामक पराक्रमी पुत्रको युवराज पदवी प्रदान की। जिसकी आज्ञा मानना सुग्रीवने स्वीकार किया है, ऐसा रावण श्रीप्रभाको ले लंकामें गया। अन्य भी कई विद्याधरोंकी कन्याओंके साथ रावणने जबर्दस्तीसे ब्याह किया।

रावणका अष्टापदगिरि उठाना ।

एक वार रावण नित्यालोक नगरीमें, वहाँके राजा 'नित्यालोक' की कन्या 'रत्नावली' के साथ व्याह करने जा रहा था। मार्गमें अष्टापद गिरि आया। वहाँ रावणका पुष्पक विमान चलता हुआ रुक गया । जैसे कि, दुर्गके पास शत्रु-सेनाकी गति रुक जाती है । जैसे सागरमें लंगरोंके डाले जानेसे जहाज रुक जाता है; जैसे बँधजानेसे हाथी रुक जाता है, वैसे ही अपने विमानको रुका हुआ देखकर, रावणको बहुत क्रोध आया । वह यह कहता हुआ नीचे उतरा कि—"कौन है जो मेरे विमानको रोक कर मौतका नवाला बननेकी इच्छा रखता है ?" पर्वतपर उसे वाली मुनि दिखाई दिये । कायोत्सर्ग करते हुए मुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे; मानो पर्वतसे कोई नवीन शिखर निकला है । मुनिको अपने विमानके नीचे देखकर वह बोलाः—"रे वाली मुनि ! क्या अब भी मुझपर तेरा क्रोध है ? क्या जगतको ठगनेके लिए तूने यह व्रत धार रक्खा है ?—दीक्षा ले रक्खी है ? पहिले किसी मायाके बलसे तूने मुझे उठाकर फिराया था; मगर पीछेसे बदलेकी आशंका कर तूने दीक्षा लेली थी । मगर अब भी मैं तो वही रावण हूँ; और मेरी भुजाएँ भी वे ही हैं । अब मेरा समय है; मैं तुझे तेरे कियेका प्रति फल दूँगा । तू मुझको चंद्रहास खड्गसहित उठाकर चारों समुद्रोंके चक्कर दे

आया था, मैं तुझको, अब इस अष्टापद गिरि सहित, लवण समुद्रमें डाल देता हूँ।"

ऐसा कह, जैसे स्वर्गमेंसे गिरा हुआ वज्र पृथ्वीको फाड़ देता है, वैसे ही पृथ्वीको फाड़ रावण अष्टापद गिरिके नीचे घुसा। फिर भुजाओंके बलसे उद्धत बने हुए रावणने एक हजार विद्याओंका स्मरणकर, उस दुर्द्धर पर्वतको उठाया। उस समय उसके तड़तड़ शब्दोंसे व्यंतर त्रसित हुए; झल झल शब्दोंसे चपल बने हुए समुद्रसे पृथ्वीतल ढकने लगा; खड़ खड़ करके पड़ते हुए पाषाणोंसे वनके हाथी क्षोभ पाने लगे और कड़कड़ाहट करते हुए गिरिनितंबके उपवनमें वृक्ष टूटकर गिरने लगे।

रावणने पर्वत उठाया; उक्त प्रकारकी स्थिति प्राप्त हुई। इस बातको अनेक लब्धिरूपी नदियोंको धारण करने वाले–सागर–शुद्ध बुद्धि वाले महा मुनि वालीने देखा। वे सोचने लगे:–" अहो ! यह दुर्मति रावण अब तक मुझसे द्वेष रखता है; और मेरे द्वेषके कारण असमयमें ही अनेक प्राणियोंका संहार करनेको तैयार हुआ है; और साथही भरतेश्वरके बनवाए हुए, इस चैत्यका नाश करके, भरतक्षेत्रके आभूषणरूप इस तीर्थका भी यह उच्छेद करनेका यत्न कर रहा है। यद्यपि मैं इस समय निःसंग हूँ; मैं अपने शरीरकी भी ममता नहीं रखता हूँ; राग द्वेष रहित हूँ; शमता जलमें निमग्न हूँ, तथापि प्राणियोंकी और चैत्यकी रक्षाके लिए

राग द्वेष किये विना रावणको थोड़ासा प्रबोध देना आवश्यकीय है।”

ऐसा विचार कर, भगवान वालीने पैरके अंगूठेसे अष्टापदगिरिके शिखरको जरासा दबाया। तत्काल ही उस दबावसे–जैसे मध्यान्हकालमें शरीरकी छाया संकुचित हो जाती है, जैसे जलके बाहिर कछुए का सिर संकुचित हो जाता है वैसेही,–रावणका शरीर संकुचित हो गया; उसके भुजदंड टूटने लगे; मुँहसे रुधिर बहने लगा। पृथ्वीको रुलाता हुआ रावण ऊँचे स्वरसे रोने लगा। उसी दिनसे उसका दूसरा नाम रावण हुआ। उसका आर्त आक्रंदन–हृदयको पसीजा देनेवाला रोना–सुन; दयालु वाली मुनिने उसको छोड़ दिया। ‘क्योंकि उन्होंने वह कार्य रावणको केवल शिक्षा देनेके लिए ही किया था, क्रोधसे नहीं।’

रावणका पश्चात्ताप और वाली मुनिका मोक्ष गमन।

गिरिके नीचेसे निकल, प्रतापहीन बना हुआ रावण, पश्चात्ताप करता हुआ, वाली मुनिके पास गया और हाथ जोड़ नमस्कार कर बोलाः—“जो अपनी शक्तिसे अजान हैं, जो अन्याय करनेवाले हैं, और जो लोभसे हार चुके हैं, उन सबमें मैं प्रधान हूँ; धुरंधर हूँ। हे महात्मा! मैं निर्लज्ज होकर बार बार आपका अपराध करता हूँ और आप शक्तिमान होते हुए भी सब कुछ सहते

हैं, और मुझको क्षमा कर देते हैं । हे प्रभो! अब मैं मानता हूँ कि पहिले आपने पृथ्वीका त्याग किया था सो मेरे पर कृपा करके ही किया था। सामर्थ्यहीन होनेसे नहीं। मगर मैं उस समय इस बातको नहीं समझ सका था। हे नाथ! हाथीका बच्चा, जैसे अज्ञानतासे पर्वतको फिरानेका प्रयत्न करता है वैसे ही, अज्ञानतासे मैंने अपनी शक्तिको तोलना प्रारंभ किया था; परन्तु आज मैं समझा, कि आपमें और मुझमें इतना ही अंतर है, जितना पर्वत और बल्मीक[1] में; तथा गरुड़ और गीध पक्षीमें है। हे स्वामी! मृत्युमुखमें पड़े हुएकी आपने रक्षा की; मुझको प्राणदान दिया। मुझ अपकार करनेवाले पर भी आपने उपकार किया, इस लिए आपको मैं नमस्कार करता हूँ। "

इस तरह दृढ़ भक्तिके साथ वाली मुनिसे प्रार्थना कर, क्षमा माँग तीन प्रदक्षिणा दे, रावणने नमस्कार किया। वाली मुनिके इस महात्म्यको देख, हर्षित हो, ' साधु ' साधु ' कह, आकाशमेंसे देवताओंने वाली मुनि पर पुष्प-वृष्टि की।

दुबारा मुनिको नमस्कार कर; रावण पर्वतके मुकुट समान भरत राजाके बनवाये हुए, चैत्यके पास गया। चैत्यके बाहिर अपने चंद्रहास खड्ग आदि शस्त्र रख; अंतः-पुर सहित रावणने अंदर जाकर ऋषभादि अर्हतोंकी अष्ट-

१ वामलूर, कीड़ोंसे बनाया गया मिट्टीका ढेर।

प्रकारी पूजा की । फिर महान साहसी रावणने भक्तिवश हो, अपनी नसोंको खींच, उसकी तंत्री-वीणा बना, भुज-वीणा बजाना प्रारंभ किया । दशानन 'ग्राम' रागसे रम्य बनी हुई मनोहर वीणा बजा रहा था; और उसकी स्त्रियाँ सात स्वरोंमें मनोहर स्तवन-स्तुतियाँ-गा रही थीं ।

उसी समय पन्नगपति धरणेन्द्र चैत्यकी यात्राके लिए वहाँ आया । उसने पूजा करके प्रभु वंदना की । पश्चात रावणको अर्हतके गुणमय, ध्रुवक आदि गीतोंका, मनोहर वीणाके साथ गायन करते देख; धरणेंद्रने उसको कहाः– "हे रावण तू अर्हतोंका बहुत ही मनोहर गुण-गायन कर रहा है । यह गायन तू तेरे अन्तःकरणकी भक्तिसे कर रहा है; इस लिए मैं तुझसे संतुष्ट हुआ हूँ । यद्यपि अर्हतोंकी भक्तिका मुख्य फल मुक्ति है, तथापि अब तक तेरी संसार-वासना जीर्ण नहीं हुई है, इस लिए तेरी इच्छा हो सो माँग । मैं तुझे दूँगा ।"

रावणने उत्तर दियाः—"हे नागेंद्र, देवोंके भी देव श्री अर्हत प्रभुके गुणोंकी स्तुति सुनकर आप प्रसन्न हुए; यह आपके हृदयमें रही हुई स्वामी-भक्तिका चिन्ह है । मगर मुझे तो किसी वरदानकी आवश्यकता नहीं है; क्यों कि वरदान देनेसे जैसे आपकी स्वामी-भक्ति उत्कृष्ट होती है, वैसे ही वरदान माँगनेसे मेरी स्वामीभक्ति हीन होती है ।"

धरणेन्द्रने फिर कहाः—"हे मानद रावण ! मैं तुझे

शाबाशी देता हूँ; और तेरी इस निस्पृहतासे तुझ पर विशेष तुष्ट हुआ हूँ।"

इतना कह, अमोघ शक्ति और रूप विकारी–स्वरूप बदलेनवाली-विद्या रावणको दे, धरणेन्द्र अपने स्थानपर चले गये।

रावण अष्टापद पर्वत ऊपरके सब तीर्थंकरोंकी वंदना-कर, नित्यालोक नगरमें गया और वहाँसे रत्नावलीका पाणिग्रहण कर, उसके साहित वापिस लंकामें गया।

उसी समय वाली मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुर असुरोंने आकर केवलज्ञानका महोत्सव किया। अनुक्रमसे वाली मुनि भवोपग्राही[1] कर्मोंका क्षय कर, अनंत चतुष्टयको पा, मोक्षमें गये।

साहसगतिका शेमुषी विद्या साधने जाना।

वैताढ्यगिरि पर ज्योतिष्पुरमें 'ज्वलनशिख' नामक विद्याधरोंका राजा राज्य करता था। उसके श्रीमती नामकी एक राणी थी। रूप-संपत्तिसे वह लक्ष्मीतुल्य थी। उसके उदरसे एक विशाललोचनी कन्या हुई थी। उसका नाम 'तारा' रक्खा गया था।

'चक्रांक' नामक विद्याधर राजाके पुत्र 'साहस गति' ने एकवार ताराको देखा। उसको देखकर वह

---

१ नाम, गोत्र, वेदनी और आयु ये चार अघाती कर्म संसारका अंत होने तक रहते हैं; इस लिए इनको भवोपग्राही कर्म कहते हैं।

तत्काल ही काम पीडित हो गया। इस लिए साहसगतिने ज्वलनशिखके पास मनुष्य भेज कर, ताराको माँगा। उसी समय किष्किंधाके राजा सुग्रीवका दूत भी ताराको माँगने आया।—क्यों नहीं ?

' रत्ने हि बहवोऽर्थिनः। '

(रत्नकी सब इच्छा रखते हैं ।) साहसगति और सुग्रीव, दोनों ही जातिवान, रूपवान और पराक्रमी थे। इस लिए ज्वलनशिख निश्चय नहीं कर सका कि, वह कन्या किसको दे। अतः इसका निश्चय करनेके लिए उसने किसी निमित्तज्ञानीसे पूछा। निमित्तियाने कहा:— " साहसगति थोड़ी उमरवाला है और सुग्रीव दीर्घायुवाला है। "

यह जानकर ज्वलनशिखने सुग्रीवके साथ ताराका ब्याह कर दिया। साहसगतिको इस बातकी खबर हुई। वह अभिलाषा और वियोगकी आगसे झुलसने लगा और इधर उधर फिरने लगा, मगर उसको किसी जगहसे भी शांति नहीं मिली।

ताराके साथ क्रीडा करते हुए सुग्रीवके " अंगद " और जयानंद नामक दो पुत्र हुए। वे दिग्गज—ऐरावत हाथीके समान पराक्रमी थे।

मन्मथ—मथित आत्मावाला ताराका अनुरागी साहसगति विचारने लगा—" अरे! मृगके बच्चेके समान नेत्रों-

वाले, पके हुए बिंबफलके समान अधरवाले, उस सुंदरीके मुखको मैं कब चूमूँगा? अपने हाथोंसे उस रमणीके स्तन कुंभोंका मैं कब स्पर्श करूँगा? और गाढ आलिंगन करके उन स्तनोंको मैं कब दबाऊँगा? बलसे या छलसे किसी प्रकारसे भी क्यों न हो मैं उस सुन्दरीका अवश्यमेव हरण करूँगा।"

इस भाँति विचार कर, रूप बदलनेवाली 'शेमुषी' नामकी विद्या सीख, चक्रांक राजाका पुत्र साहसगति हिमाचलकी क्षुद्र गुफामें जाकर उस विद्याको साधनेके प्रयत्नमें लगा।

रावणका दिग्विजयके लिए प्रयाण करना।

इधर रावण दिग्विजयके लिए लंकासे बाहिर निकला; मानो पूर्व गिरिके तटमेंसे सूर्य निकला है। अन्यान्य द्वीपोंमें रहनेवाले विद्याधरोंको और राजाओंको वशमें कर, रावण पाताल लंकामें गया। वहाँ सूर्पणखाके पति खरने विनीत, मधुर वचनों द्वारा और भेटों द्वारा सेवककी भाँति रावणकी सविशेष प्रकारसे पूजा की।

वहाँसे रावण इन्द्र विद्याधरको जीतनेके लिए चला। खर विद्याधर भी अपनी चौदह हजार सेना ले, उसके साथ रवाना हुआ। सुग्रीव भी अपनी सेना लेकर, जैसे वायुके पीछे अग्नि जाती है वैसे ही, राक्षसपति रावणके पीछे चला।

असंख्य सेनासे भूमि और आकाशके मध्य भागको रूँधता हुआ समुद्रकी भाँति उद्भ्रांत होकर अस्खलित गतिसे रावण चलने लगा । आगे चलते हुए विंध्यगिरि से उतरती हुई, चतुर कामिनीके समान रेवा नदी उसके दृष्टिपथमें आई । उस कल कल नादिनीके किनारे हँस–श्रेणी ऐसी शोभित हो रही थीं, मानो उस चतुर कामिनीने कटिमेखला–कंदोरा-धारण किया है । विशाल तट-भूमि मानो उसके नितंब थे; उसकी अति भंगुर तरंगें लहराती हुई ऐसी दीख रही थीं, मानो उसकी केशराशी वायुसे हिल रही है । उसके अंदर बार बार उछलती हुई मछलियाँ ऐसी भासित हो रही थीं मानो वह कामिनी कटाक्ष पात कर रही है ।

इस प्रकारकी शोभाधारिणी रेवा नदीके तटपर रावणने पड़ाव डाला । अपनी सेनासे घिरा हुआ रावण, यूथसे घिरे हुए हस्तिपतिके समान सुशोभित होता था ।

रेवानदीके पूरसे रावणकी देवपूजाका प्लावित होना ।

रेवा नदीमें स्नान कर, दो उज्वल वस्त्र पहिन, मनको स्थिर कर, रावण आसनपर बैठा और मणिमय चौकीपर रत्नमय अर्हंत बिंबका स्थापन कर; रेवाके जलसे बिंबको स्नान करा; रेवाके विकासित कमल बिंबपर चढ़ा; उसका पूजन करने लगा ।

रावण इस तरह पूजामें लीन था, उस समय समु-

द्रके चढ़ावकी भाँति अकस्मात् रेवा नदीमें बड़ा भारी पूर आया। जल गुल्म–तृणगुच्छकी भाँति वृक्षोंको जड़से उखाड़ता हुआ नदीके ऊँचे २ किनारों पर भी फैलने लगा।

आकाशतक उछलती हुई तरंगोंकी पंक्तियाँ कांठेको गिराकर तटपर बंधी हुई नौकाओंको परस्पर टकरवाने लगी। पातालकी गुफाके समान किनारेकी बड़ी बड़ी खीणोंको–किनारेके खड्डोंको–जलके पूरने भर दिया। जैसे कि उदरंभरि–पेटू–के पेटको भोजन भर देता है। पूर्णिमाकी चंद्र-ज्योत्स्ना जैसे ज्योतिश्चक्रके सब विमानों को ढक देती है, वैसे ही उस पूरने रेवा नदीके अंदर जितने टापू–द्वीप-थे उनको चारों तरफसे ढक दिया। जैसे महावायु वेगके आवर्तसे–गोलचक्करसे–वृक्षोंके पत्तोंको उछालता है, वैसे ही उस जलके पूरने उठती हुई बड़ी बड़ी तरंगोंसे मत्स्योंको–मच्छोंको–उछालना प्रारंभ किया।

उस फेन-झाग-वाले और कचरेवाले पानीके पूरने वेगके साथ आकर, रावणकृत अर्हत पूजाको प्लावित कर दिया। पूजाका भंग होना, शिरच्छेदकी–सिर कटनेकी–पीड़ासे भी उसको ज्यादा दुःखदायी हुआ। वह क्रोधके साथ आक्षेप करता हुआ बोलाः—"अरे! यह कौन विना कारण वैरी बना है, कि जिसने इस दुर्निवार जलके समूहको अर्हतकी पूजामें विघ्न डालनेके लिए छोड़ दिया

है ? क्या वह जल छोड़नेवाला कोई मिथ्यादृष्टि है ? कोई विद्याधर है ? या कोई सुर है ? या कोई असुर है ? ”

रावणका सहस्रांशुको हराना; सहस्रांशुका दीक्षा ग्रहण करना ।

उसीसमय किसी विद्याधरने आकर रावणसे कहाः— “ हे देव ! यहाँसे आगे थोड़ी दूर पर एक माहीष्मती नामकी नगरी है । वहाँ सूर्यके समान तेजस्वी सहस्रांशु नामका महा पराक्रमी राजा राज्य करता है । एक हजार राजा उसकी सेवा करते हैं ।

उसने जलक्रीडाका आनंद करनेके लिए, रेवाके जलको, सेतु बाँधकर, रोक लिया है ।

‘ किमासाध्यं महौजसां । ’

(बड़े पराक्रमी वीरोंके लिए क्या असाध्य है ?) हाथी जैसे हथनियोंके साथ क्रीडा करता है; वैसे ही सहस्रांशु अपनी एक हजार राणियोंके साथ सुख पूर्वक क्रीडा कर रहा है; और लाखों वीर कवच पहिन, हथियारोंसे सुसज्जित हो, रेवा नदीके दोनों किनारोंपर रक्षाके लिए फिर रहे हैं । अपरिमित पराक्रमी उस राजाका ऐसा अपूर्व और अदृष्टपूर्व तेज है, कि उसको किसी रक्षककी भी आवश्यकता नहीं है । उसके सैनिक तो केवल शोभाके लिए–या कर्मकी साक्षीके लिए–ही हैं । जब वह पराक्रमी राजा जलक्रीडा करते हुए पानी पर जोरसे हाथोंको पछाड़ता

है, उससमय जलदेवता क्षुब्ध हो जाते हैं; और जलजन्तु पलायन कर जाते हैं। हजारों स्त्रियोंके साथ क्रीडा करके उस राजाने अब उस जलको छोड़ दिया है; इसलिए उस जल पूरने पृथ्वी और आकाशको प्लावित करते हुए वेगसे आकर उद्धताके साथ तुम्हारी इस देवपूजाको भी भिगो दिया है; बहा दिया है। वह देखो उस राजाकी स्त्रियोंका निर्माल्य पदार्थ तैर रहा है, वह मेरे कथनको पुष्ट करता है, वह उसके जल-क्रीडाकी निशानी है।"

उसकी ऐसी बातें सुन, रावणके हृदयमें अधिक क्रोधाग्नि भभक उठी; जैसे घृताहुतिसे अग्नि विशेषरूपसे जल उठती है। वह बोला:– "अरे! मरनेके इच्छुक उस राजाने, काजलसे जैसे देवदूष्य वस्त्र दूषित होता है वैसे, अपने अंगसे रेवाके जलको दूषित करके मेरी देवपूजाको भी दूषित कर दिया है। इसलिए हे राक्षस सुभटो! जाओ और मछुवा–मच्छीमार–जैसे मच्छीको पकड़ लाता है, वैसे ही उस वीर, मानी राजाको बाँधकर तत्काल ही मेरेपास ले आओ।

रावणकी आज्ञा सुनते ही राक्षसवीर नदीके किनारे किनारे दौड़ने लगे; वे ऐसे शोभते थे मानो रेवा नदीका उग्र प्रवाह बह रहा है। उनके वहाँ पहुँचनेपर, जैसे नवीन दूसरे हाथियोंके साथ हाथी युद्ध करते हैं, वैसेही सहस्रांशुके सैनिक वीर उन राक्षसवीरोंके साथ युद्ध करने लगे। मेघ जैसे ओलोंसे

अष्टापदको कष्ट पहुँचाता है,वैसेही निशाचर आकाशमें रहकर, विद्याद्वारा उनको मुग्ध कर, कष्ट पहुँचाने लगे। अपने सैनिकोंको पीड़ित होते देख क्रोधके मारे सहस्रांशुके ओष्ठ काँपने लगे। वह हाथके इशारेसे अपनी स्त्रियोंको आश्वासन देता हुआ रेवा नदीसे बाहिर निकला; जैसे कि गंगानदीसे ऐरावत हाथी निकलता है। बाहिर आकर और धनुषकी चाप चढ़ा कर, वह बाण-वर्षा करने लगा। उस महाबाहुकी बाणवर्षासे राक्षस वीर घबराकर तित्तरबित्तर हो गये; जैसे कि जोरकी हवाके चलनेसे रूई उड़ जाती है।

अपने सैनिकोंको परास्त हो, वापिस लौटते देख, रावण क्रोधित हुआ और बाणोंकी वर्षा करता हुआ सहस्रांशुकी ओर चला। दोनों वीर क्रोधपूर्वक, उग्र और स्थिर हो कर नाना भाँतिके शस्त्रोंसे बहुत देरतक युद्ध करते रहे। अन्तमें भुजबलसे, सहस्रांशुको जीतना असंभव समझ, रावणने विद्याद्वारा उसको मोहितकर हाथीकी तरह पकड़ लिया। उस महा वीर्यको जीतनेपर भी, अपने आपको विजेता समझनेपर भी, उसको बाँध लेने पर भी उसकी प्रशंसा करता हुआ, रावण निरभिमानी हो उसको अपनी छावनीमें लाया।

रावण हर्षित होता हुआ सभामें आकर बैठा ही था कि उसी समय "शतबाहु" नामक चारणमुनि आकाशमेंसे उतरकर सभामें आये। मेघके जैसे मयूर—मोर जैसे बादलोंका

स्वागत करता है—वैसे ही रावण तत्काल ही सिंहासनसे उतर, मणिमय पादुकाका परित्यागकर उनका स्वागत करनेको गया और उनको अर्हत प्रभुके गणधर समान समझता हुआ, पाँच अंगोंसे भूमिको स्पर्शकर वह उनके चरणोंमें पड़ा। फिर उसने मुनिको, आसन दे बैठनेके लिए निवेदन किया। मूर्तिमान विश्वासके समान, जगतको आश्वासन देनेमें बन्धुके समान वे मुनि रावणको कल्याण की माताके समान 'धर्मलाभ' रूपी आशिस देकर आसनपर बैठे। रावण भी नमस्कारकर उनके सामने पृथ्वीपर बैठ गया।

पीछे रावणने हाथ जोड़कर मुनिसे आगमनका कारण पूछा। निर्दोष वाणीसे मुनिने कहाः—"मैं माहीष्मतीका शतबाहु नामक राजा था। एकवार, सिंह जैसे आगसे डरता है, वैसे ही मैं भी संसार-वाससे डर गया। इस लिए मैंने, अपने पुत्र सहस्रांशुको राज्य दे, मोक्षमार्गमें जानेके लिए रथके समान, इस चारित्रको ग्रहण कर लिया।" मुनि इतना ही बोले थे कि रावणने सिर झुका कर पूछाः—"क्या यह महाभुज आपका पुत्र है?" मुनिने स्वीकार किया। रावण फिर बोलाः—"मैं दिग्विजयके लिए फिरता हुआ इस रेवा नदीके तटपर आया और यहीं पड़ावकर, विकसित कमलोंसे प्रभुकी पूजाकरनेमें तन्मय हो, एकाग्र चित्तसे ध्यान करने लगा। ऐसेहीमें

आपके पुत्रने अपने शरीरसे दूषित किये हुए जलको छोड़कर मेरी पूजाको भंग कर दिया। इससे मुझको क्रोध आया और मैं उसे पकड़ लाया। परन्तु अब मैं यह मानता हूँ कि उस महात्माने यह कार्य अज्ञानमें किया होगा; क्योंकि आपका पुत्र जान बूझकर कभी भी इस भाँति अर्हतकी आशातना नहीं कर सकता है।"

इतना कह रावण सहस्रांशुको वहाँ लाया। लज्जासे सिर झुकाए हुए उसने मुनि, पिताको प्रणाम किया। रावणने कहाः—"हे सहस्रांशु! आजसे तुम मेरे भाई हो। और ये मुनि जैसे तुम्हारे पिता हैं वैसे ही मेरे भी पिता हैं। अतः तुम जाकर अपने राज्यपर अधिकार चलाओ और दूसरी पृथ्वी भी ग्रहण करो। हम तीन भाई हैं। राज्यलक्ष्मीके अंशको भोगनेवाले आजसे तुम भी हमारे चौथे भाई हुए।"

इतना कह, रावणने सहस्रांशुको छोड़ दिया। उसने कहाः—"मुझे इस राज्यकी और इस शरीरकी अब बिलकुल इच्छा नहीं है। मैं तो पिताने, संसारको नाश करनेवाले जिस व्रतको ग्रहण किया है—जिसका आश्रय लिया है—उसी व्रतको ग्रहण करूँगा—उसीका आश्रय लूँगा। यह साधुओंका मार्ग निर्वाणको देनेवाला है।"

ऐसा कह, अपना पुत्र रावणको सौंप उस चर्म शरीरी* सहस्रांशुने अपने पिताके पाससे दीक्षा ग्रहण कर ली। मित्रताके कारण उसने अपने दीक्षा ग्रहण करनेके समाचार अयोध्याके राजाके पास भी भेजे। अयोध्यापति अनरण्य विचारने लगा—मेरे और मेरे मित्रके आपसमें यह बात हुई थी कि हम दोनों एक ही साथ दीक्षा लेंगे। उसने दीक्षा ली मुझको भी अब वही मार्ग ग्रहण करना चाहिए।" अतः उस दृढ़ निश्चयीने भी अपने पुत्र दशरथको अयोध्याका राजा बना, दीक्षा लेली।

यज्ञोंमें पशु होमनेकी प्रवृत्ति कैसे हुई?

रावण, शतबाहु और सहस्रांशु मुनिको वंदनाकर, सहस्रांशुके पुत्रको माहीष्मतीकी गद्दी पर बिठा; दिग्विजयकी यात्राके लिए आकाश मार्गसे रवाना हुआ। उसी समय लकड़ियोंकी मारसे जर्जरित बना हुआ नारद 'अन्याय! अन्याय!' पुकारता हुआ रावणके पास आया और कहने लगाः—

"हे राजा! राजपुर नगरमें 'मरुत' नामका राजा है। वह दुष्ट ब्राह्मणोंके सहवाससे मिथ्या दृष्टि होकर यज्ञ करता है। उस यज्ञमें होमनेके लिए ब्राह्मणोंने कई पशु बाँधकर मँगवाए हैं। उन निरपराधी पशुओंकी बिलबिलाहट मैंने सुनी। मुझको दया आई। मैं आकाशसे उतर

* उसी भवमें मोक्ष जानेवाला; अंतिम शरीरवाला।

कर मरुत राजाके पास गया और उससे मैंने पूछाः— "तुम यह क्या कर रहे हो?" मरुतने उत्तर दिया,—"ब्राह्मणोंके कथनानुसार यह यज्ञ होता है। अन्तर्वेदीमें देवताओंकी तृप्तिके लिए पशु होमना महा धर्म है; यह स्वर्गका हेतु बताया गया है। इस लिए आज मैं भी इन पशुओंको होमकर यज्ञ पूरा करूँगा।"

मैंने उससे कहा,—"यह शरीर वेदी है, आत्मा यजमान है, तप अग्नि है, ज्ञानव्रत है, कर्मसमिध हैं, क्रोधादि कषायें पशु हैं, सत्य यज्ञस्तंभ है, सर्व प्राणियोंकी रक्षा दक्षिणा है और ज्ञान, दर्शन चारित्र—ये तीन रत्न तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) हैं। यह वेद—कथित यज्ञ, यदि योग विशेषसे किया जाय तो, मुक्तिका साधन होता है। जो लोग राक्षसके समान बन, छाग—बकरा—आदि प्राणियोंको मारकर यज्ञ करते हैं, वे मरनेपर घोर नरकमें जाते हैं; और चिरकालतक दुःख भोगते हैं। हे राजा! तुम उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए हो; बुद्धिमान और समृद्धिवान हो; इस लिए शिकारियोंके करने योग्य इस पापमय कार्यसे मुँह मोड़ो। यदि प्राणियोंके वध ही से स्वर्ग मिलता हो तो थोड़े ही दिनोंमें यह सारा जीव लोक खाली होजाय।"

मेरी बातें सुन, यज्ञकी अग्निके समान, सारे ब्राह्मण क्रोधसे भभक उठे; और हाथमें लकड़ियाँ लेकर मुझको मारने लगे। मैं वहाँसे भागकर, नदीके पूरमें पड़ा हुआ

मनुष्य जैसे द्वीपको पाकर शांत होता है वैसेही, तुम्हारे पास आकर शान्त हुआ हूँ। हे रावण! तुम्हारे पास आनेसे मेरी तो रक्षा हुई, मगर उन नरपशुओंद्वारा यज्ञमें होमे जानेवाले पशुओंकी वहाँ कौन रक्षा करेगा? इसलिए तुम चलकर उन्हें बचाओ।"

नारदके वचन सुन, अपनी आँखोंसे सब बातें देखनेकी इच्छा कर, रावण विमानमेंसे उतरा और यज्ञमंडपमें गया। मरुत राजाने उसकी, पैर धो, सिंहासनपर बिठा, पूजा की।

रावण क्रोध करके बोलाः—"तुम नरकके अभिमुख होकर, ऐसा यज्ञ क्यों करते हो? तीन लोकके हितकर्ता सर्वज्ञ पुरुषोंने अहिंसामें धर्म बताया है; फिर पशु हिंसात्मक यज्ञसे धर्म कैसे हो सकता है? इस यज्ञसे यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। इसलिए यह यज्ञ मत करो। यदि करोगे तो इस लोकमें तुम्हें मेरे राज्यके कारागृह—जेलखाने-में रहना पड़ेगा और परलोकमें नरकवास भोगना पड़ेगा।"

मरुत राजाने यज्ञ करना छोड़ दिया। सारे जगतको भयभीत करनेवाली रावणकी आज्ञाको नहीं माननेका साहस कौन कर सकता था? उसकी आज्ञा अलंघनीय थी।

तत्पश्चात रावणने नारदसे पूछाः—"ऐसे पशुवधात्मक यज्ञ कबसे प्रारंभ हुए हैं?" नारद बोलाः—"चेदीदेशमें

शुक्तिमती नामक एक प्रसिद्ध नगरी है । उसको चहुँओरसे सखिके समान शुक्तिमती नामकी नदीने घेर रक्खा है । उसमें उत्तम आचरणवाले अनेक राजा होगये । बादमें मुनिसुव्रतस्वामीके तीर्थमें अभिचंद्र नामका राजा हुआ । वह सारे गत राजाओंसे श्रेष्ठ राज्यकर्ता हुआ । उसके वसु नामका पुत्र हुआ । वह महान बुद्धिमान और सत्यवक्ता था ।

बचपनमें मैं, वसु और गुरु-पुत्र पर्वत तीनों 'क्षीरकदंब गुरुके पास पढ़ते थे । एक वार रात्रिके समय, अभ्यासके श्रमसे थक कर, हम तीनों छतपर सो रहे थे । उस समय दो चारण मुनि आकाशमार्गसे, बातें करते हुए, जा रहे थे कि–" इन तीनों विद्यार्थियोंमेंसे एक स्वर्गमें जायगा और दो नरकमें जायँगे । " यह बात हमारे गुरुने सुनी । उनको दुःख हुआ । वे सोचने लगे कि, मेरे समान गुरुके होते हुए भी दो शिष्य नरकमें जायँगे ! दैवकी गति विचित्र है । "

गुरुके हृदयमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि, कौन नरकमें जायगा और कौन स्वर्गमें जायगा; इसलिए उन्होंने दूसरे दिन हम तीनोंको बुलाया; एक आटेका मुर्गा बनाकर हमें दिया और कहा,–" जहाँ कोई न देखे वहाँ ले जाकर तुम इसको मार आओ । " हम तीनों वहाँसे चले। वसु और पर्वतने, निर्जन स्थानमें जाकर, अपनी आत्म–घातिके अनुसार आटेके मुर्गोंको मार डाला ।

मैं, नगरके बाहिर एकान्त स्थानमें जाकर, दिशा विदिशाओंको देखता हुआ, सोचने लगा,–गुरुने इस विषयमें आज्ञा दी है कि–जहाँ कोई देखता न हो ऐसी जगहमें लेजाकर मुर्गेको मारना। मगर यहाँ तो मुर्गा स्वयं देखता है, मैं देखता हूँ, खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते हैं और ज्ञानी भी देखते हैं । ऐसी जगह तो कहीं भी नहीं है, जहाँ कोई नहीं देखता हो। इससे गुरुकी आज्ञाका तात्पर्य ऐसा जान पड़ता है कि, मुर्गेको न मारना। हमारे पूज्य गुरु तो दयालु हैं; वे सदा हिंसासे दूर रहनेवाले हैं। उन्होंने हमारी बुद्धिकी परीक्षाके लिए ही ऐसी आज्ञा दी है।" ऐसा सोच, मैं गुरुके पास लौट गया और मुर्गेको नहीं मारनेका हेतु गुरुको सुना दिया। गुरुने सोचा, यही शिष्य स्वर्गमें जायगा। पश्चात गुरुने शाबाशी देकर मेरा गौरव किया और मुझे गलेसे लगाया।

थोड़ी देरके बाद वसु और पर्वत भी आगये। उन्होंने कहा,—"हमने कोई नहीं देखे ऐसी जगहमें लेजाकर मुर्गेको मार डाला है।" गुरुने उनको धिक्कारा और कहाः—"रे पापियो! स्वयं तुम देखते थे; और ऊपर खेचर आदि देखते थे फिर तुमने मुर्गेको कैसे मार डाला ?"

गुरुको उनके कृत्यसे बड़ा ही दुःख हुआ। उन्होंने आगे पढ़ाना बंद कर दिया। उन्होंने सोचा,—"वसु और पर्वतको पढ़ानेमें मैंने जो प्रयास किया वह व्यर्थ

हुआ । स्थान भेदसे जैसे जल मोती भी होता है और लवण भी होता है, वैसे ही गुरुका उपदेश भी पात्रके अनुसार ही परिणमन होता है । पर्वत मेरा प्यारा पुत्र है और वसु मुझे पुत्रसे भी अधिक प्यारा है । ये ही दोनों जब नरकमें जानेवाले हैं, तब फिर घरमें रहनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ?"

ऐसे निर्वेद दशा-वैराग्य–प्राप्त कर गुरुने दीक्षा ले ली । उनका स्थान पर्वतने लिया । वह व्याख्यान करनेमें, पढ़ानेमें बहुत ही निपुण था । गुरुकृपासे शास्त्रोंमें निपुण हो कर, मैं भी अपने स्थानको चला गया । राजाओंमें चंद्रके समान अभिचंद्र राजाने समय आने पर दीक्षा ग्रहण कर ली । लक्ष्मीसे वासुदेवके समान सुशोभित होनेवाला वसु अपने पिताकी गद्दी पर बैठा । वह पृथ्वीमें सत्यवक्ताके नामसे प्रसिद्ध होगया । उस ख्यातिको अक्षुण्ण रखनेके लिए वह हमेशा सत्य ही बोलता था ।

एक वार विंध्यागिरिकी स्थलीमें कोई शिकारी शिकार खेलनेको गया । उसने मृगके ऊपर बाण छोड़ा, मगर वह बीचहीमें रह गया । बाणके, बीचहीमें, स्खलित हो जानेका कारण जाननेको वह वहाँ गया । उसने वहाँ पर आकाशके समान निर्मल एक स्फटिक शिला देखी; शिलासे उसका स्पर्श हुआ । इससे उसने सोचा–चंद्रमाकी छाया जैसे भूमि पर पड़ती है, वैसे ही किसी दूसरे स्थानमें चरते

हुए मृगकी छाया इस शिलामें पड़ी है और उसको देखकर मैंने बाण छोड़ा है। क्यों कि विना स्पर्शके इस शिलाका होना कोई नहीं जान सकता है। ऐसी उत्तम शिला तो वसु राजाके योग्य है।

उसने यह बात जाकर, वसु राजाको, एकान्तमें, कही। वसु राजाने प्रसन्न होकर, वह शिला अपने यहाँ मँगाली और उस शिकारीको बहुतसा धन दिया।

वसु राजाने गुप्त रीतिसे उस शिलाकी एक आसन-वेदी[1] बनवाई फिर उसको सदैव गुप्त रखनेके लिए उसने वेदी बनानेवाले कारीगरोंको मरवा डाला। कारण

'नात्मीयाः कस्यचिन्नृपः।'

(राजा किसीके नहीं होते) बादमें उस वेदी पर चेदी देशके राजाने अपना सिंहासन रक्खा। वेदी किसीको दिखाई नहीं देती थी, इस लिए अबुध–अज्ञान-लोग समझने लगे कि, राजाके सत्यके प्रभावसे, आसन अधर रह रहा है और सत्य बोलनेके प्रभावसे ही संतुष्ट होकर, देवता वसु राजाके पास रहते हैं–उसकी सेवा करते है। इस प्रकारसे चारों तरफ उसकी प्रशंसा होने लगी। इस प्रशंसासे भीत होकर, अनेक राजा उसके वशमें आगये। कारण

'सत्या वा यदि वा मिथ्या प्रसिद्धिर्जयिनी नृणाम्।'

---

१ सिंहासन रखनेकी वेदिका (चबूतरा)

(सच्ची या झूठी, चाहे जैसी ही प्रसिद्धि मनुष्योंको जय दिलाया करती है।) एक वार फिरता हुआ, मैं उस नगरीमें चला गया। वहाँ मैंने पर्वतको, अपने बुद्धिमान शिष्योंको ऋग्वेदका पाठ पढ़ाते हुए, देखा। उसमें 'अजैर्यष्टव्यं' शब्द आया। उसका उसने अर्थ किया—'बकरेसे यज्ञ करना' यह सुनकर मैं उसके पास गया और बोलाः—"भाई! तू भ्रांतिसे ऐसे क्या कह रहा है—भूलसे गलत अर्थ क्यों बता रहा है? गुरुजीने हम लोगोंको 'अज' शब्दका अर्थ बताया है, तीन वर्षका पुराना धान्य—ऐसा धान्य जो बोनेसे नहीं उगे। 'अज' शब्दकी व्युत्पत्ति भी इसी तरहसे है—'न जायंते इति अजाः' जो उत्पन्न नहीं होते वे अज कहलाते हैं। इस प्रकारसे अपने गुरुने जो व्याख्या बताई थी उसको तू किस हेतुसे भूल गया है?"

पर्वतने उत्तर दियाः—"मेरे पिताने 'अज' शब्दका अर्थ कभी ऐसा नहीं बताया था। उन्होंने तो 'अज' शब्दका अर्थ बकरा ही बताया था। और निघंटु कोषमें भी 'अज' शब्दका अर्थ ऐसा ही है।"

मैंने कहाः—"शब्दोंके अर्थोंकी कल्पना मुख्य और गौण ऐसे दो प्रकारसे होती है। गुरुने यहाँ गौण अर्थ बताया था। गुरु सदैव धर्मका ही उपदेश करनेवाले होते हैं; और जो वचन धर्मात्मक होते हैं, वे ही वेद कहलाते

हैं। इस लिए हे मित्र! इन दोनों बातोंको अन्यथा कर, तू क्यों वृथा पाप उपार्जन करता है?"

पर्वत आक्षेप करता हुआ बोलाः–"अरे नारद! गुरुने 'अज' शब्दका अर्थ बकरा ही बताया था; तो भी तू गुरुके उपदेशका और शब्दके अर्थका उल्लंघन कर, धर्म उपार्जन करनेकी इच्छा करता है? लोग दंडके भयसे मिथ्याभिमानवाली वाणी नहीं बोलते हैं, मगर तू बोल रहा है। इस लिए हमको ऐसी शर्त करना चाहिए कि, अपना पक्ष समर्थन करनेमें जो मिथ्या ठहरे उसकी जीभ काट दी जाय। इसका फैसला देनेके लिए हमें अपने सहाध्यायी वसु राजाको नियत करना चाहिए।" मैंने उसकी बात स्वीकार कर ली। क्यों कि—

'न क्षोभः सत्यभाषिणाम्।'

(सत्यवादियोंके हृदयोंमें कभी क्षोभ नहीं होता है।) पर्वतकी माताको इस प्रतिज्ञाकी खबर हुई। उसने अपने पुत्रको एकान्तमें बुलाकर कहाः—"हे पुत्र! मैं झाडू दे रही थी। तेरे पिता तुमको पढ़ा रहे थे। उस समय मैंने सुना था। उन्होंने 'अज' शब्दका अर्थ तीन वर्षका पुराना धान्य ही बताया था। इस लिए गर्व करके तूने जिव्हा छेदनेकी जो शर्त की है वह अच्छी नहीं है। कारण

'अविमृष्य विधातारो, भवन्ति विपदां पदम्।'

(विना विचारे जो कार्य करते हैं वे विपत्तिमें फँसते हैं।)

पर्वतने उत्तर दियाः—" हे माता ! अब तो मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ । वह अन्यथा नहीं हो सकती । "

पुत्रकी भावी विपत्तिका विचारकर, पर्वतकी माता व्याकुल हो, वसु राजाके पास गई । कारण—

' पुत्रार्थे क्रियते न किम् । '

(पुत्रके लिए प्राणी क्या नहीं कर सकता है ।)

पर्वतकी माताको देखकर, वसुराजाने कहाः—" आज तुम्हारे दर्शन होनेसे, मैं समझता हूँ कि मुझे साक्षात क्षीर कदंबगुरुके ही दर्शन हुए हैं । कहो, मैं तुम्हारा क्या कार्य कर दूँ ? आपके क्या भेट करूँ ? "

वह बोलीः—" हे राजा ! मुझे पुत्रकी भिक्षा दो । पुत्र विना धनधान्य मेरे किस कामके हैं ? "

वसुने कहाः—" माता ! तुम्हारा पुत्र पर्वत मेरे लिए पालनीय है; पूजनीय है । वेद कहते हैं कि—गुरुके समान ही गुरु—पुत्रके साथ भी वर्ताव करना चाहिए । हे माता ! असमयमें रोष धारण करनेवाले कालने आज किसका खाता निकाला है ? मेरे भाई पर्वतको कौन मारना चाहता है ? कहो तुम आतुर कैसे हो रही हो ? "

पर्वतकी माताने, नारद और पर्वतके बीचमें जो वार्तालाप हुआ; पर्वतने जो प्रतिज्ञा की वह; सब कुछ कह सुनाया और कहाः—हे वत्स ! अपने भाई पर्वतकी रक्षाके लिए

' अज ' शब्दका अर्थ तू बकरा करना। क्योंकि बड़े पुरुष जब अपने प्राण अर्पण करके भी, दूसरेका उपकार करते हैं; फिर वे वचनसे तो क्यों न करेंगे ? "

वसु राजाने कहाः—" माता ! मैं झूठ क्यों बोलूँ ?

' प्राणात्ययेऽपि शंसंति, नासत्यं सत्यभाषिणः । '

(सत्यवादी पुरुष प्राणोंका नाश होनेपर भी मिथ्या भाषण नहीं करते हैं।) पापसे डरने वाले पुरुषके लिए जब किसी तरहका भी झूठ बोलना अनुचित है; तो फिर गुरुके वचनको अन्यथा करनेवाली मिथ्या साक्षी मैं कैसे दूँ ? "

माताने कहाः—" या तो तू गुरु पुत्रके प्राण रख, या सत्यका आग्रह रख। दोनों नहीं रक्खे जा सकेंगे। "

वसुने गुरुके पुत्रका प्राण बचाना स्वीकार कर लिया। पर्वतकी माता प्रसन्न होती हुई अपने घर चली गई। फिर मैं और पर्वत दोनों वसु राजाकी सभामें गये।

सभामें, मध्यस्थ गुणोंसे सुशोभित और सत् व असत् वाद रूपी क्षीर और जलका भेद करनेमें हंस समान, विज्ञ पुरुष एकत्रित हो रहे थे। आकाशके समान निर्मल स्फटिक शिलाकी वेदीपर रक्खे हुए सिंहासनपर, वसु सभापति बनकर बैठा था। वह ऐसा शोभित होरहा था, जैसे आकाशमें चंद्रमा शोभता है।

मैंने और पर्वतने ' अज ' शब्दका, अपने अपने पक्षके

अनुसार अर्थ करके बताया और कहाः—" हे सत्यवादी! इनमेंसे सत्य अर्थ कौनसा है सो बताओ।"

उस समय अन्यान्य वृद्ध विप्रोंने राजासे कहाः-"हे राजा! यह विवाद तो तुम्हारे ही ऊपर है। पृथ्वी और आकाशके बीचमें जैसे सूर्य साक्षी है; वैसे ही इन दोनोंके बीचमें तुम साक्षी हो। घट आदि[1] जो दश दिव्य हैं, वे सत्यके आधार रहे हुए हैं। सत्यसे मेघ बरसता है और सत्यतासे ही देवता सिद्ध होते हैं। हे राजा! तुम्हींसे यह सारा लोक सत्यमें रहा हुआ है; इस लिए इस विषयमें तुमसे हम विशेष क्या कहें? अतः जो बात तुम्हारे सत्यव्रतके योग्य हो वही कहो।"

ऐसी बातें सुननेपर भी अपनी सत्य-वक्तापनकी प्रसिद्धिकी कुछ परवाह न कर, वसुराजाने कहाः—" गुरुने 'अज' शब्दका अर्थ बकरा बताया था।"

वसु राजाके ऐसे असत्य वचन सुनकर, वहाँ रहे हुए देवता बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने कुपित होकर वसुकी, स्फटिकशिलाकी बनी हुई आसन वेदीको तोड़ डाला। तत्काल ही वसुराजा, नरकमें जानेको प्रस्थान करता हो ऐसे, भूमि पर जा गिरा। देवता विताडित वसुराजा मरकर घोर नरकमें गया।

१—जल, अग्नि, घड़ा, कोष, विष, माया, चावल, फल, धर्म और पुत्रको स्पर्श करना। ये दस दिव्य कहलाते हैं।

वसुके आठ पुत्र 'पृथुवसु, चित्रवसु, वासव, शक्र, विभावसु, विश्वावसु, सुर और महासुर' क्रमशः राज्य-सिंहासनपर बैठे। मगर देवताओंने उन सबको कुपित होकर मार डाला। इसलिए वसुका नवमा लड़का 'सुवसु' वहाँसे भागकर नागपुर गया, और दसवाँ 'बृहद्ध्वज' मथुराको चला गया। नगरवासियोंने पर्वतको, दिल्लगी उड़ाकर, तिरस्कारकर, नगर बाहिर निकाल दिया। उसको वनमें 'महाकाल नामक राक्षसने आश्रय दिया।

महाकाल असुरकी उत्पत्ति।

रावणने पूछाः—" महाकाल असुर कौन था ?" नारदने इस तरहसे उसकी कथा कहना प्रारंभ किया:—

"चारण युगल नामका एक नगर है। वहाँ 'अयोधन' नामका एक राजा हो गया है। उसके 'दिति' नामकी स्त्री थी। इसकी कूखसे 'सुलसा' नामक एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई थी। अयोधन राजाने उसका स्वयंवर रच, सब राजाओंको आमंत्रण दिया। राजा आये। उनमें 'सगर' नामक राजा सबसे विशेष पराक्रमी था। उसकी आज्ञासे मंदोदरी नामकी एक प्रतिहारी-छलिया-स्त्री बार-बार अयोधन राजाके आवासमें-महलोंमें-जाया करती थी।"

एकवार दितिराणी कुमारी सुलसाके साथ अपने अन्तःपुरके बागीचेमें बैठी हुई थी। मंदोदरी भी उस समय वहाँ जा पहुँची। मगर माता पुत्रीकी बातें सुननेके लिए वह वृक्ष,लताओंकी आड़में छिपगई।

दितिने सुलसासे कहाः—" वत्से ! तेरा स्वयंवर है। मगर मेरे हृदयमें एक बातका शल्य है । उस शल्यका निवारण करना तेरे ही हाथमें है । अतः प्रारंभसे वह बात कहती हूँ । तू ध्यान लगाकर सुन । "

" श्री ऋषभदेव स्वामीके भरत और बाहुबलि दो पुत्र हुए । दोनोंके 'सूर्य' और 'सोम' क्रमशः दो पुत्र हुए । येही दोनों मुख्य वंशधर हैं-इन्हीं दोनोंके नामसे वंश चलते हैं । सोमके वंशमें मेरा भाई 'तृणबिन्दु' हुआ है और तेरे पिता अयोधनने सूर्यवंशमें जन्म लिया है । अयोधन राजाकी बहिन सत्ययशाके लग्न तृणबिंदुके साथ हुए हैं । उसकी कूखसे 'मधुपिंग' नामका एक पुत्र जन्मा है । हे सुन्दरी ! उसी मधुपिंगको मैं तुझे देना चाहती हूँ; और तेरे पिता तुझे, स्वयंवरमें आये हुए किसी भी राजाको-जिसको तू पसंद करेगी-देना चाहते हैं । स्वयंवरमें तू किसको वरेगी सो मैं नहीं जान सकती । इसी लिए मेरे हृदयमें भारी दुःख पैदा हो रहा है । इस दुःखको मिटानेके लिए तू मेरे सामने कबूल कर कि, तू स्वयंवर मंडपमें मेरे भ्रातृज (भतीजे) मधुपिंगको ही वरेगी । "

सुलसाने अपनी माताका कथन स्वीकार किया । मंदोदरीने सारी बातें जाकर सगर राजाको कहीं ।

सगर राजाने अपने पुरोहित विश्वभूतिको आज्ञा दी । तत्काल ही उस शीघ्र कविने 'राजलक्षणसंहिता'

नामका ग्रंथ रचा । उसमें उसने इस ढंगकी बातें लिखीं कि जिससे सगर राजा सारे राजलक्षणों युक्त ठहरे और मधुपिंग सारे राजलक्षणोंसे हीन समझा जाय । उस ग्रंथको उसने, प्राचीन ग्रंथ-पुराण-की भाँति प्रतिष्ठित समझानेके हेतुसे, एक संदूकमें बंद करवा दिया ।

अवसर पाकर पुरोहितने राजसभामें उस ग्रंथकी चरचा की । राजाकी आज्ञा पाकर, उसने राजसभामें उस ग्रंथको पढ़ना प्रारंभ किया ।

सगर राजाने कहाः—" इस ग्रंथके अनुसार जिसमें राजलक्षण न हों वह सभासे बाहिर निकाल देने योग्य है; या मार देने योग्य है । "

पुरोहित जैसे जैसे पुस्तक पढ़ता जाता था, वैसे ही वैसे, उसमें वर्णित गुण-लक्षण-अपने अंदर न होनेसे, मधुपिंग लज्जित होता जाता था । अन्तमें मधुपिंग वहाँसे उठकर चला गया । सुलसाने सगर राजाके साथ ब्याह किया । सब अपने अपने घर चले गये ।

मधुपिंग अपमानसे लज्जित हो, बाल तप कर मर गया; और साठ हजार असुरोंका स्वामी ' महाकाल ' नामका असुर हुआ । उसने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व भव-की बात जानी । उसने जाना—सुलसाके स्वयंवरमें मेरे अपमानित होनेका कारण सगर राजा है; उसने कृत्रिम

ग्रंथ तैयार कराया था, इसी लिए मैं सब गुणों विहीन ठहरा था ।

तत्पश्चात उसने सोचा-मुझे चाहिए कि मैं सगर राजाको और अन्य सब राजाओंको प्राण दंड दूँ । फिर वह असुर उनके छिद्र देखते हुए फिरने लगा ।

पर्वतका हिंसात्मक यज्ञकी प्रवृत्ति करना।

महाकालने फिरते हुए एकवार शुक्तिमती नदीमें पर्वतको देखा । वह ब्राह्मणका रूप बनाकर पर्वतके पास गया और कहने लगाः—" हे महामति ! मेरा नाम 'शांडिल्य' है । तेरा पिता क्षीरकदंब मेरा मित्र था । पहिले मैं और तेरा पिता दोनो गौतम नामक एक उपाध्यायके पास पढ़ते थे । मैंने सुना है कि, नारदने और कुछ लोगोंने तेरा अपमान किया है । तेरे अपमानका प्रतिकार करनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ । मैं, विश्वको मुग्ध करके, तेरे पक्षकी पूर्ति किया करूँगा । "

पर्वत और महाकाल दोनों एक साथ रहने लगे । असुरने दुर्गतिमें डालनेके लिए बहुतसे लोगोंको कुधर्ममें मुग्धकर दिया । उसने लोगोंमें, सर्वत्र व्याधि और भूत आदिके दोष उत्पन्न करके, पर्वतके मतको निर्दोष प्रमाणित करनेका प्रयत्न प्रारंभ किया ।

शांडिल्यकी आज्ञासे पर्वत रोगोंकी शान्ति करने लगा; और लोगोंको, उपकृत करके अपने मतमें मिलाने लगा ।

सगर राजाके नगरमें, अन्तःपुरमें और परिवारमें भी उस राक्षसने अत्यंत भयंकर रोग फैलाये। सगर राजा भी लोगोंकी प्रतीतिके अनुसार पर्वतसे रोग शान्ति करवाने लगा। पर्वतने शांडिल्यकी सहायतासे सब जगह शान्ति स्थापन की।

तत्पश्चात् शांडिल्यके कथनानुसार पर्वत उपदेश देने लगा कि–" सौत्रामिणी यज्ञमें, मदिरा–शराब पीना चाहिए, क्यों कि विधिवत सुरापानमें कोई दोष नहीं है। 'गोसव' यज्ञमें गमन न करने योग्य–माताबहिन आदिके साथ भोग करना चाहिए; वेदी पर 'मातृमेध' यज्ञमें माताका, और 'पितृमेध' यज्ञमें पिताका, वध करना चाहिए; इसमें कोई दोष नहीं है। कछुवेकी पीठपर अग्नि रखकर, 'जुह्वकाख्याय स्वाहा' कहकर सावधानीके साथ हवनीय द्रव्यसे होम करना चाहिए। और यदि कछवा न मिले तो गंजे सिरवाले, पीले वर्णके, आलसी और गलेपर्यन्त निर्मल जलमें उतरे हुए शुद्ध ब्राह्मणके कछुवेके समान मस्तक पर आग जलाकर, आहुति देनी चाहिए। जो हो गये और जो होनेवाले हैं; जो मोक्षके ईश्वर हैं और जो अन्नसे निर्वाह करते हैं वे सब पुरुष ईश्वर–मय हैं; अतएव कौन किसका वध करता है? इस कारण यज्ञमें अपनी इच्छाके अनुसार जीव वध करना चाहिए। यज्ञमें मांस भक्षण करना कर्त्तव्य है। यज्ञके द्वारा जो मांस पवित्र

हुआ है, वह देवताके उद्देश्यसे हुआ है।" इस प्रकार उपदेशसे जब सगरने उसका मत स्वीकार कर लिया, तब उसने कुरुक्षेत्र आदिमें बहुतसे यज्ञ करवाये। इस प्रकार अपने मतके फैल जाने पर उसने राजसूय आदि यज्ञ भी करवाये और यज्ञमें मारे जानेवाले पशुओंको उस असुरने विमानोंमें बैठे हुए बतलाये। इस प्रकार पर्वतके मतकी सत्यता पर विश्वास करके, लोग फिर निःशंक होकर यज्ञमें जीव वध करने लगे।

यह देखकर, मैंने दिवाकर नामके एक विद्याधरसे कहा कि—"तुझ यज्ञमेंसे सारे पशुओंका हरण कर लेना चाहिए।" मेरा वचन मानकर वह यज्ञोंमेंसे पशुओंका हरण करने लगा। यह बात उस परमाधामी असुरको मालूम हुई। विद्याधरकी विद्याहरनेके लिए, महाकालने यज्ञोंमें ऋषम देव भगवाकी प्रतिमा स्थापित करना प्रारंभ किया। यह देखकर दिवाकरने पशुओंका हरना छोड़ दिया। मैं भी निरुपाय होकर वहाँसे अन्यत्र चलागया।

तत्पश्चात् उस असुरने मायाद्वारा यज्ञवेदीमेंसे शब्द करवाये कि सगर राजाका बलि दो। तत्काल ही सगर राजा, सुलसासहित, यज्ञकी आगमें डाला गया। उसकी जलकर, राख हो गई। महाकाल असुर अपनेको कृतार्थ समझ निज स्थानको चला गया।

इस भाँति पापके पर्वत रूप पर्वतने हिंसात्मक यज्ञोंकी प्रवृत्ति चलाई है। वह अब तुम्हारे बंद करने योग्य है।"

रावणने नारदकी बात स्वीकार कर, सत्कार पूर्वक उसको रवाना कर दिया। मरुत राजाको भी उसने क्षमा कर दिया।

नारदका वृत्तान्त।

मरुत रावणको नमस्कार करके बोलाः—" हे स्वामी, कृपाका सागर यह कौन पुरुष था कि, जिसने आकर, आपके द्वारा, हमको पाप करनेसे बचाया?" मरुतके वचन सुनकर, रावणने इस प्रकारसे नारदकी उत्पत्ति कहना प्रारंभ किया।

" ब्रह्मरुचि नामका एक ब्राम्हण था। वह तापस हो गया। तापस अवस्थामें भी उसकी स्त्रीके गर्भ रह गया। एकवार कुछ साधु उसके घर गये। उनमेंसे एक साधुने कहाः—" संसारके भयसे तुमने घर छोड़ा यह तो बहुत अच्छा कार्य किया; परन्तु जब वनवासमें भी स्त्रीको साथमें रखते हो और विषयमें लीन रहते हो; तब फिर गृहवाससे यह वनवास कैसे अच्छा हो सकता है?"

उपदेश लग गया। ब्रह्मरुचिने जिन धर्म स्वीकार किया; वह जिन धर्मका साधु बना। कूर्मि-ब्रह्मरुचिकी स्त्री–भी परम श्राविका बन गई और मिथ्यात्वका परित्याग कर वहीं रहने लगी।

समयपर उसने एक पुत्रको जन्म दिया। उत्पन्न होते समय वह नहीं रोया, इस लिए उसका नाम 'नारद'

रक्खा गया। एक बार कूर्मि जब कहीं गई हुई थी, तब पीछेसे जृंभक देवता उसको, हरण कर ले गये। कूर्मिने पुत्र-शोकसे व्याकुल होकर 'इंदुमाला' नामकी आर्जिकाके पाससे दीक्षा लेली।

जृंभक देवताओंने उस लड़केका पालन पोषण किया; उसको पढ़ाया लिखाया; शास्त्रोंमें प्रवीण बनाया; और अन्तमें उसको आकाशगामिनी विद्या सिखाई।

श्रावकके व्रतपालता हुआ, वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। मस्तकपर शिखा–जटा–रखानेसे न तो वह यति ही समझा जाता है और न श्रावक ही। कलह–झगड़ा–देखनेका उसको बड़ा चाव है; गीत और नृत्यका वह बहुत शौकीन है। वह कामदेवकी चेष्टासे सदा दूर रहता है। वह अति वाचाल और अति वत्सल है। वीर और कामुक पुरुषोंके बीचमें वह संधि और विग्रह कराता है। हाथमें छत्री–वृषि–कमंडल और अक्षमाला रखता है। पैरोंमें खड़ाऊ पहिनता है। देवताओंने उसको पाल पोसकर बड़ा किया इस लिए, वह पृथ्वीमें देवर्षिके नामसे प्रख्यात है। वह ब्रह्मचारी है और प्रायः स्वेच्छा विहारी है।" नारदका वृत्तांत सुनकर मरुत राजाने अज्ञानतासे, यज्ञ करानेका जो अपराध किया था, उसकी क्षमा माँगी। फिर उसने अपनी कन्या 'कनकप्रभा' रावणके भेट की। रावणने उस कन्याका पाणिग्रहण किया।

१ एक प्रकारका दर्भासन।

सुमित्र और प्रभवका वृत्तान्त ।

पवनके समान बलवान और पराक्रमी रावण, मरुत राजाके यज्ञका भंग करके वहाँसे मथुरा नगरीमें गया।

मथुराका राजा 'हरिवाहन,' अपने त्रिशूलधारी पुत्र 'मधुको' साथ लेकर रावणके सामने आया। भक्ति पूर्वक सामने आये हुए हरिवाहनके साथ, कुछ देरतक रावण बातें करता रहा। फिर उसने पूछाः—"तुम्हारे पुत्रको यह त्रिशूलका आयुध कैसे मिला ?"

हरिवाहनने भ्रकुटिद्वारा मधुको आज्ञा दी। मधुने मधुरतासे इस तरह कहना प्रारंभ कियाः—"यह त्रिशूल मुझको मेरे पूर्वजन्मके मित्र चमरेंद्रने दिया है। त्रिशूल देते वक्त उसने कहा था कि—" धातकीखंड द्वीपके क्षेत्रमें 'शतद्वार' नामक नगर है। उसमें 'सुमित्र' नामका राजपुत्र और 'प्रभव' नामक कुलपुत्र थे। ये दोनों वसंत और मदनकी तरह मित्र थे। दोनों, बाल्यावस्थामें एक ही गुरुके पास, कलाओंका अभ्यास करते थे और अश्विनी कुमारकी भाँति अवियुक्ततासे—एकही साथ रहकरके—क्रीडा करते थे।

जब सुमित्र जवान होकर अपनी राज—गद्दीपर बैठा, तब उसने प्रभवको भी अपने ही समान समृद्धिशाली बना दिया।

---

१ अश्विनी नामकी सूर्यकी स्त्रीसे दो जुड़े हुए पुत्र उत्पन्न हुए थे; वे भिन्न नहीं हो सकते थे।

एक वार सुमित्र राजाको लेकर, घोड़ा किसी जंगलमें चला गया । वहाँ सुमित्रने एक पल्लीपतिकी कन्या 'नवमालाके' साथ लग्न किये । उसको लेकर राजा अपने नगरमें आया ।

एक दिन उस अद्वितीय रूप यौवन सम्पन्ना वनलीलाको प्रभवने देखा । उसके दर्शनने प्रभवके हृदयमें काम-ज्वाल सुलगा दी । वह रात दिन जलने लगा; कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भाँति रात दिन क्षीण होने लगा । उसका वह काम-रोग इतना असाध्य हो गया कि, किसी भी प्रकारका औषधोपचार, या मंत्र, तंत्र उसको अच्छा न कर सका ।

यह देख कर राजा सुमित्रने उसको पूछाः—"हे बन्धु! तुझे जो चिन्ता या दुःख हो वह स्पष्टतया बता दे ।"

प्रभवने उत्तर दियाः—"हे विभो! वह ऐसी चिंता नहीं है कि, जिसको मैं प्रकट कर सकूँ । यद्यपि वह मेरे दिलमें है, तथापि वह महा खराब है-कुलको कलंकित करनेवाली है ।" राजाने सही बात वतानेका बहुत आग्रह किया तब उसने कहाः—"आपकी रानी वनमालापर मैं मुग्ध हो गया हूँ । यही मेरी दुर्बलताका कारण है ।"

राजाने कहाः—"तेरे लिए, आवश्यकता पड़े तो, सारा राज्य ही छोड़ दूँ फिर यह रानी तो कौन चीज है? तू आज ही उक्ष स्त्रीको पावेगा ।"

प्रभव अपने घर चला गया। राजाने रानी वनमालाको, उसी दिन संध्याके समय प्रभवके घर भेज दिया। स्वयं दूतीकी भाँति वह प्रभवके घर गई। और उससे कहने लगी:-"तुमको दुःखी देखकर, राजाने मुझे तुम्हारी सेवा के लिए भेजा है। पतिकी आज्ञा मानना मेरा सबसे प्रथम कर्तव्य है। अतः आजसे तुम मेरे जीवन हो। जो कुछ आज्ञा हो, मुझे दो। मैं उसको पालनेके लिए तैयार हूँ। इच्छा करो तो मेरे पति तुमको अपना राज्य भी दे सकते हैं; फिर मैं तो कौन चीज हूँ। प्रसन्न होओ। अब भी उदास होकर मेरे मुँहकी ओर क्या देख रहे हो ?

प्रभव पश्चात्ताप करता हुआ बोलाः—" अरे ! मुझ क्षुद्र विचारीको धिक्कार है ! सुमित्र महान सत्यवान पुरुष है कि, जिसका हृदय ऐसा महान है। जो मुझ पर इतना स्नेह रखता है। दूसरोंके लिए अपने प्राण दिये जाते हैं; परन्तु अपनी प्रिया नहीं दी जाती; क्यों कि प्रियाका देना अत्यंत दुष्कर कार्य है। मगर मेरे मित्रने तो मेरे लिए वह भी किया। मैं पिशुन-दुर्जन-चुगलखोर तुल्य हूँ। जिससे मैं न कहने योग्य भी कहता हूँ और न माँगने योग्य भी माँग लेता हूँ। मगर मेरा मित्र कल्पवृक्षके समान है। उसके पास सब कुछ है; सब कुछ देनेके योग्य है; और वह देता है। वनमाला ! आप मेरी माताके समान हैं। अतः आप अब यहाँसे चली जायँ। और आजके बाद यदि पतिकी

आज्ञा हो, तो भी न इस पापराशी पुरुषकी ओर देखें और न इसे बोलावें । ”

राजा सुमित्र गुप्त रीतिसे वनमालाके पीछे आया था । उसने छिपकर सब बातें सुनीं । अपने मित्रका ऐसा सत्व देखकर उसको अत्यंत हर्ष हुआ ।

प्रभवने वनमालाको, नमस्कार करके खाना कर दिया । फिर वह खड्ग उठाकर अपना शिरच्छेद करनेको तैयार हुआ । उस समय सुमित्रने झटसे आकर उसके हाथमेंसे खड्ग छीन लिया और कहाः—“ क्या कोई ऐसा भी दुस्साहस करता है ? ”

प्रभवका, मारे लज्जाके सिर झुक गया । ऐसा जान पड़ता था मानो वह पृथ्वीमें धँस जानेकी तैयार कर रहा है । सुमित्रने बड़ी कठिनतासे उसके हृदयको स्वस्थ किया । फिर दोनों मित्र पहिलेके समान ही मित्रता रख कर वापिस राजकाज करने लगे ।

कुछ काल बाद सुमित्र दीक्षा ले, तपकर मरा और ईशान देवलोकमें जाकर देवता हुआ । वहाँसे चव कर—आकर—हरिवाहनकी माधवी नामा स्त्रीसे तू मधु नामक पराक्रमी पुत्र हुआ है ।

प्रभव चिरकालतक संसारमें भ्रमण कर “ विश्वावसुकी ज्योतिर्मती नामा स्त्रीसे श्रीकुमारनामा पुत्र हुआ । और वह नियाणापूर्वक तप करनेसे मरकर चमरेंद्र हुआ ।

वही चमरेंद्र मैं हूँ । तेरा पूर्व भवका मित्र हूँ।" इतना वृत्तान्त सुनाकर मुझे उसने यह त्रिशूल दिया था। यह त्रिशूल दो हजार योजनतक जाकर, अपना कार्य करके, वापिस लौट आता है।

उसका उक्त प्रकारका वृत्तान्त सुन; रावणने, भक्ति और शक्ति दोनोंके धारक मधुको अपनी कन्या मनोरमा ब्याह दी।

नलकूबरका पकड़ा जाना।

लंकासे रवाना हुएको जब अठारह बरस बीत गये, तब रावण मेरु पर्वतके ऊपर वाले पांडुक वनमें जो चैत्य हैं उनकी पूजा करनेके लिए गया। वहाँ बड़ी धूम धामके साथ रावणने उत्सव किया; पूजा की; सब चैत्योंकी वंदना की।

दुर्लंघपुरमें इन्द्रराजाके पूर्व दिग्पाल 'नल कूबर' रहते थे। उसी समयमें कुंभकर्णादि रावणकी आज्ञासे उनको पकड़नेके लिए गये।

नलकूबरने 'आशाली' विद्याके द्वारा अपने नगरके चारों तरफ सौ योजनका अग्निमय कोट बना रक्खा था और उसपर ऐसे अग्निमय यंत्र लगा रक्खे थे, कि जिनमेंसे निकलते हुए स्फुलिंग; आकाशमेंसे आग बरसती हो, ऐसे मालूम होते थे। इस प्रकारके सुदृढ़ कोटका अवष्टंभ

लेकर, सुभटोंसे घिरा हुआ, कोपसे प्रज्वलित अग्निकुमारके समान बना हुआ, नलकूबर वहाँ रहता था।

सोकर उठे हुए मनुष्य, जैसे ग्रीष्म ऋतुके--गरमीकी मोसिमके--मध्यान्हकालीन-दुपहरके-सूरजको नहीं देख सकते हैं, वैसे ही कुंभकरणादि भी वहाँ जाकर उस नगरको न देख सके। उनकी आँखें चुँधिया गई। उनका उत्साह भंग हो गया और वे यह सोचकर वापिस रावणके पास लौट गये कि यह--"दुर्लंघ्यपुर वास्तवमें ही दुर्लंघ्य ही है।"

रावण ये समाचार पाकर स्वयं दुर्लंघ्यपुरको गया। उस तरहके कोटसे घिरा हुआ किला देख, रावण विचारमें पड़ा। वह बहुत देरतक उस नगरको लेनेकी तरकीबें सोचता रहा; अपने बंधुके साथ नगर कैसे लिया जाय इस बातकी सलाह करता रहा।

नलकूबरकी स्त्री 'उपरंभा' रावण पर आसक्त हो गई। उसने अपनी एक दासीको भेजा। रावण सलाह कर रहा था, उस समय दासीने जाकर कहाः--"मूर्तिमती जय लक्ष्मीके समान उपरंभा तुम्हारे साथ क्रीडा करनेकी इच्छा रखती है। तुम्हारे गुणोंसे मुग्ध होकर, उसका मन तो तुम्हारे पास आगया है। मात्र शरीर वहाँ रहा है। हे मानद! इस नगरकी रक्षिका आशाली नामकी विद्याको भी वह अपने शरीरके समान ही तुम्हारे आधीन कर

देगी। जिससे तुम नगर सहित नल कूबरको अपने आधीन कर सकोगे। हे देव! 'सुदर्शन' नामक एक चक्रको भी आप यहाँ साधन कर सकोगे-प्राप्त कर सकोगे।"

रावणने मुस्कराते हुए विभीषणकी ओर देखा। विभीषणने दासीसे कहाः—"ऐसा ही होगा।" यह सुनकर दूती चली गई।

तत्पश्चात क्रुद्ध होकर रावणने विभीषणसे कहाः—"अरे! यह कुल विरुद्ध कार्य तूने कैसे स्वीकार कर लिया? रे मूढ! अपने कुलमें आज तक किसी पुरुषने, रण भूमिमें आकर, शत्रुको पीठ और परस्त्रीको हृदय नहीं दिये। हे विभीषण! उस बातका करना तो दूरकी बात है; परन्तु वैसे वचन बोलकर भी तूने अपने कुलको कलंकित किया है। तेरी मति आज कैसे बिगड़ गई? जिससे तूने वैसी बात कह डाली।"

विभीषणने नम्रता पूर्वक उत्तर दियाः—"हे आर्य! हे महाभुज! प्रसन्न होओ; इतना कोप न करो। शुद्ध हृदयवाले पुरुषोंको केवल वचन मात्रसे ही दोष नहीं लग जाता है; कलंक नहीं लग जाता है। वह उपरंभा आवे; आपको विद्या दे; आप नल कूबरको वशमें करलो, फिर आप उसको अंगीकार न करना; उसकी पापलालसा पूरी न करना। युक्तिसे उसको समझाकर वापिस रवाना कर देना।"

विभीषणके वचन सुनकर रावणको संतोष हुआ। थोड़ी देरमें रावणसे आलिंगन करनेकी उत्सुक लंपट उपरंभा वहाँ आपहुँची। उसके पतिने आशाली नामकी विद्याको नगर रक्षिका बना रक्खी थी। वह विद्या उसने रावणको देदी। उसके अतिरिक्त व्यंतर रक्षित कई दूसरे मंत्र भी उसने रावणको दिये।

रावणने उस विद्यासे नगरके अग्निमय कोटका संहार कर, अपनी सेना सहित दुर्लंध्य पुरमें प्रवेश किया। नलकूबर युद्ध करनेको आया; मगर विभीषणने तत्काल ही उसको पकड़ लिया; जैसे की हाथी चमड़ेकी धमणको पकड़ लेता है।

सुर और असुर दोनोंसे अजेय ऐसा, इन्द्र संबंधी, महा दुर्द्धर सुदर्शन चक्र भी वहींसे रावणको प्राप्त हुआ।

पश्चात नल कूबरने नम्रता धारण करली इस लिए रावणने उसको उसका नगर वापिस लौटा दिया। कारण-

'अर्थिनोऽर्थेषु न तथा, दोषांतो विजये यथा।'

(पराक्रमी पुरुष जैसे विजयकी इच्छा रखते हैं, वैसे धनकी इच्छा नहीं रखते हैं।)

रावणने उपरंभासे कहाः—"हे भद्रे! मेरेसाथ विनयका वर्ताव करनेवाले, तेरे कुलके योग्य, तू अपने पतिको ही स्वीकार कर; उसीमें रममाण हो। तू मेरे योग्य नहीं है। एक तो तूने मुझे विद्या दी है, इस लिए तू मेरे गुरुतुल्य

है। दूसरे मैं परस्त्रीको अपनी माँ बहिनके समान समझता हूँ। तू कासध्वजकी पुत्री है; सुंदरीके गर्भसे तेरा जन्म हुआ है; इस लिए तू वही कार्य कर जिससे दोनों शुद्ध कुलोंमें किसी प्रकारका कलंक न लगे।" इतना कहकर रावणने उपरंभाको नलकूबरके आधीनकर दिया। रूस कर पिताके घर गई हुई स्त्री जैसे निर्दोष वापिस सुसरालमें आती है, वैसे ही उपरंभा वापिस आई। राजा नलकूबरने रावणका बहुत बड़ा सत्कार किया।

रावण और इन्द्रका युद्ध।

रावण अपनी सेना सहित रथनुपुर नगर गया। रावणको आया सुन, महा बुद्धिमान सहस्रार राजाने[1] अपने पुत्र इन्द्रसे स्नेहपूर्वक कहाः—"हे वत्स! तेरे समान बड़े पराक्रमी पुत्रने जन्म लेकर, अपने वंशको उन्नतिके सर्वोत्कृष्ट शिखरपर पहुँचाया है और दूसरे उन्नत बने हुए वंशोंको न्यून बनाया है। यह बात तूने अपने ही पराक्रमसे की है, मगर अब नीतिको भी स्थान देना चाहिए। एकान्त पराक्रम किसी समय विपत्ति-दाता भी हो जाता है। अष्टापद आदि बलिष्ठ प्राणी, एकान्त पराक्रमके गर्वसे ही नष्ट हो जाते हैं। यह पृथ्वी सदैव एकके ऊपर दूसरा बलवान पैदा किया करती है। इस लिए किसीको यह गर्व नहीं करना चाहिए कि—'मैं ही सर्वोत्कृष्ट बलवान हूँ।'

---

१ पहिले सहस्रार राजाके दीक्षा लेनेकी बात आगई है; परन्तु उस बातको इस युद्धके बादकी समझना चाहिए।

अभी सुकेश राक्षसके वंशमें रावण नामक वीर उत्पन्न हुआ है। जो सबकी बहादुरीको हरण करनेवाला है। प्रतापमें सूर्यके समान है और सहस्रांशुके समान योद्धाओंको भी अपने कबजेमें करनेवाला है। जिसने लीलामात्रहीमें अष्टापद–कैलाश-पर्वतको उठा लिया था; जिसने मरुत राजाका यज्ञभंग किया था और जंबूद्वीपके पति यक्षसे भी जिसका मन क्षुब्ध नहीं हुआ था। धरणेन्द्रने जिसको, अर्हत प्रभुके सामने भुजवीणाके साथ गायन करता देख, संतुष्ट होकर, अमोघ शक्ति दी है। जो प्रभु, मंत्र तथा उत्साहसे अजीत है। जिसके दो भुजाओंके समान विभीषण और कुंभकर्ण नामक दो पराक्रमी भाई हैं। जिसने तेरे सेवक वैश्रवण और यमको लीलामात्रमें परास्त कर दिया था–हरा दिया था; वालीके भाई वानरपति सुग्रीवको जिसने अपने अधिकारमें कर लिया है। अग्निमय कोटसे घिरे हुए दुर्लंघ्यपुरमें जिसने आसानीसे प्रवेश किया है। और जिसके छोटे भाईने वहाँके राजा नलकूबरको क्रीडामात्रमें बाँध लिया है। ऐसा रावण राजा आज तेरे सामने आया है। प्रलयकालकी अग्निके समान उद्धत रावण–प्रणिपात–नम्रता स्वीकार-रूपी अमृतवृष्टिसे शान्त हो जायगा। इसके सिवाय वह शांत होनेका नहीं है।

तू अपनी रूपवती कन्या 'रूपवतीका' रावणके साथ ब्याह कर दे। जिससे दोनोंका संबंध उत्तम जुड़ जायगा

और उस संबंधके कारण तुम्हारी जो संधि होगी वह बहुत ही उत्तम होगी।

पिताके ऐसे वचन सुन, इन्द्रको अत्यंत क्रोध आया। वह लाल आँखें करके बोलाः—" हे पिता! रावण वध्य है—मार डालने योग्य है। मैं अपनी कन्या उसको कैसे दूँ? क्यों कि उसके साथ हमारा आधुनिक वैर नहीं है। वंशपरंपरागत वैर है। स्मरण कीजिए कि अपने पुरुषा विजयसिंहको उसीके पक्षके राजाने मार डाला था। उसके पितामह मालीकी मैंने जैसी दशाकी थी, वैसी ही दशामें उसकी भी करूँगा। रावण आया है, तो भले आवे। मेरे सामने वह कःपदार्थ है—तुच्छ है। आप स्नेह-वश होकर घबराइए नहीं। धैर्य धारण कीजिए। आपने कई वार अपने पुत्रके पराक्रमको देखा है। क्या आप मेरे पराक्रमको नहीं जानते हैं?"

इतनेहीमें खबर मिली कि, रावणने नगरको घेर लिया है। थोड़ी ही देर बाद पराक्रमी रावणका भेजा हुआ एक दूत इन्द्रके पास गया। उस दूतने मधुर शब्दोंमें इन्द्रसे कहाः—" जो राजा भुजबलका और विद्याबलका गर्व करते थे, उन सबका गर्व खर्व हुआ है और उन्होंने भेट देकर रावणकी पूजा की है। रावणकी विस्मृतिसे और तुम्हारी सरलतासे आज तक तुम निश्चिंत अपना राज्य करते रहे हो; परन्तु अब तुम्हारा भक्ति बतानेका समय आया है।

विभीषणके वचन सुनकर रावणको संतोष हुआ । थोड़ी देरमें रावणसे आलिंगन करनेकी उत्सुक लंपट उपरंभा वहाँ आपहुँची । उसके पतिने आशाली नामकी विद्याको नगर रक्षिका बना रक्खी थी । वह विद्या उसने रावणको देदी । उसके अतिरिक्त व्यंतर रक्षित कई दूसरे मंत्र भी उसने रावणको दिये ।

रावणने उस विद्यासे नगरके अग्निमय कोटका संहार कर, अपनी सेना सहित दुर्लंध्य पुरमें प्रवेश किया । नलकूबर युद्ध करनेको आया; मगर विभीषणने तत्काल ही उसको पकड़ लिया; जैसे की हाथी चमड़ेकी धमणको पकड़ लेता है ।

सुर और असुर दोनोंसे अजेय ऐसा, इन्द्र संबंधी, महा दुर्द्धर सुदर्शन चक्र भी वहींसे रावणको प्राप्त हुआ ।

पश्चात नल कूबरने नम्रता धारण करली इस लिए रावणने उसको उसका नगर वापिस लौटा दिया । कारण-

'अर्थिनोऽर्थेषु न तथा, दोषांतो विजये यथा ।'

(पराक्रमी पुरुष जैसे विजयकी इच्छा रखते हैं, वैसे धनकी इच्छा नहीं रखते हैं ।)

रावणने उपरंभासे कहाः—" हे भद्रे ! मेरेसाथ विनयका वर्ताव करनेवाले, तेरे कुलके योग्य, तू अपने पतिको ही स्वीकार कर; उसीमें रममाण हो । तू मेरे योग्य नहीं है । एक तो तूने मुझे विद्या दी है, इस लिए तू मेरे गुरुतुल्य

है। दूसरे मैं परस्त्रीको अपनी माँ बहिनके समान समझता हूँ। तू कासध्वजकी पुत्री है; सुंदरीके गर्भसे तेरा जन्म हुआ है; इस लिए तू वही कार्य कर जिससे दोनों शुद्ध कुलोंमें किसी प्रकारका कलंक न लगे।" इतना कहकर रावणने उपरंभाको नलकूबरके आधीनकर दिया। रूस कर पिताके घर गई हुई स्त्री जैसे निर्दोष वापिस सुसरालमें आती है, वैसे ही उपरंभा वापिस आई। राजा नलकूबरने रावणका बहुत बड़ा सत्कार किया।

रावण और इन्द्रका युद्ध।

रावण अपनी सेना सहित रथनुपुर नगर गया। रावणको आया सुन, महा बुद्धिमान सहस्रार राजा[1]ने अपने पुत्र इन्द्रसे स्नेहपूर्वक कहाः—" हे वत्स! तेरे समान बड़े पराक्रमी पुत्रने जन्म लेकर, अपने वंशको उन्नतिके सर्वोत्कृष्ट शिखरपर पहुँचाया है और दूसरे उन्नत बने हुए वंशोंको न्यून बनाया है। यह बात तूने अपने ही पराक्रमसे की है, मगर अब नीतिको भी स्थान देना चाहिए। एकान्त पराक्रम किसी समय विपत्ति-दाता भी हो जाता है। अष्टापद आदि बलिष्ठ प्राणी, एकान्त पराक्रमके गर्वसे ही नष्ट हो जाते हैं। यह पृथ्वी सदैव एकके ऊपर दूसरा बलवान पैदा किया करती है। इस लिए किसीको यह गर्व नहीं करना चाहिए कि—' मैं ही सर्वोत्कृष्ट बलवान हूँ।'

१ पहिले सहस्रार राजाके दीक्षा लेनेकी बात आगई है; परन्तु उस बातको इस युद्धके बादकी समझना चाहिए।

इस लिए भक्ति दिखाओ। यदि भक्ति बतानेकी इच्छा न हो, तो अपनी शक्ति प्रदर्शित करो। यदि भक्ति और शक्ति दोनोंसे रहित होओगे तो ऐसे ही नष्ट हो जाओगे।"

इन्द्रने उत्तर दियाः—"दीन राजाओंने उसकी पूजा की इस लिए रावण मत्त हो गया है। इसी लिए वह मेरे पाससे भी पूजा कराने की इच्छा रखता है। आज तक तो जैसे तैसे सुखसे रावणके दिन निकल गये, मगर अब उसका कालके समान इन्द्रसे पाला पड़ा है। अतः अपने स्वामीसे जाकर कह कि, वह भक्ति या शक्ति बतावे। यदि वह शक्ति या भक्तिसे रहित होगा, तो तत्काल ही उसका नाश हो जायगा।"

दूतने आकर रावणको सब समाचार सुना दिये। रावणने क्रुद्ध होकर, रण दुंदुभि बजवाया। इन्द्र भी तत्काल ही तैयार हो, सेना लेकर युद्धके लिए नगरसे बाहिर निकला। कहा है कि—

'वीरा हि न सहन्तेऽन्यवीराहंकाराडंबरम्।'

(वीरलोग दूसरे वीरोंके अहंकारको या आडंबरको सहन नहीं कर सकते हैं।)

युद्ध प्रारंभ हो गया। सामंतोंसे सामंत, सैनिकोंसे सैनिक और सेनापतियोंसे सेनापति आपसमें भिड़ गये। शस्त्रोंकी वर्षा करती हुई दोनों सेनाओंके बीचमें संवर्त और पुष्करावर्त मेघके समान संघर्षण होने लगा। दोनों सेना-

ओंके शस्त्रोंकी टक्करसे जो शब्द होता था, वह ऐसा मालूम होता था, मानो दो बादलके टुकड़े आपसमें टकरा गये हैं।

फिर रावण अपने 'भुवनालंकार' नामके हाथीपर चढ़, धनुषपर चिल्लेको चढ़ा, यह कहता हुआ आगे बढ़ आया कि, इनमच्छरोंके समान बिचारे सैनिकोंको क्यों मारना चाहिए? ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्रने भी अपना हाथी आगे बढ़ाया। दोनोंके हाथी भिड़ गये। एकने दूसरे की सूँडमें सूँड डाली। उनकी संमिलित सूँडें ऐसी मालूम होती थीं, मानो दो भुजंग आपसमें लिपट गये हैं। या दोनों हाथीयोंने नागपाशकी रचना की है।

दोनो बलवान गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार कर अरणि[1] काष्टके मथनकी भाँति उसमेंसे अग्निकी चिनगारियाँ उड़ाने लगे। दाँतोंके आघातसे, दोनोंके दाँतोंमेंके स्वर्णवल–सोनेके कड़े–निकल निकल कर गिरने लगे। जैसे कि विरहिणी स्त्रीके हाथोंसे निकल कर पड़ा करते हैं। दाँतोंके आघातसे दोनोंके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी; जैसे गंडस्थलमेंसे मदकी धारा बहा करती है।

उसी समय रावण और इन्द्र भी परस्परमें दो हाथियोंकी तरह युद्ध कर रहे थे। तोमर, मुद्गर और बाणोंका

१—एक प्रकारका काष्ट होता है। पहिले, जिस जमानेमें दीया सलाई नहीं चली थी, तब लोग इसीसे आग पैदा किया करते थे। संघर्षसे इसकी लकड़ी जल उठती है।

एक दूसरे पर प्रहार करता था। दोनों बलवान थे; एक दूसरेके शस्त्रका अपने शस्त्रसे चूर्ण कर देता था। इस तरह पूर्व और पश्चिम सागरकी भाँति उनमेंसे एक भी हीन नहीं हुआ, फिर रणरूपी यज्ञमें दीक्षित बने हुए वे दोनों बाध्य बाधकताको करनेवाले उत्सर्ग और अपवाद मार्गकी तरह, मंत्रास्त्रोंसे एक दूसरेके शस्त्रको बाध करते हुए युद्ध करने लगे।

एक ही बींट पर रहनेवाले दो फलोंकी तरह, ऐरावत और भुवनालंकार हाथी जब एक दूसरेसे मिल गये, तब छलको जाननेवाला रावण अपने हाथीपरसे उछल कर, ऐरावत हाथीपर कूद गया; और उसके महावतको मारकर, एक बड़े भारी हाथीकी तरह उसने इन्द्रको बाँध लिया। यह देखकर सारे राक्षस वीरोंने, हर्षसे उग्र कोलाहल किया और आकर उस हाथीको घेर लिया जैसे कि, शहदके छातेको मक्खियाँ घेरे रहती हैं। जब रावणने इन्द्रको पकड़ लिया, तब उसकी सारी सेना घबरा गई। उसने अपने हथियार छोड़ दिये। कारण

'विद्रुद्राव जिते नाथे जिता एव पदातयः।'

(स्वामीके पराजित हो जानेपर सेना भी पराजित हो जाती है।') ऐरावत हाथी सहित इन्द्रको लेकर रावण अपनी छावनीमें गया। और आप वैताढ्यकी दोनों श्रेणियोंका नायक होगया।

वहाँसे लौटकर रावण लंकामें गया और पिंजरेमें जैसे तोतेको बंद करते हैं, वैसे ही उसने इन्द्रको जेलखानेमें बंद कर दिया।

यह खबर इन्द्रके पिता सहस्रारको हुई। वह दिग्पालोंको लेकर, लंकामें गया और हाथ जोड़, नमस्कार कर रावणसे कहने लगा:—" जिसने कैलाश पर्वतको एक पत्थरकी तरह उठा लिया ऐसे तुम्हारे समान वीरसे पराजित होकर, हम तनिक भी लज्जित नहीं हैं। इसी तरह तुम्हारे समान वीरसे याचना करनेमें भी हमें किसी तरहकी लज्जा नहीं मालूम होती है। इस लिए मैं प्रार्थनाकरता हूँ कि इन्द्रको छोड़ दो; मुझे पुत्र भिक्षा दो।"

रावण बोला:—" यदि इन्द्र अपने परिवार और दिग्पालों सहित कुछ काल पर्यंत निरंतर कार्यकरता रहे, तो मैं उसको छोड़ सकता हूँ। काम यह है—

अपने रहनेके घरको जिस तरह कूड़े कचरे रहित-साफ-रखते हैं, उसी तरह लंकाको वह साफ रक्खे; प्रातःकाल ही दिव्य सुगंधित जलसे, मेघकी तरह, वह नगरीमें छिड़काव करे; और मालीकी भाँति बागोंमेंसे फूल तोड़, उनकी मालाएँ बना, जितने भी नगरमें देवालय हैं, उनमें वह मालाएँ पहुँचाया करे।

इतना कार्य करना यदि तुम्हारे पुत्र स्वीकार करे,

UNIVERSITY RECEIVED JAN 2 8 1924

आये थे; तो भी अहिल्याने तेरा त्याग कर, अपनी इच्छानुसार आनंदमालीसे ब्याह किया। तूने उसमें अपना अपमान समझा। इस लिए उसी दिनसे तू आनंदमालीसे द्वेष रखने लगा, कि मेरी उपस्थितिमें अहल्याने उसको कैसे वर लिया।

कुछ काल बाद आनंदमालीको वैराग्य हो आया। उसने संसार छोड़कर दीक्षा लेली और तीव्र तपस्या करता हुआ, वह महर्षियोंके साथ विहार करने लगा। एक बार विहार करता हुआ वह 'रथावर्त' नामके गिरिपर गया और ध्यान करने लगा। वहाँ तूने उसको देखा। तुझे अहल्याके स्वयंवरकी बात याद आई। इस लिए तूने उसको बाँधकर अनेक तरहके दुःख पहुँचाये। मगर वह पर्वतकी तरह अचल रहा। अपने ध्यानसे नहीं डिगा।

'कल्याणगुणधर' नामके साधुने, जो उसके गुरु भाई थे; जो साधुओंमें अग्रणी थे और जो उस समय उसके साथ ही थे, तेरी उस कृतिको देखा। तुझे निवृत्त करनेके लिए, वृक्षपर जैसे बिजली गिरती है, वैसे ही उन्होंने तुझ पर तेजोलेश्या रक्खी। तेरी पत्नी सत्यश्रीने, यह देखकर, भक्तिवचनसे मुनिको शांत किया; इसलिए उन्होंने तेजोलेश्याका वापिस हरण कर लिया और तू जलनेसे

वह मुक्त हो सकता है और अपना राज्य पुनःप्राप्त कर आनंदसे मेरा कृपापात्र बन, दिन बिता सकता है।

सहस्रारने ये सब बातें स्वीकार करलीं । तब रावणने अपने भाईके समान सत्कारकर इन्द्रको छोड़ दिया ।

फिर वह रथनुपुरमें आकर बड़े दुःखके साथ दिन बिताने लगा । कहा है कि—

'तेजस्विनां हि निस्तेजो मृत्युतोऽप्यति दुःसहम् ।'

(तेजस्वी पुरुषोंको निस्तेज बननेका दुःख मृत्यु-दुःखसे भी विशेष दुःसह होता है ।)

कुछ काल बाद वहाँ 'निर्वाणसंगम' नामक मुनि समोसर्या—गये । यह सुनकर इन्द्र उनकी वंदना करनेको गया । वंदना करके उसने पूछाः—"भगवन् कृपा करके बताइये कि मैं कौनसे कर्मके कारण इस रावणसे तिरस्कृत हुआ ।"

मुनि बोलेः—"पहिले 'अरिंजय' नगरमें 'ज्वलनसिंह नामक एक विद्याधर राजा था । उसके 'वेगवती' नामा स्त्री थी । उसके 'अहिल्या' नामकी एक रूपवती कन्या हुई । विद्याधरोंके सारे राजा उसके स्वयंवरमें एकत्रित हुए । उस स्वयंवरमें चंद्रावर्त नगरका राजा 'आनंदमाली' और सूर्यावर्त नगरका स्वामी 'तडित्प्रभ' भी आये थे । तडित्प्रभ स्वयं तू ही था । तुम दोनों साथमें

आये थे; तो भी अहिल्याने तेरा त्याग कर, अपनी इच्छानुसार आनंदमालीसे ब्याह किया। तूने उसमें अपना अपमान समझा। इस लिए उसी दिनसे तू आनंदमालीसे द्वेष रखने लगा, कि मेरी उपस्थितिमें अहल्याने उसको कैसे वर लिया।

कुछ काल बाद आनंदमालीको वैराग्य हो आया। उसने संसार छोड़कर दीक्षा लेली और तीव्र तपस्या करता हुआ, वह महर्षियोंके साथ विहार करने लगा। एक बार विहार करता हुआ वह 'रथावर्त' नामके गिरिपर गया और ध्यान करने लगा। वहाँ तूने उसको देखा। तुझे अहल्याके स्वयंवरकी बात याद आई। इस लिए तूने उसको बाँधकर अनेक तरहके दुःख पहुँचाये। मगर वह पर्वतकी तरह अचल रहा। अपने ध्यानसे नहीं डिगा।

'कल्याणगुणधर' नामके साधुने, जो उसके गुरु भाई थे; जो साधुओंमें अग्रणी थे और जो उस समय उसके साथ ही थे, तेरी उस कृतिको देखा। तुझे निवृत्त करनेके लिए, वृक्षपर जैसे बिजली गिरती है, वैसे ही उन्होंने तुझ पर तेजोलेश्या रक्खी। तेरी पत्नी सत्यश्रीने, यह देख-कर, भक्तिवचनसे मुनिको शांत किया; इसलिए उन्होंने तेजोलेश्याका वापिस हरण कर लिया और तू जलनेसे

बच गया । मगर मुनिको सतानेके पापसे, मुनिका तिरस्कार करनेसे, तू बहुत समय तक संसारमें भ्रमण करता रहा । किसी भवमें तूने शुभ कर्मका उपार्जन किया जिससे तू सहस्रारका पुत्र यह इन्द्र हुआ है । रावणसे तू तिरस्कृत हुआ सो यह तूने मुनिको दुःख दिया; उनका तिरस्कार किया; उसका फल तुझको मिला है ।

कर्म, कीड़ीसे लेकर इन्द्र पर्यन्त सबको उनके कियेका फल अवश्यमेव, देता है । चाहे जल्दी दे या देरमें । संसारका यही नियम है । इस प्रकारसे अपना पूर्व वृत्तांत सुन इन्द्रने अपने पुत्र 'दत्तवीर्य' को राज्य देकर दीक्षा ले ली और फिर वह उग्र तप कर मोक्षमें चला गया ।

रावणका अपनी मृत्युके कारण जानना ।

एक वार रावण 'अनंतवीर्य' नामक मुनिको-जिनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था-वंदना करनेके लिए 'स्वर्णतुंग गिरिपर गया । वंदना करके रावणने, अपने योग्य स्थानपर बैठकर, कानोंके लिए अमृतकी धाराके समान, धर्मदेशना सुनी । देशना हो चुकने पर रावणने पूछाः— "भगवन् ! मेरी मृत्यु किस कारणसे और किसके हाथसे होगी ?"

भगवन् महर्षिने उत्तर दियाः—"हे रावण ! परस्त्रीके दोषसे, भविष्यमें होनेवाले वासुदेवके हाथसे तेरी—प्रतिवासुदेवकी—मृत्यु होगी ।"

यह सुनकर रावणने उसी समय मुनिके सामने नियम किया कि, वह कभी उसकी इच्छा नहीं रखनेवाली पर-स्त्रीके साथ संयोग नहीं करेगा । फिर ज्ञान-रत्नोंके सागर मुनिको वंदना करनेके बाद रावण पुष्पकविमानमें बैठकर अपनी नगरीमें गया और अपने नगरकी स्त्रियोंके नेत्ररूपी नील कमलोंको हर्षवैभव देनेमें चंद्रमाके समान हुआ ।

तीसरा सर्ग ।

हनुमानकी उत्पत्ति और वरुणका साधन ।

अंजनासुंदरीका जन्म ।

वैताढ्य गिरिपर 'आदित्यपुर' नामका एक नगर है। उसमें 'प्रह्लाद' नामका एक राजा था। उसके 'केतुमती' नामक प्रिया थी। उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'पवनंजय' रक्खा गया। वह बलसे और आकाशमें गमन करनेसे पवनके समान विजयी था।

उसी समयमें भरत क्षेत्रमें समुद्रके किनारे वाले दंती पर्वतके ऊपर 'महेन्द्र' नामका नगर था। उसमें 'महेन्द्र' नामक विद्याधरोंका राजा राज्य करता था। उसके 'हृदयसुंदरी' नामक पत्नी थी। उसने अरिंदम आदि सौ पुत्रोंको जन्म देनेके बाद 'अंजनासुंदरी' नामक कन्याको जन्म दिया। जब वह बाला उत्कट यौवनवती हुई, तब उसके पिताको योग्य वरकी चिन्ता हुई। मंत्रियोंने उसके योग्य हजारों जवान विद्याधरोंके नाम बताये। मगर उसे एक भी वर पसंद नहीं आया। तब महेंद्रकी

आज्ञासे मंत्री, अनेक विद्याधर कुमारोंके यथावस्थित स्वरूप कपड़ेपर चित्रित करवा करवाकर मँगवाने लगे और राजाको दिखाने लगे।

अंजनाका पवनंजयके साथ ब्याहका निश्चय।

एकवार किसी मंत्रीने 'हिरण्याभ' की पत्नी 'सुमन्तके' उदरसे जन्मे हुए 'विद्युत्प्रभ' नामके विद्याधरका और प्रह्लादके पुत्र पवनंजयका मनोहर स्वरूप चित्रित करके राजाको दिखाया।

उन दोनों चित्रोंको देखकर राजाने पूछाः—"ये दोनों स्वरूपवान और कुलीन हैं, इस लिए कुमारी अंजनासुंदरीके लिए इन दोनोंमेंसे कौनसा वर पसंद करना चाहिए?"

मंत्रीने उत्तर दियाः—"हे स्वामिन्! मुझे निमित्तियाने बताया है कि, यह विद्युत्–बिजली–के समान प्रभावाला विद्युत्प्रभ अठारह वर्षकी आयु पूर्णकर मोक्षमें जानेवाला है और प्रह्लादका पुत्र पवनंजय दीर्घ आयुष्यवाला है। इसलिए अंजनासुंदरीके लिए पवनंजय ही योग्य वर है।

उस समय प्रायः सारे विद्याधर राजा अपने परिवारको लेकर बड़ी समृद्धिके साथ–धूमधामके साथ–नंदीश्वर द्वीपकी यात्रा करनेको जाते थे। उनमें महेन्द्र राजा भी था। उसको देखकर प्रह्लादने उससे अंजनासुंदरीको

पवनंजयके लिए माँगा । महेंद्रने स्वीकार कर लिया । क्योंकि वह तो पहिलेहीसे यह बात चाहता था । प्रह्लादकी माँग तो एक निमित्तमात्र थी। फिर दोनों यह ठहराकर अपने अपने स्थानपर चलेगये कि, आजके तीसरे दिन मानस सरोवर पर ब्याह करदेना ।

महेन्द्रने और प्रह्लादने, अपने अपने स्वजन परिवार सहित, मानस सरोवरपर जाकर डेरे दिये ।

अंजनाके प्रति पवनंजयकी अप्रीति ।

पवनंजयने अपने 'प्रहासित' नामक मित्रसे पूछाः— अंजनासुंदरी कैसी है? क्या तुमने कभी उसको देखा है?"

प्रहसितने हँसकर उत्तर दियाः—"मैंने उसको देखा है वह रंभादि अप्सराओंसे भी अधिक सौंदर्यवान है। उसका रूप देखनेहीसे समझमें आ सकता है । वाणी—वाचाळ मनुष्यकी वाणी—भी उसके रूपका पूरा वर्णन नहीं कर सकती है ।"

पवनंजय बोलाः—"मित्र ! अभी विवाहका दिन दूर है; और मेरा हृदय, आज ही उस सुंदरीको देखनेके लिए उत्सुक हो रहा है । अतः यह उत्सुकता कैसे दूर हो ? मैं कैसे आज ही उसे देख सकूँ ? प्यारी स्त्रीके लिए उत्कंठित बने हुए पुरुषोंको एक घड़ी दिनके समान और दिन महीनेके समान लगने लगता है । तो फिर मेरे ये तीन दिन कैसे निकलेंगे ?"

प्रहसितने कहाः—" मित्र स्थिर होओ। रातको हम अनुपलक्षित होकर-वेष बदलकर—वहाँ जायँगे और उस कान्ताको देखेंगे।"

तदनुसार पवनंजय और प्रहसित दोनों रातको अंजनासुंदरीके महलमें गये। राजस्पशन—गुप्तचर—की भाँति छुपकर, पवनंजय अंजनाको भली प्रकारसे देखने लगा—निरखने लगा।

उस समय वसंततिलका नामकी सखीने अंजनासुंदरीसे कहाः—" सखी! तेरा अहो भाग्य है कि, तुझको पवनंजयके समान वर मिला है।"

यह सुनकर 'मिश्रका' नामा दूसरी सखी बोलीः—" रे सखी! विद्युत्प्रभाके समान वरको छोड़कर दूसरे वरकी क्या प्रशंसा करने लग रही है?"

वसन्ततिलकाने कहाः—'हे मुग्धा! तू तो कुछ भी नहीं जानती। विद्युत्प्रभाके समान अल्प आयुवाला पुरुष अपनी स्वामिनीके योग्य कैसे हो सकता है?'

मिश्रका बोलीः—" सखी! तू तो बिलकुल मंद बुद्धि मालूम होती है। अरी! अमृत थोड़ा हो, तो भी वह श्रेष्ठ होता है और विष बहुतसा हो तो भी वह किसी कामका नहीं होता।"

दोनों सखियोंका वार्तालाप सुनकर, पवनंजय सोचने

लगा–" विद्युत्प्रभ अंजनसुंदरीको प्रिय है, इसी लिए वह दूसरी सखीको बोलनेसे नहीं रोकती है।"

इस विचारसे उसके हृदयमें क्रोधका उदय हो आया; जैसे कि अंधकारमें किसी निशाचरका उदय हो आता है। वह तत्काल ही अपना खड्ग खींचकर यह बोलता हुआ, आगे बढ़ने लगा कि, विद्युत्प्रभको वरनेकी और उसको वरानेकी इच्छा रखनेवाले दोनोंको इसी समय मैं यमधाम पहुँचा देता हूँ।"

प्रहसितने पवनंजयको पकड़ लिया और कहा:–" हे मित्र! क्या तू नहीं जानता कि, स्त्री अपराधिनी होने पर भी गउकी भाँति अवध्य है और अंजनासुंदरी तो सर्वथा निरपराधिनी है। इसने सखीको बोलते नहीं रोका इसका कारण उसकी लज्जा है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वह विद्युत्प्रभको चाहती है, तुमको नहीं चाहती है।"

प्रहसितने आग्रहपूर्वक उसको रोका। दोनों वहाँसे अपने स्थानपर आये। पवनंजय दुःखी हृदयसे अनेक प्रकारके विचार करता हुआ, रातभर जागता रहा। प्रातःकाल ही उसने उठकर अपने मित्रसे कहा:–" मित्र! इस स्त्रीके साथ ब्याह करना व्यर्थ है। क्योंकि एक सेवक भी यदि अपनेसे विरक्त होता है, तो वह आपत्तिका कारण हो जाता है, तब फिर विरक्त स्त्रीका तो कहना ही क्या है? अतः चलो। हम लोग, इस कन्याका त्याग कर

अपने नगरको चले चलें। क्योंकि जो भोजन अपनेको अच्छा नहीं लगे, वह कितना ही स्वादिष्ट हो, तो भी अपने किस कामका है ?'

इतना कहकर पवनंजय चलनेको उद्यत हुआ। प्रहसित ने उसको जबर्दस्तीसे रोक लिया; और शान्तिसे इस तरह समझाना प्रारंभ किया।

" हे मित्र! जो कार्य हम स्वीकार लेते हैं, उसको पूर्ण न करना भी महापुरुषोंके लिए अनुचित है; तब जो कार्य अनुल्लंघ्य है; जिसको गुरुजनोंने स्वीकार किया है, उसको उल्लंघन करनेकी तो बात ही कैसे की जा सकती है ? गुरुजन कीमत लेकर बेच दें या कृपा करके किसीको दे दें; तो भी सत्पुरुषोंके लिए तो वह प्रमाण है--मान्य है। उनके लिए दूसरी कोई गति ही नहीं है। फिर इस अंजनासुंदरीमें तो एक तृण बराबर भी दोष नहीं है। सुहृद् जनका हृदय ऐसे दोषके आरोपसे दूषित हो जाता है। तेरे और उसके मातापिता महात्माकी भाँति प्रख्यात हैं। इतना होने पर भी हे भ्राता! तू स्वच्छंद वृत्तिसे यहाँसे चले जानेका विचार कर, लज्जित क्यों नहीं होता है ? तू क्या उन्हें लज्जित करना चाहता है ? "

प्रहासितके ऐसे वचन सुन, हृदयमें शल्य होनेपर भी पवनंजय वहीं रहा।

लगा–“ विद्युत्प्रभ अंजनसुंदरीको प्रिय है, इसी लिए वह दूसरी सखीको बोलनेसे नहीं रोकती है। ”

इस विचारसे उसके हृदयमें क्रोधका उदय हो आया; जैसे कि अंधकारमें किसी निशाचरका उदय हो आता है। वह तत्काल ही अपना खड्ग खींचकर यह बोलता हुआ, आगे बढ़ने लगा कि, विद्युत्प्रभको वरनेकी और उसको वरानेकी इच्छा रखनेवाले दोनोंको इसी समय मैं यमधाम पहुँचा देता हूँ। ”

प्रहसितने पवनंजयको पकड़ लिया और कहाः–“ हे मित्र ! क्या तू नहीं जानता कि, स्त्री अपराधिनी होने पर भी गउकी भाँति अवध्य है और अंजनासुंदरी तो सर्वथा निरपराधिनी है। इसने सखीको बोलते नहीं रोका इसका कारण उसकी लज्जा है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वह विद्युत्प्रभको चाहती है, तुमको नहीं चाहती है।”

प्रहसितने आग्रहपूर्वक उसको रोका। दोनों वहाँसे अपने स्थानपर आये। पवनंजय दुःखी हृदयसे अनेक प्रकारके विचार करता हुआ, रातभर जागता रहा। प्रातःकाल ही उसने उठकर अपने मित्रसे कहाः–“ मित्र ! इस स्त्रीके साथ ब्याह करना व्यर्थ है। क्योंकि एक सेवक भी यदि अपनेसे विरक्त होता है, तो वह आपत्तिका कारण हो जाता है, तब फिर विरक्त स्त्रीका तो कहना ही क्या है ? अतःचलो। हम लोग, इस कन्याका त्याग कर

अपने नगरको चले चलें। क्योंकि जो भोजन अपनेको अच्छा नहीं लगे, वह कितना ही स्वादिष्ट हो, तो भी अपने किस कामका है ?'

इतना कहकर पवनंजय चलनेको उद्यत हुआ। प्रहसित ने उसको जबर्दस्तीसे रोक लिया; और शान्तिसे इस तरह समझाना प्रारंभ किया।

" हे मित्र! जो कार्य हम स्वीकार लेते हैं, उसको पूर्ण न करना भी महापुरुषोंके लिए अनुचित है; तब जो कार्य अनुल्लंघ्य है; जिसको गुरुजनोंने स्वीकार किया है, उसको उल्लंघन करनेकी तो बात ही कैसे की जा सकती है ? गुरुजन कीमत लेकर बेच दें या कृपा करके किसीको दे दें; तो भी सत्पुरुषोंके लिए तो वह प्रमाण है—मान्य है। उनके लिए दूसरी कोई गति ही नहीं है। फिर इस अंजनासुंदरीमें तो एक तृण बराबर भी दोष नहीं है। सुहृद् जनका हृदय ऐसे दोषके आरोपसे दूषित हो जाता है। तेरे और उसके मातापिता महात्माकी भाँति प्रख्यात हैं। इतना होने पर भी हे भ्राता! तू स्वच्छंद वृत्तिसे यहाँसे चले जानेका विचार कर, लज्जित क्यों नहीं होता है ? तू क्या उन्हें लज्जित करना चाहता है ? "

प्रहासितके ऐसे वचन सुन, हृदयमें शल्य होनेपर भी पवनंजय वहीं रहा।

अंजनासुंदरीका व्याह ।

निश्चित किये हुए दिनको पवनंजय और अंजनासुंदरीका व्याह हो गया । बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। वह विवाहोत्सव उनके मातापिताके नेत्ररूपी कमलोंको, चंद्रके समान आल्हादकारी-सुखदायी-जान पड़ा ।

फिर महेन्द्रके स्नेहसे पूजा हुआ प्रहलाद, स्वजन संबंधियों सहित वधूवरको लेकर आनंदपूर्वक अपने नगरमें गया । प्रहलादने वहाँपर अंजनसुंदरीको सात मंजिलका एक सुंदर महल रहनेको दिया । वह ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वीपर विमान है ।

मगर पवनंजयने वचनसे भी उसकी सँभाल न ली—कभी उससे बात भी नहीं की । क्योंकि—

'मानीनो ह्यवलेपं न विस्मरंति यतस्ततः ।'

(मानी पुरुष अपने अपमानको जैसे तैसे भूल नहीं जाते हैं ।) इसलिए अंजनासुंदरी, विना चाँदवाली रातकी भाँति, पवनंजय विना नेत्राश्रुके—आँसुओंसे भरी हुई आँखोंके—मुखको अंधकारवाला बना अस्वस्थताकी पात्र हो—रुग्ण हो—दिन बिताने लगी ।

बार बार पलंगपर दोनों पसवाड़ोंको—करवटोंको—पछाड़ती हुई उस बालाको रातें बरसोंके बराबर जान पड़ने लगीं । अनन्यमना—उदास हृदया—अंजनासुंदरी हृदयपटपर पतिका ही चित्र चित्रित करती हुई दिन बिताने लगी । सखियाँ बार बार उसे मधुरवाणीसे बोलाती थीं,

मगर हेमंतऋतुमें जैसे कोयल कभी नहीं बोलती है, वैसे ही वह भी मौनका भंग नहीं करती थी।

रावणकी सहायताके लिए पवनंजयका प्रयाण।

इसी प्रकारसे रहते हुए बहुत दिन बीत गये। एकवार रावणके दूतने आकर प्रहलाद राजासे कहाः—" दुर्मति वरुण रावणके साथ हमेशा वैर रक्खा करता है और रावणके सामने सिर झुकाना स्वीकार नहीं करता है। जब उसको नमस्कार करनेके लिए कहा गया; तब उस अहंकारके गिरि, अनिष्ठ वचनोंके बोलनेवाले वरुणने अपने भुजदंडोंको देखते हुए कहाः—" अरे! यह रावण कौन है? यह क्या कर सकता है? मैं इन्द्र, वैश्रवण, नलकूबर, सहस्रांशु, मरुत, यमराज या कैलाशगिरि नहीं हूँ। मैं वरुण हूँ। देवताधिष्ठित रत्नोंसे वह दुर्मति रावण यदि गर्विष्ठ हुआ हो, तो भले वह यहाँ आवे और अपनी शक्ति आजमावे। उसके चिरकालसे एकत्रित किये हुए गर्वको मैं क्षणवारमें नष्ट कर दूँगा।"

उसके ऐसे वचन सुन रावणको क्रोध आया। उसने उसी समय उस पर चढ़ाई कर दी और समुद्रकी वेला—समुद्रका चढ़ाव—जैसे किनारेके पर्वतको घेर लेता है, वैसे उसने उसके नगरको घेर लिया।

तब वरुण भी क्रुद्ध होकर राजीव और पुंडरीक नामके अपने पुत्रों सहित नगरसे बाहिर निकला और

युद्ध करने लगा । वरुणके वीर पुत्र, महान युद्ध कर, खर-दूषणको बाँध, अपने नगरमें ले गये । इससे राक्षससेना सब तित्तर बित्तर हो गई । इस जीतसे वरुण भी अपने आपको कृतार्थ मानता हुआ, वापिस नगरमें चला गया ।

अब रावणने विद्याधरोंके प्रत्येक राजाको बुलानेके लिए दूत भेजे हैं । तदनुसार मैं भी आपके पास आया हूँ ।

दूतके वचन सुनकर, प्रहलाद राजा रावणकी सहायताके लिए जानेको तैयार हुआ । उसी समय पवनंजय वहाँ जा पहुँचा । उसको सब हाल मालूम हुआ । उसने पितासे कहाः—" हे तात ! आप यहीं रहिए । मैं जाकर रावणके सब मनोरथ पूर्णकर आऊँगा । मैं आपका पुत्र हूँ ।

आग्रह पूर्वक पिताकी सम्मति ले; सबलोगोंसे प्रेम पूर्वक विदा हो पवनंजय वहाँसे जानेको तैयार हुआ । पतिके यात्रार्थ जानेकी खबर सुन, अंजनासुंदरी भी उत्कंठित हो—आकाशके शिखरसे देवी उतरती है वैसे—अपने महलसे उतर कर नीचे आई और अपने पतिके दर्शन करनेके लिए अनिमिष नेत्रसे द्वारकी ओर देखती हुई, अस्वास्थ्य-पीडित हृदयसे स्तंभका सहारालेकर पुतलीकी तरह खड़ी हो गई ।

पवनंजयने चलते वक्त अंजनाको देखा । देखा—द्वारके स्तंभसे सहारा लेकर खड़ी हुई अंजनाका शरीर बीजके

चंद्रमाकी तरह कृश हो रहा है; सूखे हुए केशोंसे उसका लिलाट ढका हुआ है; शिथिल बनी हुई भुजलता उसके नितंब भागपर लटक रही है; ताँबूलके रंग विना उसके अधरपल्लव पीले पड़े हुए हैं; अश्रुजलसे उसका मुख भीग रहा है और उसकी आँखोंमें अंजनका नाम भी नहीं है ।

अंजनाको देखकर उसने मन ही मन कहाः–" अहो ! यह दुष्टबुद्धिवाली कैसी निर्लज्ज और निर्भीक है ! मैंने तो इसके दुष्ट मनको पहिलेहीसे जानलिया था, तो भी मातापिताकी आज्ञा उल्लंघनके भयसे मुझको इसके साथ ब्याह करना पड़ा था । "

पवनंजय इस तरह सोच रहा था, उसी समय अंजना उसके पैरों पड़, हाथ जोड़, बोलीः—" हे स्वामी ! आप सबसे मिले, सबकी सँभाल ली मगर मुझसे तो आप एक शब्द भी नहीं बोले । नाथ ! मेरी प्रार्थना सुनिए मुझे इस तरह भूल न जाइए। आपका मार्ग सुखकर हो । अपना कार्य सफल करके पुनः शीघ्र पधारिए । "

शुद्ध चरित्रवाली दीन बनी हुई सती अबलाकी; उसकी प्रार्थनाकी; कुछ परवाह न कर पवनंजय विजयके लिए चला गया ।

पवनंजयका अंजनाके महलमें आना ।

पतिकृत अवज्ञासे, पति वियोगसे, पीड़ित होकर, वह

बाळा अपने महलमें गई और जाकर जलभेदित नदी–तट की भाँति पृथ्वीपर गिर गई।

पवनंजय वहाँसे उड़कर मानस सरोवर पर गया। संध्या हो जानेसे उसने वहीं डेरे डाले, और एक महल बनाकर उसमें निवास किया। क्योंकि विद्याधरोंकी विद्या सारे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होती है।'

उस पलंगपर पवनंजय अपने महळमें बैठा हुआ था। वहाँ मानस सरोवरके किनारे पर प्रिय वियोगसे पीडित एक चक्रवाकीको उसने देखा। देखा–पक्षिणी प्रथम गृहण की हुई मृणाललताको भी खाती नहीं है; जल शीतल है, तो भी वह उसको उबलते हुए जलके समान मालूम हो रहा है। हिमांशु–चंद्रमा–की हिम किरणें–चाँदनी–भी उसको अग्निज्वालाकी समान दुःखदाई जान पड़ रही है और वह करुण स्वरमें रुदन कर रही है।

उस पक्षिणीकी ऐसी दशा देख, पवनंजय सोचने लगा–"ये चकवियाँ दिनभर अपने पतियोंके साथ रहती हैं। केवल रात्रिमें ही इनका वियोग होता है, तो भी उस अल्पवियोगको ये नहीं सह सकती हैं। तब ब्याह कर के ही जिसका मैंने त्याग किया है; परस्त्रीकी भाँति जिसके साथ मैंने बात भी नहीं की है; रवाना होते समय भी जिसकी मैंने सँभाल नहीं ली है; जो पर्वतके समान दुःखसे दबी हुई है और जिसने मेरे समागमका थोड़ासा भी सुख

नहीं देखा है, अफ्सोस! उस बिचारी अंजनाकी क्या दशा हुई होगी? अरे! मुझ जैसे अविवेकीको धिक्कार है। वह बिचारी मुझसे अपमानित हुई है; वह जरूर मरजायगी। उसकी हत्याके पापसे दुर्मुख बनकर, मैं कहाँ जाऊँगा?'

उसने अपने मित्र प्रहसितको बुलाकर सब हाल सुनाया। कहा है कि–

'स्वदुःखाख्यानपात्रं नापरः सुहृदं विना।'

(मित्रके विना अपने हृदयका दुःख जतलाने योग्य और कोई पात्र नहीं होता है।)

प्रहसितने कहाः–"चिरकालके बाद भी सही बात अब तेरे समझमें आई सो अच्छा हुआ। मगर वह बाला वियोगिनी सारस–पक्षिणीकी भाँति जीवित होगी या नहीं? हे मित्र! यदि वह जीवित हो, तो अब भी जाकर तुझे उसको आश्वासन देना चाहिए। अतः उसके पास जा; उससे मधुर संभाषण कर और उसकी आज्ञा लेकर, अपने कार्यार्थ जानेके लिए वापिस लौट आ।"

अपने हृदयहीके समान भावीके विचार करनेवाले मित्रकी बातें सुन, उसकी प्रेरणासे उसको साथ ले, पवनंजय उड़कर, अंजनाके महलमें गया और छिपकर दर्वाजेपर खड़ा हो गया।

पहिले प्रहसितने अंजनाके कमरेमें प्रवेश किया। उसने देखा, थोड़े जलकी मछलीकी भाँति वह अपने पलंगपर पड़ी हुई छटपटा रही है; कमलिनी जैसे हिमसे पीडित होती है, वैसे ही वह चंद्र–ज्योत्स्नासे–चांदनीसे–व्याकुल हो रही है; हृदयके तापसे–आंतर–अग्निसे–उसके हारके मोती फूटने लग रहे हैं; लंबी लंबी निःश्वासोंसे उसकी केशराशी चपल हो रही है; और असह्य पीडासे पछड़ाती हुई भुजाओंकी पछाड़से कंकणकी मणियाँ टूटने लग रही हैं। वसंततिलका सखी उसको धीरज बँधा रही है। उसके नेत्र और उसके हृदयकी गति ऐसे शून्य हो रहे थे, कि मानो वे काष्ठके बने हुए हैं।

व्यंतरकी भाँति प्रहसितको अचानक अपने गृहमें आते देख, अंजना भयभीत हो गई। फिर वह धीरज धरकर, बोलीः—“तुम कौन हो और परपुरुष होनेपर भी तुम यहाँ क्यों आये हो? मुझे जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह परस्त्रीका घर है तुम यहाँसे चले जाओ।”

फिर उसने अपनी दासी वसंततिलकासे कहाः—“हे वसंततिलका! इस पुरुषको हाथ पकड़कर महलसे निकाल दे। मुझ चंद्र समान निर्मल स्त्रीके लिए किसी परपुरुषका मुख देखना भी अयोग्य है। मेरे महलमें मेरे पति पवनंजयके सिवा किसी दूसरे पुरुषको प्रवेश करनेका

अधिकार नहीं है। देख क्या रही है ? इसको जल्दी यहाँसे निकाल दे।"

अंजनाके वचन सुन, प्रहसितने हाथ जोड़कर कहा:— "हे स्वामिनी! चिरकालके बाद उत्कंठित होकर, आये हुए पवनंजयके समागमकी आपको बधाई है। कामदेवका जैसे वसंत मित्र है, वैसे ही मैं पवनंजयका मित्र प्रहसित हूँ। मैं आया हूँ। समझिए कि मेरे पीछे ही पवनंजय आनेवाले हैं।"

प्रहसितकी बात सुन अंजना बोली:—"हे प्रहसित! विधिने पहिले ही मेरा बहुत हास्य कर रक्खा है; फिर तुम भी मुझपर क्यों हँसते हो? यह मस्खरी करनेका समय नहीं है। मगर इसमें किसीका क्या दोष है? मेरे ही कर्मोंका दोष है। यदि आज भाग्य ही सीधा होता तो मुझे ऐसा कुलवान पति क्यों छोड़ देता? क्यों आज बाईस बरस बीत जानेपर भी पति-विरहसे मैं मर न जाती?"

उसके इसतरहके वचन सुनकर, अंजनाके दुःखका भार जिसके ऊपर है ऐसा, पवनंजय एकदम अपने महलमें चला गया और आँखोंमें पानीभर गद्गद हृदय हो बोला:—

"हे प्रिये! मैं मूर्ख होकर भी अपने आपको महाज्ञानी समझता था। इसी लिए तेरे समान निर्दोष स्त्रीको सदोषा समझ मैंने व्याह करते ही छोड़ दिया था। मेरे ही दोषसे

तेरी ऐसी दुर्दशा हुई है। शायद है कि, तू अब तक मर भी जाती; परन्तु मेरे भाग्यके योगसे जीवित रही है।"

इस प्रकारसे बोलते हुए, अपने पतिको पहिचानकर, लज्जावती अंजना पलंगकी ईसका सहारा लेकर, खड़ी होगई। पवनंजय उसको, जैसे हाथी लताको अपनी सूँडमें पकड़ता है वैसे ही, वलयाकार भुजासे पकड़ बगलमें दबा पलंगपर बैठ गया और बोलाः—"हे प्रिये! मुझ क्षुद्रबुद्धिने तेरे समान निरपराधिनी स्त्रीको दुःख दिया, उसके लिए मुझको क्षमा करो।"

पतिके ऐसे वचन सुनकर अंजना बोलीः–"हे नाथ! ऐसा न कहिए; मैं तो आपकी सदाकी दासी हूँ। इस लिए मुझसे क्षमा माँगना अनुचित है।

प्रहसित और वसंततिलका बाहिर चले गये। कारण

'रहःस्थयोर्हि दम्पत्योर्न च्छेकाः पार्श्ववर्तिनः।'

(जब दंपती एकांतमें मिलते हैं तब चतुर पासवान[1] वहाँसे चले जाते हैं।)

पवनंजय और अंजना स्वेच्छापूर्वक रमण करने लगे। रात रसके आवेशमें एक घड़ीके समान बीत गई। प्रभात होते देख पवनंजयने कहाः—"हे कान्ता! मैं विजय करनेके लिए जाता हूँ। यदि गुरुजनोंको खबर

1. पास रहनेवाले, मित्र, सखी दास दासी आदि।

होगी, तो अच्छा नहीं होगा। हे सुंदरी! अब कभी मनमें खेद मत करना। मैं रावणका कार्य करके वापिस आऊँ तबतक सखियोंके साथ सुखसे काल बिताना।"

अंजना बोली:—"आपके समान बलवान वीरके लिए तो वह कार्य सिद्ध ही है। मगर यदि आप मुझको जीवित देखनेकी इच्छा रखते हैं तो कार्यसाधन करके शीघ्र ही लौट आइए। एक विनती और है। आजमें ऋतुस्नाता[1] हूँ; इसलिए यदि मुझे गर्भ रह जायगा तो आपकी अनुपस्थितिके कारण दुर्जन लोग मेरी निंदा करेंगे।"

पवनंजयने कहा:-"हे मानिनी! मैं शीघ्र ही लौट कर वापिस आऊँगा। मेरे आनेसे कोई नीच मनुष्य तेरी निंदा नहीं कर सकेगा। तो भी मेरे समागमको सूचित करनेवाली मेरे नामकी यह अंकित मुद्रा ले। यदि समय पड़े तो यह मुद्रिका बता देना।"

इतना कह मुद्रिका दे, पवनंजय प्रहसित सहित वहाँसे उड़कर अपनी सेनामें गया। वहाँसे देवोंकी भाँति, सेनाके साथ, वह आकाश मार्गसे लंकामें पहुँचा। लंकामें जाकर उसने रावणको प्रणाम किया। तरुण सूर्यकी भाँति कांतिसे प्रकाशित रावण और पवनंजय अपनी अपनी सेना लेकर वरुणके साथ युद्ध करनेको पातालमें गये।

---

१ रजस्वला होनेके बाद स्नानकी हुई।

गर्भवती अंजनाका, सासू केतुमतीके द्वारा, तिरस्कार।

अंजनासुंदरीके उसी दिन गर्भ रह गया। इससे उसके सारे अवयव विशेष सुन्दर हुए; विशेष शोभा देने लगे। गालोंकी शोभा पांडु वर्णकी होगई; स्तनोंके मुख श्याम होगये; गति अत्यंत मंद होगई, और नेत्र विशेष विशाल और उज्ज्वल हो गये। इनके अतिरिक्त गर्भके दूसरे लक्षण भी उसके शरीरपर स्पष्टतया दिखाई देने लगे।

यह देखकर उसकी सासू 'केतुमती' तिरस्कारपूर्वक बोलीः—"रे पापिनी! दोनों कुलोंको कलंकित करनेवाला तूने यह क्या काम किया? पति विदेशमें होते हुए भी तू गर्भिणी कैसे होगई? मेरा पुत्र तुझसे घृणा करता था, तब मैं समझती थी कि वह अज्ञानी है, इसी लिए तुझको दूषित गिनता है; परंतु मुझे आज तक यह मालूम नहीं था कि, तू व्यभिचारिणी है।"

सासूकृत तिरस्कारसे दुखी हो; आँखोंमें आँसू भर, अंजनाने पतिसमागमकी साक्षीरूप मुद्रिका अपनी सासूको दिखाई। उसको देखने पर भी, लज्जावनतमुखा अंजनाको उसकी सासूने फिरसे घृणापूर्वक कहाः—"अरे दुष्टा! तेरे पतिके साथ—जो तेरा कभी नाम भी नहीं लेता था—तेरा समागम कैसे हो सकता है? इस लिए मुद्रिका दिखाकर, हमको किस लिए धोखा देती है? व्यभिचारिणी स्त्रियाँ ठगनेके ऐसे ऐसे कई मार्ग जानती

हैं । हे स्वच्छंदचारिणी ! तू आज ही मेरे घरसे निकल कर अपने बापके यहाँ चली जा । यहाँ अब खड़ी भी मत रह । मेरा घर तेरे जैसी स्त्रियोंके रहने योग्य नहीं है । ”

इस प्रकारसे उसका तिरस्कार कर, उस राक्षसी स्वभावा निर्दया केतुमतीने अंजनाको पिताके घर छोड़ आनेकी नौकरोंको आज्ञा दी ।

नौकर अंजनाको और वसंततिलकाको नौकामें बिठाकर माहेंद्र नगरके पास ले गये । उन्होंने उनको नौकासे उतारा; नेत्रोंमें जलभर अंजनाको माताकी तरह प्रणाम किया और उससे क्षमा माँगी ।

‘ स्वामिवत्स्वाम्यपत्येऽपि सेवकाः समवृत्तयः । ’

(उत्तम सेवक स्वामीके परिवार पर भी स्वामीकी भाँति ही वृत्ति रखते हैं।) फिर वे उन्हें वहीं छोड़कर निज नगरको लौट गये ।

पिताके घरसे भी अंजनाका तिरस्कार ।

उस समय सूर्य अस्त हो गया; ऐसा जान पड़ता था, मानो अंजनाका दुःख न देख सकनेहीसे सूर्य चला गया है ।

‘ सन्तः सतां न विपदं विलोकयितुमीश्वराः । ’

(सत्पुरुष कभी सज्जनकी विपत्तिको नहीं देख सकते हैं ।)

उल्लुओंका घुरघुराहट होने लगा; शृगाल फेत्कार करने लगे; सिंह गर्जने लगे; शिकारी जानवर—दरिंदे—अनेक प्रकारके शब्द बोलने लगे; पिंगल[1] राक्षसोंके संगीतकी भाँति कोलाहल करने लगे। इन्हीं सबके बीचमें—वहीं रहकर, मानो वह बहरी है, किसीके शब्द सुनती ही नहीं है ऐसी स्थितिमें—अंजनाने वसंततिलका सहित सारी रात जागते हुए बिताई।

सवेरा होते ही वह दीन अबला, लज्जासे संकुचित होती हुई, भिक्षुककी भाँति परिवार रहित, धीरे धीरे पिताके दरवाजे पर गई। उसको अचानक वैसी स्थितिमें आई हुई देख, प्रतिहारी—चौकीदार—भ्रममें पड़ा। फिर उसने वसंत-तिलकाके कहनेसे सारी बातें जाकर राजासे निवेदन कीं।

सुनकर राजाका मुख नम्र और काला हो गया। वह विचारने लगा—" कर्मके विपाककी तरह स्त्रियोंका चरित्र भी अचिंत्य है। कुलटा अंजना मेरे कुलको कलंकित करनेहीके लिए मेरे घर आई है। परन्तु उसका लेश भी—श्वेत वस्त्रकी भाँति घरको दूषित करता है। "

राजा इस तरह सोच रहा था, इतनेहीमें उसका नीति-वान पुत्र 'प्रसन्नकीर्ति' अप्रसन्न होकर कहने लगा:—"इस दुष्टाको इसी समय यहाँसे निकाल दो। उस दुष्टाने

[1] एक प्रकारका साँप।

अपने कुलको दूषित किया है। सर्पकी डसी हुई अंगुली को क्या बुद्धिमान काट नहीं डालते हैं ? ”

उस समय ‘ महोत्साह ’ नामक मंत्री बोला:–“ कन्याओंको, जब उनकी सासुओंकी तरफसे दुःख मिलता है, तब उनके पितृ-गृहका ही उनको आश्रय मिलता है। हे प्रभो! यह भी संभव है कि, उसकी सासूने क्रूर बन कर उस पर मिथ्या दोष लगाया हो और उसको घरसे निकाला हो। इस लिए जबतक उसका दोषी या निर्दोषी होना निश्चित न हो जाय, तबतक गुप्त रीतिसे उसका पालन कीजिए; अपनी कन्या समझ कर उस पर इतनी कृपा कीजिए। ”

राजाने कहा:—“ सासुएँ तो सभी जगह पर ऐसी ही हुआ करती हैं; मगर बहुओंका ऐसा चरित्र कहीं नहीं देखा गया। हम यह तो पहिले ही सुन चुके हैं कि, पवनंजय अंजनाको नहीं चाहता था; अंजनासे उसका स्नेह नहीं था। फिर पवनंजयसे उसके गर्भ रह जाना कैसे संभव है ? इस लिए वह सर्वथा दोषी है। उसकी सासूने अच्छा ही किया कि, उसको घरसे निकाल दिया। यहाँसे भी उसको इसी समय निकाल दो। मैं उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता। ”

राजाकी ऐसी आज्ञा पाते ही पहरेदारने अंजनाको वहाँसे निकाल दिया। अंजना दीन होकर आक्रंदन

करती हुई वहाँसे चल दी। उसकी दुर्दशाको लोग दुखी होकर देखने लगे।

क्षुधातृषासे पीडित, थकी हुई; निःश्वास डालती हुई आँसू बहाती हुई; दर्भसे बिंधे हुए पैरसे जो रक्त निकल रहा था उससे भूमिको रँगती हुई; दो दो कदम चलकर पड़ती हुई और वृक्ष वृक्षपर ठहर कर विश्राम लेती हुई, अंजना दिशाओं विदिशाओंको भी रुलाती हुई दासीके साथ चली जा रही थी।

जिस ग्राममें या नगरमें वह जाती थी, वहींसे वह निकाल दी जाती थी; क्यों कि वहाँ पहिलेहीसे राजपुरुषोंने जाकर ऐसा प्रबंध कर दिया था। इससे उसको किसी भी जगह रहनेको स्थान नहीं मिला।

अंजनाका पूर्वभव।

भटकती हुई अंजना एक भारी वनमें जा पहुँची। वहाँ पर्वत श्रेणीके बीच एक वृक्षके नीचे बैठी और विलाप करने लगीः—" हाय! मैं कैसी मंद भाग्या हूँ कि, गुरुजनोंने भी मुझको, अपराधकी जाँच किये विना दंड दे दिया। हे सासू केतुमती! तुमने अच्छा किया कि, अपने कुलमें कलंक न लगने दिया। हे पिता! संबंधीके भयसे आपने भी अच्छा सोचा। दुःखित स्त्रियोंके लिए माताएँ आश्वासन स्थान होती हैं; परन्तु माता! तुमने भी पतिकी इच्छाका अनुसरणकर मेरी उपेक्षा की। हे भाई!

पिताके जीते हुए तेरा कुछ दोष नहीं है। हे प्राणनाथ! एक आपके दूर होनेसे सबलोग मेरे शत्रु हो गये। हे सर्वथा पति विहीना! तू एक दिन भी जीवित मत रहना; जैसे कि मैं मंद भाग्य-शिरोमणि अब तक जीवित हूँ।"

इस भाँति विलाप करती हुई अंजनाको उसकी सखीने समझाया। वह शान्त हुई। फिर दोनों वहाँसे आगे चलीं।

चलतेहुए गुफामें उन्होंने एक 'अमितगति' नामके मुनिको ध्यान करते देखा। उन 'चारण श्रमण' मुनिको नमस्कार करके विनय पूर्वक दोनों उनके पास बैठ गईं। मुनिने भी ध्यान समाप्त किया और–अपना दाहिना हाथ ऊँचाकर मनोरथ पूर्ण और कल्याण कर्ता; आनंद देनेमें धाराके समान 'धर्मलाभ' रूपी–आशीर्वाद दिया।

वसंत तिलकाने भक्तिसे फिर नमस्कारकर प्रारंभसे अन्त तक अंजनाका सारा दुःख मुनिसे कह सुनाया और पूछा कि—"अंजनाके गर्भमें कौन है? किस कर्मके उदयसे अंजना ऐसी स्थितिमें पहुँची है?"

मुनिने उत्तर दियाः—"इस भरतक्षेत्रमें 'मंदर' नामका नगर है। उसमें प्रियनंदी नामका एक वणिक रहता था। उसकी 'जया' नामा स्त्रीकी कूखसे चंद्रके समान कलाओंका निधि–भंडार–और दम (इन्द्रिय दमन) प्रिय, 'दमयंत' नामका एक पुत्र हुआ। एकवार वह उद्यानमें क्रीडा करने गया। वहाँ उसने स्वाध्याय-ध्यानमें

लीन एक मुनिराजके दर्शन किये। उसने उनके पाससे शुद्ध बुद्धिसे धर्म सुना। उसको प्रतिबोध लगा जिससे उसने सम्यक्त्व व विविध प्रकारके नियम ग्रहण किये।

तबहीसे उसने मुनियोंको योग्य और अनिंदित दान देना प्रारंभ किया। वह तप और संयममें ही एक निष्ठा रखता था, इस लिए वह कालक्रमसे मरकर दूसरे कल्पमें—देवलोकमें—परमार्द्धिक देवता हुआ। वहाँसे चवकर—आकर—जंबुद्वीपमें मृगांकपुरके राजा 'वीरचंदकी' भार्या प्रियंगु लक्ष्मीके गर्भसे पुत्र रूपसे जन्मा, और 'सिंहचंद्रके' नामसे प्रसिद्ध हुआ, फिर वह जैन धर्मको स्वीकार, पाल, क्रमयोगसे मरकर देव हुआ। वहाँसे चवकर इस वैताढ्य गिरिपर एक 'वरुण' नामका नगर है; उसमें 'सुकंठ' राजाकी राणी 'कनकोदरीके' गर्भसे 'सिंह वाहन' नामक पुत्र हुआ। बहुत दिनोंतक राज्य कर 'श्री विमलनाथ' प्रभुके तीर्थमें 'लक्ष्मीधर' मुनिके पाससे उसने व्रतग्रहण किया—दीक्षा ली। दुष्कर तपस्या-कर, मृत्युको पा वह लांतक देवलोकमें देवता हुआ। अब वहाँसे चवकर वह तेरी सखी अंजनाके उदरमें आया है। यह पुत्र गुणोंका स्थान, महा पराक्रमी, विद्याधरोंका राजा, चरमदेही और पाप रहित मनवाला होगा।

अब तू अपनी सखीके पूर्व भव सुन। 'कनकपुर' नगरमें 'कनकरथ' नामक राजा था। वह सब महारथि-

योंमें शिरोमणि था। उसके 'कनकोदरी' और 'लक्ष्मीवती' नामा दो पत्नियाँ थीं; उनमें लक्ष्मीवती अत्यंत श्रद्धालु श्राविका थी। वह अपने गृह-चैत्यमें रत्नमय जिनबिंब स्थापित कर दोनों समय—सुबे शाम—उनकी पूजा वंदना किया करती थी।

उससे कनकोदरी ईर्ष्या रखती थी। उसने एकवार जिनबिंब चुराकर अपवित्र कचरेमें छिपा दिया। उस समय 'जयश्री' नामा एक आर्जिका—गुरणी—विहार करती हुई वहाँ आई। उसने कनकोदरीको प्रतिमा छिपाते हुए देख कर कहाः—"हे भली स्त्री! तूने यह क्या किया? भगवंतकी प्रतिमाको यहाँ डालकर, तूने अपने आत्माको संसारके अनेक दुःखोंका पात्र क्यों बनाया?"

जयश्री साध्वीकी बातसे कनकोदरीको पश्चात्ताप हुआ। उसने तत्काल ही प्रतिमाको वहाँसे निकाल लिया और शुद्ध कर, क्षमा माँग जिस स्थानसे लाई थी वहीं उसको वापिस ले जाकर रख दिया। उसी दिनसे वह सम्यक्त्व धारिणी बन जैन धर्म पालने लगी। अनुक्रमसे आयुष्य पूर्ण कर मृत्यु पा सौधर्म देवलोकमें देवी हुई। वहाँसे चवकर वह, महेंद्र राजाकी पुत्री अंजना—तेरी सखी—हुई है। इसने पहिले भवमें अर्हतकी प्रतिमाको दुःस्थानमें रक्खा था उसीका यह फल इसको मिला है। तू भी उस भवमें

इसके दुष्कर्ममें मदद देनेवाली और अनुमोदन कर्ता थी इस लिए इसके साथ तू भी दुःख उठा रही है।

मगर उस दुष्ट कर्मका फल तुम लोगोंने प्रायः भोग लिया है। अब तुम भवमें सुख देनेवाले जिन धर्मको धारण करो। इस अंजनाका मामा अकस्मात आकर इसको लेजायगा और थोड़े दिनोंमें इसके पतिके साथ भी इसकी भेट हो जायगी।"

इस तरह अंजनाका पूर्व भव बता; उसको दासी सहित जिनधर्ममें स्थापित कर, मुनि गरुडकी भाँति आकाशमें उड़ गये। इतनेहीमें उन्होंने एक सिंहको वहाँ आते हुए देखा। अपनी पूँछके फटकारनेसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह पृथ्वीको फाड़ना चाहता है। अपनी गर्जनाकी ध्वनिसे वह दिशाओंको पूरित कर रहा था। हाथियोंके रुधिरसे वह विकाल था; उसके नेत्र दीपकके समान उज्वल थे; उसकी डाढ़ें वज्रके समान दृढ़ थीं; उसके दाँत करोतके समान तीखे-क्रूर-थे; उसकी केशर, अग्निज्वालाके समान थी; उसके नाखून लोहके खीलोंके समान थे और उसका उरस्थल शिलाके तुल्य था।

ऐसे सिंहको देखकर दोनों स्त्रियाँ नीची आँखें करके काँपने लगीं—मानोवह भूमिमें घुसजाना चाहती हैं—और भयभीत हरिणीकी भाँति निस्तब्ध हो गईं। उसी समय उस गुफाके स्वामी 'मणिचूल' नामके गंधर्वने अष्टापद

प्राणीका रूप धारण कर उस सिंहको मार डाला। फिर वह अपना असली रूप धारण कर, अंजना और वसंततिलकाको प्रसन्न करनेके लिए, अपनी प्रिया सहित जिन-गुणगायन करने लगा। उसके बाद उन्होंने उसका साथ नहीं छोड़ा। दोनों उसी गुफामें रहने लगीं और वहीं मुनिसुव्रत प्रभुकी प्रतिमा स्थापन कर उसकी पूजा करने लगीं।

अंजनाका अपने मामाके साथ जाना।

समय आनेपर सिंहनी जैसे सिंहको जन्म देती है, वैसे ही चरणमें वज्र, अंकुश और चक्रके चिन्हवाले पुत्रको अंजनाने जन्म दिया। वसंतलिकाने हर्षित होकर, अन्न जलादि ला, उसका प्रसूति कर्म कराया।

उस समय पुत्रको उत्संगमें–गोदमें–लेकर दुखी अंजना आँखोंमें आँसू भर, उस गुफाको रुलाती हुई विलाप करने लगी–"हे महात्मा पुत्र! ऐसे घोर वनमें तेरा जन्म होनेसे, मैं पुण्यहीना दीन स्त्री तेरा जन्मोत्सव कैसे मनाऊँ?"

इसको विलाप करती देखकर एक 'प्रतिसूर्य' नामा खेचरने उसके पास आकर, मीठे शब्दोंसे उसके दुःखका कारण पूछा। दासी वसंततिलकाने, आँखोंमें आँसू भरके, अंजनाके विवाहसे लेकर पुत्रजन्म तककी

सब बातें कह सुनाईं। सुनकर उसकी आँखोंमें भी आँसू आगये। वह बोलाः—

"हे बाला! मैं हनुपुरका राजा हूँ। मेरे पिताका नाम 'चित्रभानु' और माताका नाम सुंदरीमाला है। 'मानसवेगा' नामा तेरी माताका मैं भाई हूँ। सद्भाग्यसे तुझको जीवित देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है। अब तू किसी प्रकारकी चिन्ता न कर।"

उसको अपना मामा समझकर अंजना अधिकाधिक रोने लगी। 'इष्ट-संबंधियोंको देखकर दबा हुआ दुःख प्रायः पुनः उत्पन्न हो जाता है।'

रोती हुई देखकर प्रतिसूर्यने उसको, नाना प्रकारके आश्वासन देकर, रोनेसे रोका; फिर अपने साथ आये हुए किसी दैवज्ञ (जोषी) से उसने उसके जन्मके विषयमें पूछा। जोषीने उत्तर दियाः—"यह बालक शुभग्रह, बलवाले, लग्नमें जन्मा है; इससे बड़ा भारी पुण्यवान राजा होगा और इसी भवमें सिद्ध पदवी पावेगा।

आज चैत्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथी है और रविवारका दिन है। सूर्य उच्चका होकर मेष राशीमें पड़ा है; चंद्रमा मकरका होकर मध्य भवनमें स्थित है; मंगल मध्यम होकर वृष राशिमें आया है; बुद्ध मध्यतासे मीन राशीमें बैठा है; गुरु उच्चका हो कर कर्क राशीमें सथा है; शनि भी मीन

राशीमें है; मीन लग्नका उदय है और ब्रह्मयोग है इस लिए सब तरहसे शुभ है ।

तत्पश्चात् प्रतिसूर्य अपनी भानजीको उसके पुत्र और सखि सहित अपने, उत्तम विमानमें बिठाकर निज नगरकी ओर ले चला । विमान चला जा रहा था । विमानकी छतमें एक रत्नमय झूमका लटक रहा था । उसको लेनेकी इच्छासे बालक माताकी गोदमेंसे उछला । विमानमेंसे निकलकर वह नीचे पर्वत पर जागिरा, मानो आकाशसे वज्र गिरा है । उसके आघातसे उसपर्वतका चूरा हो गया । पुत्रके गिरनेसे अंजना हाहाकार कर रोने लगी और छाती पीटने लगी । रुदनके प्रतिरवसे—शब्दसे: पर्वतकी गुफाओंसे जो शब्द निकलते थे, उनसे ऐसा मालूम होता था कि, अंजनाके साथ गुफाएँ भी रो रही हैं । प्रतिसूर्य तत्काल ही उसके पीछे गया और उस अक्षतवीर्यको, उठा कर नाश पाये हुए धनकी भाँति, उसने वापिस अंजनाको सौंप दिया ।

फिर मनके समान वेगवाले विमान द्वारा प्रतिसूर्य आनन्दोल्लास—उत्सव—पूरित अपने हनुपुर नगरमें पहुँच गया । अंजना अंतःपुरमें पहुँचाई गई । सब रानियोंने अंजनाकी कुल देवीकी भाँति पूजा की ।

जन्मते ही बालक हनुपुर ग्राममें आया था, इस लिए अंजनाके मामाने उसका नाम ‘ हनुमान ’ रक्खा । विमा-

नमेंसे गिरने पर उसके शरीरके आघातसे पर्वतका चूरा होगया, इस लिए उसका दूसरा नाम श्रीशैल हुआ ।

मानस सरोवरके कमलवनमें राजहंसका शिशु जिस भाँति वृद्धिंगत होता है उसी भाँति, हनुमान सुख पूर्वक क्रीडा करता हुआ बड़ा होने लगा । अंजना यह विचार करती हुई शल्य रहित व्यक्तिकी भाँति अपने दिन बिताने लगी कि–केतुमतीने जो दोष लगाया है, उसकी किस भाँति निवृत्ति हो ।

अंजनाकी शोधके लिए पवनंजयका प्रयाण ।

उधर रावणकी मदद पर गये हुए पवनंजयने वरुणके साथ संधि करके खर दूषणको छुड़ाया; और रावणको संतुष्ट किया । रावण सपरिवार लंकामें गया । पवनंजय उसकी सम्मति ले अपने नगरमें आया ।

वह माता पिताको प्रणाम कर अंजनाके महलमें गया । वहाँ जाकर उसने महलको, ज्योत्स्नाहीन चंद्रमाकी भाँति, अंजना विहीन निस्तेज–शून्य देखा । वह दुखी हुआ । उसने वहाँ एक दासीसे पूछाः—" अंजनके समान आँखोंको सुखी करनेवाली मेरी अंजना कहाँ है ? "

उसने उत्तर दियाः—" आपने रण-यात्रा की । पीछेसे कुछ दिन बाद अंजनाको गर्भवती देख, गर्भको दूषित समझ, केतुमतीने उसको घरसे निकाल दिया । उन्हींकी

आज्ञासे पापी सेवक हरिणीकी भाँति भयाकुल उस बालाको महेन्द्र नगरके समीप वाले जंगलमें छोड़ आये।"

यह सुनते ही कबूतरकी भाँति अपनी प्रियासे मिलनेको उत्सुक हो पवनंजय पवन वेगसे अपने सुसरालके नगरमें गया। मगर वहाँ भी उसको प्रिया न मिली।

तब उसने एक स्त्रीसे पूछाः—" यहाँ मेरी प्रिया आई थी या नहीं ? "

उस स्त्रीने उत्तर दियाः—" हाँ, वह अपनी दासी वसंततिलका सहित यहाँ आई थी; मगर उसपर व्यभिचारका दोष था, इस लिए उसको पिताने भी निकाल दिया।"

वज्रकी चोटसे जैसे आघात लगता है, वैसा ही आघात दासीके वचनसे उसके हृदयमें लगा। वह वहाँसे प्रियाकी खोजमें रवाना हो गया और वन वनमें भटकने लगा।

किसी भी स्थान पर जब अंजनाका पता नहीं लगा; तब शापभ्रष्ट देवकी भाँति उसने अपने मित्र प्रहसितसे कहाः—" हे मित्र! तू मेरे मातापितासे कहना कि, सारी पृथ्वी छान डाली तो भी अबतक अंजनाका कहीं पता नहीं मिला। अब फिरसे वनमें जाकर उस बिचारीकी शोध करूँगा। यदि वह मिल जायगी तो ठीक है, अन्यथा मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा।"

पवनंजयके कहनेसे प्रहसित तत्काल ही आदित्यपुरमें

गया और प्रह्लाद और केतुमतीको सारा वृत्तान्त कह सुनाया । सुनकर पाषाण-आघातित हृदयकी भाँति उस वृत्त रूपी आघातसे पीडित हो, केतुमती मूर्च्छित होकर पृथ्वी-पर गिर गई । थोड़ी वारके बाद उसको चेत हुआ । वह बोलीः—" हे कठोर हृदयी प्रहसित ! मरनेका निश्चय करनेवाले अपने प्रिय मित्रको अकेला छोड़ कर तू यहाँ कैसे आया ? हाय ! मुझ पापिनीने विना विचारे अंजनाके तुल्य वास्तविक निर्दोष स्त्रीको घरसे निकाल कर कैसा बुरा कार्य किया ? उस साध्वी पर मैंने मिथ्या दोष लगाया उसका मुझको यहीं पूरा फल मिल गया । सत्य है—

'अत्युग्र पुण्यपापानामिहैव ह्याप्यते फलम् ।'

(अति उग्र पाप और पुण्यका फल मनुष्योंको यहीं मिल जाता है ।)

पवनंजय और अंजनाका सम्मेलन ।

रुदन करती हुई केतुमतीका निवारण कर, प्रह्लाद पवनंजयकी खोजमें चला । जैसे कि—पवनंजय अंजनाकी खोजमें गया था । अपने मित्र विद्याधर राजाओंके पास भी प्रह्लादने दूत भेजकर पवनंजय और अंजनाकी खोज करानेकी बात कहला दी ।

प्रह्लाद अनेक विद्याधरोंको साथ लेकर अपने पुत्र और पुत्रवधूकी खोज करता हुआ भूतवन नामा वनमें गया । वहाँ जाकर उसने पवनंजयको देखा । देखा—

पवनंजय एक चिता चुन रहा है। चिताके चुन जानेपर वह उसके पास खड़ा हो गया और बोलाः—

"हे वनदेवताओ! विद्याधरोंके राजा प्रह्लादका, मैं पुत्र हूँ, माता मेरी केतुमती है, अंजना नामा महा सती मेरी पत्नी थी। विवाह होनेके बादहीसे मैंने दुर्बुद्धिके उदयसे, उस निर्दोष स्त्रीको सताया था। उसको छोड़ कर स्वामीका कार्य करनेके लिए मैं रणयात्राको जा रहा था। रास्तेमें दैवयोगसे मेरी बुद्धि फिरी। मैंने उसको निर्दोष समझा, इस लिए मैं वहाँसे वापिस लौटकर रातको, उसके पास गया।

फिर उसके साथ स्वच्छंदतासे क्रीडा कर; रवाना होते समय अपने आनेकी निशानी स्वरूप मुद्रिका उसको दे; मातापिताको खबर किये विना ही, जैसे चुपकेसे आया था वैसे ही, पुनः सेनामें लौट गया।

उसी दिन उसके गर्भ रहा। मेरे दोषके कारण, मेरे मातापिताने उसको दूषित समझकर घरसे निकाल दिया। मालूम नहीं कि वह अब कहाँ है? वह पहिले भी निर्दोष ही थी और अब भी है। मगर मेरी अज्ञानतासे वह भयंकर दशाको प्राप्त हुई है। धिक्कार है! मेरे समान पतिको धिक्कार है!

उसकी शोधके लिए मैं सारी पृथ्वीमें भटका, मगर जैसे रत्नागर सागरमें मन्द भागीको रत्न नहीं मिलता,

वैसे ही वह मुझको न मिली । सदा जीवित रहकर विरहानलमें जलते रहना मैं सहन नहीं कर सकता, इसी लिए आज चितामें प्रवेश कर एक ही वार जल लेता हूँ ।

हे देवताओ ! यदि तुम मेरी कान्ताको कहीं देखो तो उसे कह देना कि, तेरे वियोगमें तेरे पतिने अग्निमें प्रवेश किया है । "

इतना कह, धूधू करके जलती हुई अग्नि-चितामें गिरने के लिए पवनंजय उछलने लगा। प्रह्लाद अबतक सब कुछ देख सुन रहा था । जैसे ही पवनंजयने उछल कर चितामें कूदना चाहा वैसे ही प्रह्लादने जाकर उसको पकड़ लिया और अपनी छातीसे दबा दिया ।

पवनंजय चिल्ला उठा–" प्रियाके वियोगपीडाकी औषध रूप मृत्युमें यह क्या विघ्न आया? किसने आकर शान्ति प्राप्त करनेमें वाधा डाली ? "

आँखोंमें आँसू लाकर प्रह्लादने उत्तर दिया:—" पुत्रवधूको घरसे निकाल देनेकी बातको उपेक्षा बुद्धिसे देखनेवाला यह तेरा पापी पिता प्रह्लाद है । हे वत्स ! तेरी माताने पहिले एक अविचारी कार्य किया है । अब तू भी बुद्धिमान होकर उसी तरहका दूसरा कार्य न कर । स्थिर हो । हे वत्स! तेरी पत्नीकी शोधके लिए मैंने हजारों विद्याधर भेजे हैं । अतः उनके लौट आनेकी राह देख । "

प्रह्लादने जिन विद्याधरोंको, पवनंजय और अंजनाकी

शोधके लिए भेजे थे, उनमेंके कुछ विद्याधर हनुपुरमें भी गये। उन्होंने वहाँ प्रतिसूर्य और अंजनाको खबर दी कि-पवनंजयने अंजनाके विरह दुःखसे दुःखी होकर अग्निमें प्रवेश करनेकी प्रतिज्ञा की है।

यह खबर सुन, मानो किसीने जहरका प्याला पिलाया है ऐसे 'हाय! मै मारी गई' चीतकार कर, अंजना मूर्छित हो गई। चंदनके जलके मुखपर छींटे लगाने और पंखेसे पवन डालने, पर उसको वापिस होश आया।

वह उठ बैठी और दीनमुख हो, रोने और विलाप-करने लगीः—"पतिव्रता स्त्रियाँ पतिके लिए अग्निमें प्रवेश करती हैं; क्योंकि पतिविना उनका जीवन शून्य हो जाता है। मगर जो श्रीमंत पति हैं, हजारों स्त्रियोंके भोक्ता हैं, उनको तो प्रियाका शोक क्षणिक ही होना चाहिए। ऐसा होने पर भी वे क्यों अग्निमें प्रवेश करने लगे हैं? हे नाथ! मेरे लिए-मेरे विरहके कारण-आप अग्निमें प्रवेश करें और आपके विरहमें मैं चिरकालतक जीवित रहूँ; यह कितना विपरीत है?

हा! जाना। वे महान सत्वधारी हैं और मैं अल्प सत्व-वाली हूँ। उनमें और मुझमें नीलमणि और काचके जितना अन्तर है। इसमें मेरे सासू सुसरेका या माता पिताका कुछ भी दोष नहीं है। मैं ही मंद भाग्या हूँ; सब मेरे ही कर्मोंका दोष है।"

अंजनाको समझा, उसको रोनेसे रोक, हनुमानसहित उसको साथमें ले, प्रतिसूर्य पवनंजयकी खोजमें चला। वह भी फिरता फिरता भूतवनमें पहुँचा। प्रहसितने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसको आते देखा। उसने तत्काल ही जाकर प्रह्लाद और पवनंजयको, अंजना सहित प्रतिसूर्यके आनेकी खबर दी।

प्रतिसूर्य और अंजनाने, दूरहीसे विमानमेंसे उतरकर प्रहलादको प्रणाम किया। पास आनेपर प्रतिसूर्यसे प्रहलाद बाथ भरके मिला; फिर वह अपने पोते हनुमानको गोदमें ले-हर्षोत्फुल्ल हो बोलाः—" हे भद्र प्रतिसूर्य! मैं दुःख समुद्रमें अपने कुटुंब सहित डूबता था। तुमने मुझको बचा लिया। इसलिए तुम मेरे सब संबंधियोंमें अग्रसर हो; बंधु हो। परंपरागत वंशवृक्षकी शाखा-सन्तति-की कारण भूत मेरी पुत्रवधूकी-जिसको मैंने विनाही दोष घरसे निकाल दिया था—तुमने रक्षाकी यह बहुत ही श्रेष्ठ किया।

पवनंजय अंजनाको देखकर दुःखसे निवृत्त होगया; जैसे कि समुद्रका ज्वारभाटा निवृत्त हो जाता है। शोकाग्नि शान्त होजानेसे उसका हृदय बहुत प्रफुल्लित हुआ। सारे विद्याधरोंने आनंदसागरमें चंद्ररूप बहुत बड़ा उत्सव किया। पीछे वे सब ही प्रसन्नता पूर्वक हनुपुरमें गये; चलते हुए उनके विमान, पृथ्वीपर खड़े हुए मनुष्योंको ऐसे

प्रतीत होते थे, मानो तारोंकी पंक्ति चली जा रही है। महेन्द्र राजा भी मानसवेगा सहित वहाँ गया और केतुमती देवी व अन्यान्य संबंधी भी वहाँ जा पहुँचे। एक दूसरेके संबंधी और बंधुरूप वहाँ गये हुए विद्याधर राजाओंने आपसमें मिलकर बहुत बड़ा-पहिलेसे भी अच्छा-उत्सव किया। फिर सारे विद्याधर परस्पर रुख्सत लेकर अपने अपने नगरों को गये! पवनंजय अपनी प्रिया अंजना और पुत्र हनुमान सहित वहीं रहा।

हनुमानका वरुणको हराना।

कुमार हनुमानने पिताकी इच्छानुकूल पालित पोषित होकर सारी कलाएँ और विद्याएँ साध लीं। शेषनागके समान लंबी भुजाओं वाला; शस्त्रास्त्रोंमे प्रवीण और सूर्यके समान कांतिवान हनुमान क्रमशः यौवनावस्थाको प्राप्त हुआ।

उस समय क्रोधियोंमें श्रेष्ठ और बलके पर्वत समान रावण संधिमें कुछ दूषण निकाल करके वरुणको जीतनेके लिए चला। आमंत्रित विद्याधर वैताढ्य गिरिके कटकके समान कटक तैयार करके उसकी सहायतार्थ जानेको तैयार हुए। पवनंजय और प्रतिसूर्य भी वहाँ जानेको तैयार हुए। तब आधारके लिए गिरिके समान हनुमानने कहाः—"हे पिताओ! आप दोनों यहीं रहो मैं अकेला ही सब शत्रुओंको जीत लूँगा। कहा है कि—

'प्रहरेद्बाहुना को हि तीक्ष्णे प्रहरणे सति।'

(तीक्ष्ण हथियार पासमें होते हुए भुजाओंसे कौन युद्ध करेगा ?) मैं बालक हूँ, ऐसा सोचकर मुझपर अनुकंपा न कीजिए । क्योंकि अपने कुलमें जन्में हुए पुरुषोंको जब बल दिखानेका अवसर आता है तब उनकी आयुका प्रमाण नहीं देखा जाता है । ”

बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने हनुमानको युद्धमें जानेकी आज्ञा दी । उन्होंने हनुमानके मस्तकका चुंबन लिया । फिर उसने अपने बड़ोंको प्रणामकर प्रस्थान-मंगल किया ।

दुर्जय पराक्रमी हनुमान बड़े २ सामंतों, सेनापतियों और सैनिकों सहित रावणकी छावनीमें गया । हनुमानका आना रावणको ऐसा ज्ञात हुआ मानो साक्षात विजय ही आई है । हनुमानने जाकर रावणको प्रणाम किया । रावणने हर्ष और स्नेहके साथ उसको अपनी गोदमें बिठा लिया ।

पश्चात रावणने वरुणकी नगरीके बाहिर जाकर युद्धके बाजे बजवाये । वरुण भी युद्धका आह्वाहन जान अपने सौ पुत्रों सहित युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहिर आया ।

युद्ध प्रारंभ हुआ । वरुणके पुत्र रावणके साथ युद्ध करने लगे और वरुण सुग्रीव आदि वीरोंके साथ युद्ध करने लगा । महान पराक्रमी और रक्तनेत्री वरुणके पुत्रोंने रावणको घबरा दिया, जैसे कि जातिवान कुत्ते, सूअरोंको घबरा देते हैं ।

यह देखकर गजेंद्रोंके सामने जैसे केसरी–किशोर आता है, वैसे ही क्रोधसे दुर्द्धर बना हुआ दारुण हनुमान सामने आया और उसने अपनी विद्याके बलसे वरुणके पुत्रोंको पशुओंकी भाँति बाँध लिया।

अपने पुत्रोंको बँधे देख मार्गके वृक्षोंको जैसे वायु कँपा देता है, वैसे ही सुग्रीव आदि योद्धाओंको कँपाता हुआ वरुण हनुमानके ऊपर दौड़ गया।

उसको आते देख हनुमानने बाणवर्षा कर उसको बीचहीमें रोक दिया। जैसे कि नदीके वेगको पर्वत रोक देता है। इतनेहीमें रावण उसके पास पहुँच गया। दोनोंमें बड़ी देरतक, जैसे बैलके साथ बैल और हाथीके साथ हाथी लड़ता है वैसे, लड़ाई होती रही। अन्तमें छलके जानने वाले रावणने अपने पूरे छल, बलसे वरुणको व्याकुल कर दिया और फिर उछलकर, जैसे 'इन्द्र' को पकड़ा था वैसे ही उसने वरुणको भी पकड़ लिया। कहा है कि:—

'सर्वत्र बलवच्छलम्।'

(सब स्थानोंमें छल ही बलवान है।)

फिर जयनादसे दिशाओंके मुखोंको शब्दायमान करता हुआ, विशाल कंधवाला रावण अपनी छावनीमें गया। वरुणने पुत्रों सहित आधीन रहना स्वीकार किया; इस लिए रावणने उनको छोड़ दिया। कहा है कि:—

' ....प्रणिपातांतः प्रकोपो हि महात्मनाम् । '

(महात्माओंका कोप प्रणिपात पर्यंत ही रहता है ।)

अपनी आँखोंसे जिस पुरुषका पराक्रम देखा है, ऐसा जँवाई मिलना कठिन समझ, वरुणने अपनी ' सत्यवती ' नामकी कन्या हनुमानको ब्याह दी ।

रावण वहाँसे लंकामें आया । उसने भी प्रसन्नतापूर्वक, अपनी बहिन चंद्रनखा (सूर्पनखा) की पुत्री ' अनंगकुसुमा ' हनुमानको दे दी । सुग्रीवने ' पद्मरागा, ' नलने ' हरिमालिनी ' और दूसरोंने भी अपनी हजारों कन्याएँ हनुमानको दीं । रावणद्वारा हर्षोद्वेगसे दृढ़-आलिंगके साथ विदा किया हुआ पराक्रमी हनुमान हनुपुर गया । दूसरे वानरपति-सुग्रीव-आदि विद्याधर भी हर्ष सहित अपने अपने नगरोंको गये ।

सर्ग ४ था ।

राम लक्ष्मणकी उत्पत्ति, विवाह और वनवास ।

वज्रबाहुका दीक्षा ग्रहण करना ।

मिथिला नगरीमें हरिवंशका 'वासवकेतु' नामक राजा था। उसकी रानीका नाम 'विपुला' था। उनके पूर्ण लक्ष्मीवान और प्रजाका जनकके तुल्य जनक नामा एक पुत्र हुआ। अनुक्रमसे वह राजा बना।

उसी समयमें अयोध्या नगरीमें 'श्री ऋषभदेव' भगवानके राज्यके बाद इक्ष्वाकुवंशके अंतर्गत सूर्यवंशमें कितने ही राजा हो गये। उनमेंसे कितने ही मोक्षमें गये और कितने ही स्वर्गमें गये। उसी वंशमें जब बीसवें तीर्थंकरके तीर्थकी प्रवृत्ति हुई उस समय 'विजय' नामक राजा हुआ। उसके 'हेमचूला' नामकी एक प्रिया थी। उनके 'वज्रबाहु' और 'पुरंदर, नामके दो पुत्र हुए।

उसी कालमें नागपुरमें 'इभवाहन' नामका राजा था। उसकी राणी चूडामणिके गर्भसे 'मनोरमा' नामकी एक कन्या हुई थी।

मनोरमा युवती हुई तब वज्रबाहुने बड़े उत्साह और उत्सवके साथ उसका पाणिग्रहण किया; जैसे कि रोहिणीका चंद्र करता है।

वज्रबाहु मनोरमाको लेकर अपने नगरको चला। उदयसुंदर नामका उसका साला भी भक्ति और स्नेहसे उसके साथ गया। मार्गमें चलते हुए उन्होंने एक गुण सागर नामा मुनिको देखा। वे उदयाचलस्थ सूर्यकी भाँति, वसंतगिरिपर तप तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। तपस्या करते हुए मुनि ऊपरको देख रहे थे; ऐसा जान पड़ता था, मानो वे मोक्ष मार्गको देख रहे हैं।

मेघको देखकर जैसे मोर प्रसन्न होता है; वैसे ही मुनिको देखकर वज्रबाहु प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल ही अपना वाहन रोक दिया और कहा—"अहा! ये कोई महात्मा मुनि हैं; वंदना करने योग्य हैं। चिन्तामणि रत्नकी भाँति किसी बड़े पुण्यके उदयसे मुझको इनके दर्शन हुए हैं।"

यह सुनकर उसके साले उदयसुंदरने हँसीमें कहा:— "कँवर साहिब! क्या दीक्षा लेना चाहते हैं?"

वज्रबाहुने उत्तर दिया:—"हाँ मेरी ऐसी ही इच्छा है।"

उदय सुंदरने उसी भाँति हँसीमें कहा:—"हे राज कुमार! यदि इच्छा हो तो देर न करो मैं तुमको सहायता दूँगा।

वज्रबाहु बोला:—"देखो, जैसे समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता है, वैसे ही तुम भी अपनी प्रतिज्ञासे च्युत मत होना।"

उदय सुंदरने उत्तर दियाः—" बहुत अच्छा। "

मोहसे उतरते हैं वैसे ही वज्रबाहु वाहनसे उत्तर पड़ा, और उदय सुंदर आदि सहित वसंतशैलपर चढ़ा। उसका, दीक्षा लेनेका, दृढ़ विचार देख, उदयसुंदर बोलाः—" हे स्वामी ! आप दीक्षा न लीजिए। मेरे हँसी करनेको धिक्कार है। मैं तो दीक्षाकी बात केवल दिल्लगीमें कर रहा था। दिल्लगीमें कही हुई बातको तोड़ देनेमें कोई दोष नहीं है। प्रायः विवाहके गीतोंकी भाँति दिल्लगीमें की हुई बातें भी सत्य नहीं हुआ करती हैं। हमारे कुलवालोंको आशा है कि, तुम आपत्तिमें हमको सब तरहसे सहायता दोगे। दीक्षा लेकर हमारी उस आशाको नष्ट न करो। विवाह की निशानी रूपी मांगलिक कंकण भी अब तक तुम्हारे हाथमें बँधा हुआ है। विवाहसे प्राप्त होनेवाले भोगको तुम सहसा कैसे छोड़ देते हो ? हे स्वामी ! तुम्हारे दीक्षा लेनेसे मेरी बहिन मनोरमा सांसारिक सुख स्वादसे ठगा जायगी—सुख स्वादसे वंचित रहेगी। और जब तृणकी भाँति तुम उसका त्याग कर दोगे, तब वह जीवित कैसे रह सकेगी ? "

कुमार वज्रबाहुने कहाः—" हे उदयसुंदर ! मानव जन्म रूपी वृक्षका सुंदर फल चरित्र ही है। स्वाति नक्षत्रका जल जैसे सीपमें पड़कर मोतीका रूप धारण करता है वैसे ही, तुम्हारी हँसीके वचन भी मेरे लिए परमार्थ रूप

हुए हैं । तेरी बहिन मनोरमा यदि कुलवती होगी, भी मेरे साथ दीक्षा लेगी; नहीं तो उसका सांसारिक जीवन कल्याणकारी बनो । मुझे तो अब भोगसे कुछ मतलब नहीं है । अतः मुझे व्रत लेनेकी आज्ञा दे और मेरे पीछे तू भी व्रत ग्रहण कर । कहा है किः—

' कुल धर्मः क्षत्रियाणां स्वसंधापालनं खलु । '

(अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना ही क्षत्रियोंका कुल धर्म है ।)

इस भाँति उदयसुंदरको प्रतिबोध-शिक्षा-देकर वज्रबाहु गुणरूपी रत्नोंके सागर गुणसुंदर मुनिके पास गया। वहाँ जाकर तत्काल ही उसने मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली । उसके साथ ही उदयसुंदर, मनोरमा और अन्यान्य पचीस राजकुमारोंने भी दीक्षा ले ली ।

विजय राजाने सुना कि 'वज्रबाहुने दीक्षा ले ली है ।' उसने सोचा—वह बालक होने पर भी मुझसे श्रेष्ठ है और मैं वृद्ध हो गया तो भी (भोगोंमें लिप्त हूँ इस लिए) श्रेष्ठ नहीं हूँ । सोचते सोचते उसको वैराग्य उत्पन्न हो आया । इस लिए उसने भी अपने छोटे पुत्र पुरंदरको राज्य गद्दी दे कर निर्वाणमोह नामा मुनिके पाससे दीक्षा ले ली ।

समय आनेपर पुरंदरने भी अपनी ' पृथिवी ' नामा-

रानीकी कूखसे जन्मे हुए 'कीर्तिधर' नामके पुत्रको राज्य सौंपकर 'क्षेमंकर' मुनिके पाससे दीक्षा ले ली।

कीर्तिधर राजाका दीक्षा लेना।

कीर्तिधर राजा अपनी रानीके साथ विषयसुख भोगने लगा। जैसे कि इन्द्र इन्द्राणीके साथ भोगता है। एकवार उसके जीमें दीक्षा लेनेका विचार आया। इस लिए मंत्रियोंने उसको कहा:—

"जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है, तब तक व्रत लेना आपके लिए योग्य नहीं है। यदि आप पुत्र होनेके पहिले ही दीक्षा ले लेंगे, तो यह पृथ्वी अनाथ हो जायगी। इस लिए हे स्वामी! पुत्रके उत्पन्न होने तक आप ठहरिए—दीक्षा न लीजिए।"

मंत्रियोंके निवारण करनेसे कीर्तिधर राजा दीक्षा न लेकर गृहवासहीमें रहा। कुछ काल बीतनेके बाद उसकी सहदेवी रानीकी कूखसे 'सुकोशल' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र-जन्मके समाचार सुनते ही 'मेरे पति दीक्षा ले लेंगे यह सोचकर, सहदेवीने उस बालकको छुपा दिया। गुप्त रहने पर भी राजाको पुत्र-जन्मकी बात विदित हो गई। कहा है कि—

'प्रागोदयं हि तरणी तिरोधातुं क ईश्वरः।'

(उदित सूर्यको छिपानेका किसमें सामर्थ्य है?)

फिर स्वार्थ कुशल कीर्तिधर राजाने, सुकोशलको गद्दी-

पर बिठाकर ' विजयसेन ' मुनिके पाससे दीक्षा ले ली। तीव्र तपस्या करते हुए और अनेक परिसहोंको सहते हुए वह राजर्षि गुरुकी आज्ञा प्राप्त कर एकाकी विचरण करने लगा।

सुकोशल राजाका दीक्षा ग्रहण करना।

एक वार कीर्तिधर मुनि मासोपवासी होनेसे पारणाकी इच्छा कर साकेत–अयोध्या–नगरमें आये। मध्यान्हके समय वे भिक्षाके लिए फिरने लगे। राजमहलमें बैठी हुई सहदेवीने उनको देखा और सोचा—" पहिले इन्होंने दीक्षा ले ली इससे मैं पतिविहीना हुई। अब यदि सुकोशल इनको देख कर कहीं दीक्षा ले लेगा, तो मैं पुत्र विहीना हो जाऊँगी; और यह पृथ्वी स्वामी विनाकी हो जायगी। इस लिए इस राज्यकी कुशलताके लिए, ये मुनि मेरे पति हैं, व्रतधारी हैं और निरपराधी हैं तो भी, इनको नगरसे बाहिर निकलवा देना चाहिए।"

ऐसा सोचकर, सह देवीने दूसरे वेशधारियोंके पाससे उनको नगरसे बाहिर निकलवा दिया। कहा है कि—

' लोभाभिभूतमनसां विवेकःस्यात्कियच्चिरम्। '

(जिनका मन लोभसे पराजित हो जाता है–लोभके वशमें हो जाता है; उनको चिरकालतक विवेक नहीं रहता है।)

सहदेवीने अपने व्रतधारी स्वामीको नगरसे बाहिर

निकलवा दिया है; यह बात सुकोशलकी धायको ज्ञात हुई । वह दहाड़ें मार मारकर रोने लगी । राजा सुकोशलने उसको रोनेका कारण पूछा । उसने शोकयुक्त गद्गद स्वरमें उत्तर दियाः–" हे वत्स ! जब तुम बालक थे, तब तुम्हारे पिताने तुम्हें राज्यासनपर बिठाकर दीक्षा ली थी । वे अभी भिक्षाके लिए अपने नगरमें आये थे । उनको तुम्हारी माताने, यह सोचकर नगरसे बाहिर निकलवा दिया कि, कहीं तुम उन्हें देखकर दीक्षा न ले लो । इसी दुःखसे मैं रुदन कर रही हूँ । "

धायकी बात सुनकर, सुकोशलका हृदय विरक्त हो गया। वह उसी समय पिताके पास-कीर्तिधर मुनिके पास-गया और उनसे उसने हाथ जोड़कर दीक्षा ग्रहण करनेकी याचना की ।

उसकी पत्नी ' चित्रमाला ' उस समय गर्भिणी थी । वह मंत्रियोंसहित सुकोशलके पास गई और कहने लगीः– " हे स्वामी ! इस राज्यको छोड़कर अनाथ बना देना आपके लिए योग्य नहीं है । "

सुकोशलने उत्तर दियाः–" तेरे गर्भमें जो पुत्र है उसको मैंने राज्यका स्वामी बनाया है; क्योंकि ' भविष्यकालमें भी भूतकालका उपचार होता है । '

ऐसा कह, सबको ढारस बँधा, सुकोशलने, पिताके पाससे दीक्षा ले, कठोर तपस्या प्रारंभ की । ममता रहित,

कषायवर्जित ये–पिता, पुत्र–महामुनि हो, पृथ्वीतलको पवित्र करते हुए, एक साथ विहार करने लगे।

पुत्रवियोगसे सहदेवीको अत्यंत दुःख हुआ। इसलिए वह आर्तध्यानमें रत होकर मरी और किसी गिरिकंदरामें जाकर सिंहनी बनी।

कीर्तिधर और सुकोशल मुनिका मोक्षगमन।

मनको दमन करनेवाले; निज शरीरसे भी निस्पृह, और स्वाध्याय ध्यानमें तत्पर कीर्तिधर और सुकोशल मुनि, चातुर्मास निर्गमन करनेके लिए, एक पर्वतकी गुफामें स्थिर आकृति होकर रहे। चौमासा उतरा तब दोनों मुनि पारणाके लिए चले। मार्गमें जाते हुए यमदूतीके समान उस दुष्टा व्याघ्रीने उनको देखा। तत्काल ही वह व्याघ्री मुख फाड़कर सामने दौड़ आई।

'दूरादभ्यागमस्तुल्यो दुर्हृदां, सुहृदामपि।'

(दुहृद और सुहृदजनोंका दूरसे आना समान ही होता है।)

व्याघ्री पासमें आकर ऊपर गिरनेको तैयार हुई। मुनि वहीं कायोत्सर्ग कर, धर्मध्यानमें लीन हो गये। वह व्याघ्री पहिले विद्युतकी तरह सुकोशल मुनिपर पड़ी। उसने दूरसे दौड़कर आघात किया था इससे वे पृथ्वीपर गिर गये। उसने अपनी नखरूपी अंकुशसे उनके चमड़ेको चरसे फाड़ दिया। फिर वह मरुदेशकी पथिका–मुसाफिर–स्त्री जिस भाँति तृषार्त होकर पानी पीती है,

वैसे ही उनके रुधिरको पीने लगी; रंक स्त्री जैसे बालू खाती है, वैसे ही दाँतोंसे तड़ तड़ तोड़कर मांस खाने लगी और गन्नेको जैसे हथिनी पील डालती है, वैसे ही वह हड्डियोंको दाँतरूपी यंत्रका अतिथि बनाने लगी।

मुनिके हृदयमें लेशमात्र भी ग्लानि-विकारवृत्ति-उत्पन्न नहीं हुई। उल्टे वे सोचने लगे कि यह स्त्री मुझको कर्मक्षय करनेमें सहायता दे रही है। इस विचारसे उनका शरीर रोमांचित हो आया। सुकोशल मुनि व्याघ्रीके भक्षण बन केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें गये। उसी तरह कीर्तिधर मुनिनेभी केवल ज्ञान प्राप्त कर, अनुक्रमसे अद्वैत सुखके स्थानरूप परम पदको प्राप्त किया।

नघुषराजाका सिंहिकाको त्यागना; पुनः ग्रहण करना।

उधर सुकोशल राजाकी स्त्री चित्रमालाने एक कुलनंदन पुत्रको जन्म दिया। क्यों कि वह जन्महीसे राजा हुआ था इस लिए उसका नाम 'हिरण्यगर्भ' रक्खा गया। जब वह युवक हुआ तब मृगावती नामा एक मृगाक्षीके साथ उसका ब्याह हो गया। हिरण्यगर्भके मृगावती रानीसे 'नघुष' नामका पुत्र हुआ। वह मानो दूसरा हिरण्यगर्भ ही था।

एक वार हिरण्यगर्भने अपने सिरपर, तीसरी वयके-बुढ़ापेके—जामिन समान सफेद बालको देखा। इससे तत्काल ही उसको वैराग्य हो गया। अतः उसने नघुषको राज्य-

सिंहासनपर बिठाकर, 'विमल' मुनिके पाससे दीक्षा लेली।

नरोंमें सिंहके समान नघुष राजाके 'सिंहिका' नामा एक स्त्री थी। उसके साथ क्रीडा करते हुए नघुष अपने पिताका राज्य चलाने लगा।

एकवार नघुष सिंहिकाको अपने राज्यमें छोड़कर उत्तरापथके राजाओंको जीतनेके लिए गया। उस समय दाक्षिणापथके राजाओंने यह सोचकर अयोध्यापर चढ़ाई कर दी कि, अभी नघुष राज्यमें नहीं है। चलो हम उसका राज्य ले लें।

'छलनिष्ठा हि वैरिणः।'

(शत्रु सदा छल-निष्ठ ही होते हैं।)

सिंहिका राणीने पुरुषोंकी भाँति उनका सामना किया और उनको परास्त कर अपने राज्यसे निकाल दिया।

'किं सिंही हन्ति न द्विपान्?'

(क्या सिंहनी हाथियोंको नहीं मारती है?)

उत्तरापथके राजाओंको जीत कर नघुष वापिस अयोध्यामें गया। वहाँ जाकर उसने, सिंहिकाने दक्षिणापथके राजाओंको परास्त किया था सो बात सुनी। सुनकर वह सोचने लगाः—"मेरे जैसे पराक्रमीके लिए भी यह दुष्कर है; फिर इसने यह कार्य कैसे किया? इसमें स्पष्टतया रानीकी धृष्टता जान पड़ती है। महान कुलमें जन्मी हुई स्त्रियोंको ऐसा कार्य करना उचित नहीं है। जान

पड़ता है कि, यह स्त्री अवश्यमेव असती है। सती स्त्रियोंके लिए तो पति ही देव होता है, इस लिए जब वे पतिसेवाके सिवा दूसरा कोई कार्य ही नहीं जानती हैं, तब फिर ऐसा कार्य तो वे कैसे कर सकती हैं?" इस भाँति विचार कर, उसने खंडित प्रतिमाकी भाँति अपनी अतीव प्यारी पत्नी सिंहिकाका त्याग कर दिया।

एकवार नघुष राजाको दाहज्वर हो आया। वह सैकड़ों उपचार करने पर भी दुष्ट शत्रुकी भाँति शांत नहीं हुआ। उस समय सिंहिका अपना सतीपन बताने और पतिकी पीड़ाको शमन करनेके लिए जल लेकर उसके पास गई। और अपने सतीपनको प्रकट करती हुई बोली:-"हे नाथ! यदि मैंने आपके सिवा किसी अन्य पुरुषकी कभी भी इच्छा न की हो, तो आपका ज्वर मेरे जलके छींटनेसे इसी समय चला जाय।".

सिंहिकाने अपने साथ लाया हुआ जल छींटा। अमृतके छींटोंकी भाँति उसका प्रभाव हुआ। नघुष तत्काल ही ज्वरमुक्त हो गया। देवताओंने सती पर फूल बरसाये। राजाने भी उसी समय मान सहित पूर्ववत उसको स्वीकार कर लिया।

राजा सोदासका परम श्रावक बनना।

कितना ही समय बीत गया। फिर नघुषके सिंहिकाके उदरसे एक 'सोदास' नामका पुत्र जन्मा। वह जब योग्य

आयुका हुआ तब नघुष राजाने उसको गद्दीपर बिठाकर, सिद्धि-मोक्षकी उत्तम उपाय दीक्षाको ग्रहण कर लिया।

अट्ठाई महोत्सवके दिन आये । पूर्वकी भाँति ही मंत्रियोंने सोदासके राज्यमें भी 'अमारी घोषणा' करवा दी। उन्होंने सोदाससे भी कहाः-" हे राजन् ! आपके पूर्वज अर्हतोंके अट्ठाई महोत्सवमें माँस भक्षण नहीं करते थे, इस लिए आप भी न करना । "

सोदासने बात मान ली। मगर उसको मांस-भक्षण बहुत प्रिय था। इस लिए उसने अपने रसोईदारको आज्ञा दी कि, तुझको गुप्तरीत्या किसी जगहसे अवश्यमेव मांस लाना चाहिए। मगर अमारी घोषणाके कारण उसको कहींसे भी मांस नहीं मिला। आकाशसे फूल प्राप्त करनेकी आशाके समान; असत् वस्तु प्राप्तिकी इच्छाके समान; उसका प्रयत्न निष्फल गया ।

इतना फिरा तो भी मांस कहींसे नहीं मिला और राजाकी आज्ञा है कि, माँस लाना। अब मैं क्या करूँ ? ऐसा सोचते हुए रसोइया जा रहा था। इतनेहीमें उसने एक मरा हुआ बालक देखा । रसोईदारने उस बालकको, ले जा, उसका मांस बना, राजाको खिलाया । सोदासने उस मांसकी बहुत प्रशंसा की और उसको बहुत ही तृप्तिकर बतलाया ।

उसने रसोइयासे पूछाः-" मुझको यह मांस अपूर्व

भक्षित लगता है इस लिए बता कि यह मांस किस जीवका है ? ”

रसोईदारने उत्तर दियाः—“ यह नरमांस है ? ”

सोदासने उसको आज्ञा दी कि वह सदैव नरमांस ही लाकर उसको खिलाया करे। तत्पश्चात रसोइदारने प्रति दिन, राजाके लिए नगरके बालकोंका हरण करना आरंभ किया।

‘ न हि भीराज्ञया राज्ञामन्यायकरणेऽपि हि। ’

(अन्यायका कारण होनेपर भी राजाकी आज्ञा होने पर भय नहीं लगता है।)

इस भाँति दारुण कर्म करनेवाला समझ, मंत्रियोंने सोदासको राज्यभ्रष्ट कर दिया और जंगलमें हाँक दिया। जैसे कि घरमें पैदा हो जानेवाले सर्पको पकड़कर जंगलमें छोड़ देते हैं। और उसके पुत्र सिंहरथको राज्यासनपर बिठा दिया। सोदास नरमांस खाता हुआ, उच्छृंखल होकर, पृथ्वीमें भटकने लगा।

एकवार सोदासने पृथ्वीमें भटकते भटकते दक्षिणापथमें एक महर्षिको देखा। उसने उनसे धर्म पूछा। उसको उपदेश देने योग्य समझ उन महामुनिने, अर्हतधर्म–जिसमें मद्यमांस त्यागका मुख्यतया उपदेश दिया गया है– सुनाया। धर्म सुनकर सोदास चकित होगया और प्रसन्न

हृदयके साथ उसने उसी समय श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिए ।

उसी अरसेमें ' महानगरका ' राजा अपुत्री मर गया। वहाँ मंत्रीमंडल कृत पाँच दिव्योंद्वारा सोदासका अभिषेक हुआ इस लिए वह वहाँका राजा बनाया गया ।

सोदासने अपने पुत्र सिंहरथके पास एक दूत भेजा और उसको कहलाया कि, वह सोदासकी आज्ञा माने । मगर सिंहरथने दूतको, तिरस्कारकर, निकाल दिया। उसने आकर सोदासको जो बात बनी थी वह सुना दी ।

फिर सिंहरथने सोदासपर और सोदासने सिंहरथपर चढ़ाई की। मार्गमें दोनोंके सैन्य मिले । युद्ध प्रारंभ हुआ। अन्तमें सोदासने सिंहरथको पकड़ लिया । तत्पश्चात सोदास, सिंहरथको दोनों राज्य सोंप, साधु बन गया।

दशरथराजाका जन्म, राज्य और ब्याह ।

सिंहरथका पुत्र ब्रह्मरथ हुआ । उसके बाद क्रमसे, चतुरमुख, हेमरथ, शतरथ, उदयपृथु, वादिरथ, इन्दुरथ, आदित्यरथ, मानधाता, वीरसेन, प्रतिमन्यु, पद्मबंधु, रवि-मन्यु, वसंततिलक, कुबेरदत्त, कुंथु, शरभ, द्विरद, सिंहद-शन, हिरण्यकशिपु, पुंजस्थल, काकुस्थल और रघु आदि राजा हुए। उनमेंसे कितने ही मोक्षमें गये और कितने ही स्वर्गमें गये ।

तत्पश्चात साकेत नगरीमें शरणार्थीको शरण देने योग्य और स्नेहियोंके ऋणसे मुक्त रहनेवाला 'अनरण्य' नामा राजा हुआ। उसके पृथ्वीदेवीके उदरसे 'अनंतरथ' और 'दशरथ' नामके दो पुत्र हुए।

अनरण्यके 'सहस्त्रकिरण' नामका एक मित्र था, रावणके साथ युद्ध करते हुए उसको वैराग्य उत्पन्न हो गया; इसलिए उसने दीक्षा लेली। दृढ़मित्रताके कारण उसको भी वैराग्य उत्पन्न होगया। उसने भी एक महीनेके जन्मे हुए अपने छोटे पुत्र दशरथको राज्य गद्दीपर बिठा कर, अपने बड़े पुत्र सहित दीक्षा लेली। समय पाकर अनरण्य मुनि मोक्षमें गये और अनंतरथ मुनि तीव्र तपस्या करते हुए पृथ्वीपर विहार करने लगे।

क्षीरकंठ–दूधमुँहा–दशरथ बाल्यावस्थाहीमें राजा हुआ। उसके वय और पराक्रम एक साथ ही बढ़ते गये। इसलिए नक्षत्रोंमें चंद्रमा, ग्रहोंमें सूर्य और पर्वतोंमें मेरु जैसे सुशोभित होता है, वैसे ही वह भी अनेक राजाओंमें सुशोभित होने लगा।

जब दशरथने राज्य-कारोबार स्वयं चलाना प्रारंभ किया, तब परचक्रसे लोगोंको जो उपद्रव होते थे, वे आकाश-पुष्पकी भाँति अदृश्य होगये। वह याचकोंको उनकी इच्छानुसार द्रव्य आभूषण आदि देता था; इसलिए वह 'मद्यांग' आदि दशप्रकारके कल्पवृक्षोंके उपरांत ग्यार-

हवाँ कल्पवृक्ष गिना जाने लगा । अपने वंशपरंपरागत साम्राज्यकी भाँति आर्हतधर्मको–जैनधर्मको–भी वह सर्वदा अप्रमत्त–प्रमाद–रहित–होकर पालन करने लगा ।

दशरथ राजाने, जैसे युद्धस्थलमें जयश्रीको वरते हैं वैसे ही, दर्भस्थल' (कुशस्थल) नगरके राजा सुकोशलकी' भार्या 'अमृतप्रभाके' गर्भसे जन्मी हुई 'अपराजिता[1]' नामा रूपलावण्यवती एक पवित्र कन्याके साथ ब्याह किया ।

उसके बाद रोहिणीको चंद्र ब्याहता है, वैसेही उसने 'कमलकुल' नगरके राजा 'सुबंधु तिलककी' 'मित्रादेवी' राणीके गर्भसे जन्मी हुई, कैकेयी नामा कन्याका पाणि ग्रहण किया ।

उसके बाद पुण्य, लावण्य और सौन्दर्यसे जिसका शरीर सुशोभित हो रहा है, ऐसी 'सुप्रभा' नामकी अनिंदित राजपुत्रीके साथ भी उसने लग्नकिये ।

विवेकी मनुष्योंमें शिरोमणि दशरथ राजा धर्म, अर्थमें बाधा पहुँचाये विना तीनों राज–कन्याओंके साथ विषयसुख भोगने लगा ।

दशरथ और जनकको मारनेके लिए विभीषणकी चढ़ाई ।

---

१ इसका दूसरानाम **कौशल्या** था । २ इसका प्रसिद्धनाम **सुमित्रा** था–जोकि लक्ष्मणकी माता थी । इसीको **मित्राभू** और **सुशीला** भी कहते हैं ।

अर्द्ध भरत क्षेत्रके राज्यको भोगनेवाले रावणने एकवार सभामें बैठे हुए किसी निमित्तियासे पूछाः—" हे निमित्तज्ञ अमर तो देवता ही कहलाते हैं। यह निश्चित है कि, जो संसारी प्राणी है उसका मरण अवश्यमेव होगा, अतः मुझे बताओ कि मेरी मौत स्वतः होगी या दूसरोंके द्वारा ? जो हो सो स्पष्ट कहो; क्योंकि आप्त पुरुष सदैव स्पष्टवक्ता ही होते हैं। "

निमित्तज्ञने कहाः—"भावीमें होनेवाली जनक राजाकी कन्या 'जानकीके' कारण भावीमें होनेवाले दशरथ राजाके पुत्रके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी। "

निमित्तियाके वचन सुनकर विभीषण बोलाः—" इस निमित्तियाका वचन सदैव सत्य ही होता है; मगर इस वार इसकी बातको मैं शीघ्र ही मिथ्या कर दूँगा। क्यों कि कन्या और वरके पिता होनेवाले जनक और दशरथ दोनोंको—जो कि इस अनर्थके कारण हैं—मैं मार डालूँगा; जिससे अपना कल्याण होगा। उनको मार डालनेसे जब उनके पुत्री पुत्रोंकी उत्पत्तिही बंध हो जायगी; तब फिर इस निमित्तियाका वचन मिथ्या होगा, इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। "

इस प्रकार बिभीषणके ढारस बँधानेवाले वचन सुनकर रावणने बहुत अच्छा कहा। सभा विसर्जन हुई। रावण अपने महलमें चला गया।

सभामें बैठे हुए नारदने सब वृत्तांत सुना। इससे वह वहाँसे तत्काल ही दशरथ राजाके पास गया। राजा दशरथ उन देवर्षिको दूरहीसे आते देख खड़ा होगया। फिर नमस्कार कर उसने गुरुके समान गौरव करके उनको बिठाया।

बैठनेपर दशरथने पूछाः—" आप कहाँसे आये हैं ?"

नारदने उत्तर दियाः—" पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरीमें, सुरों और असुरोंने मिलकर "श्रीसीमंधर" स्वामीका निष्क्रमणोत्सव[1] किया था। मैं उसीको देखने विदेहमें गया था। उस उत्सवको देखकर, मेरुपर गया वहाँ तीर्थनाथकी वंदना करके मैं लंकामें गया वहाँ शांतिग्रहस्थ शान्तिनाथको नमस्कार कर रावणके घर गया। वहाँ किसी निमित्तियाने जनककी पुत्री जानकी के निमित्त तुम्हारे पुत्र द्वारा उसकी मौत बताई। यह सुनकर बिभीषणने तुम दोनोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। ये सब बातें मैंने सुनी हैं। वह महाभुज अब थोड़े ही समयमें यहाँ आ पहुँचेगा। तुम्हारे साथ मेरा साधर्मीपनका प्रेम है, इसी लिए मैं शीघ्रताके साथ लंकासे तुम्हें समाचार सुनाने यहाँ आया हूँ।"

१—दीक्षा लेनेके लिए जाते समय होनेवाला उत्सव। [श्रीसीमंधर स्वामीने मुनिसुव्रत और नमिनाथके अंतरमें दीक्षा ली है समय समझना।]

दशरथने सब सुन, नारदको, पूजा करके, रवाना कर दिया। नारदने, वहाँसे जाकर, जनकको भी सब बातें सुनाईं।

दशरथ अपने मंत्रियोंको बुला, सब समाचार सुना, उनको राज्यका कारो बार सौंप, योगीकी तरह काल बितानेके लिए वहाँसे जंगलमें चला गया।

शत्रुको धोखेमें डालनेके लिए मंत्रियोंने दशरथकी एक लेप्यमय मूर्ति बनवाकर राज्यगृहकी एक अँधेरी जगहमें रखवा दी। जनक राजाने भी दशरथ हीकी भाँति किया और उसके मंत्रियोंने भी दशरथके मंत्रियोंहीकी तरह किया। दशरथ और जनक अलक्ष्य–गुप्त–रूपसे पृथ्वीमें फिरने लगे।

क्रोधग्रस्त बिभीषण अयोध्यामें आया और अंधकारमें रही हुई दशरथकी लेप्यमय मूर्तिका उसने, खड्गसे सिर काट दिया। उस समय सारे नगरमें कोलाहल मच गया; अंतःपुरमें चारों ओर रोनाकूटना शुरू हो गया। अंगरक्षकों सहित सामंत राजा वहाँ दौड़ गये; और गूढ मंत्रवाले मंत्रियोंने राजाकी सर्व प्रकारकी उत्तर क्रिया कर डाली।

दशरथ राजाको मरा समझ, बिभीषण जनकको न मार, यह सोच लंकाको चला गया कि, अकेले जनकसे क्या हो सकता है?

कैकेयीका स्वयंवर; और उसके साथ दशरथका ब्याह ।

मिथिल और इक्ष्वाकुवंशके राजा जनक और दशरथ, समान अवस्थावाले होनेसे, मित्र बन एक साथ पृथ्वीपर फिरने लगे । वे फिरते हुए उत्तरापथमें पहुँचे । वहाँ कौतुकमंगल नगरके राजा शुभमतिकी रानीके उदरसे जन्मी हुई द्रोणमेघकी बहिन बहत्तर कलावाली कैकेयी नामा कन्याका स्वयंवर था । वे भी स्वयंवरकी बात सुन, कौतुक मंगल नगरमें पहुँच, स्वयंवर मंडपमें गये । वहाँ हरिवाहन आदि राजा भी आये थे । उनके बीचमें वे दोनों भी जाकर, कमलके बीचमें जैसे हंस बैठते हैं, वैसे ही बैठ गये ।"

रत्नालंकारसे विभूषित होकर कन्यारत्न कैकेयी, साक्षात लक्ष्मीकी भाँति; स्वयंवर मंडपमें आई । प्रतिहारीके हाथका सहारा लेकर प्रत्येक राजाको देखती हुई वह, बहुतसे राजाओंको उल्लंघनकर गई; जैसे कि नक्षत्रोंको चंद्र-लेखा उल्लंघन करजाती है ।

अनुक्रमसे वह, गंगा जैसे समुद्रके पास जाती है वैसे, दशरथ राजाके पास आई; और नाविका जैसे नौका रोहीको उतारकर खड़ी होजाती है वैसे, वह वहाँ खड़ी होगई ।

तत्पश्चात रोमांचित देहवाली कैकेयीने, बड़े हर्षके साथ अपनी भुजलताकी भाँति, दशरथके गलेमें वरमाला पहिनाई ।

यह देखकर हरिवाहन आदि राजाओंको बड़ा बुरा लगा। इसमें उन्होंने अपना अपमान समझा; क्रोधके मारे वे अग्निकी भाँति जल उठे और बोलेः—“विचारे फटे चीथड़ोंवाले एकाकी राजाको इस कैकेयीने वरा है; मगर यदि हमलोग उसको छीन लेंगे तो वह अपने पाससे पुनः कैसे ले सकेगा।”

इस भाँति आडंबरके साथ अनेक प्रकारकी बातें कहते हुए वे सब अपनी अपनी छावनियोंमें चले गये। उन्होंने युद्धकी तैयारी की। शुभमति राजा दशरथके पक्षमें रहा। वह बड़े उत्साहके साथ युद्धके लिए तैयार हुआ। उस समय एकाकी दशरथने कैकेयीसे कहाः—“प्रिये! यदि तू सारथी बने, तो मैं इन शत्रुओंको मार डालूँ।”

यह सुन कैकयीने, एक बड़े रथकी धुरि पर बैठकर, घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ली; क्योंकि वह बुद्धिमती रमणी बहत्तर कलाओंमें प्रवीण थी। राजा दशरथ भी कवच पहिन, भाता गलेमें डाल, धनुष हाथमें ले, रथमें सवार हुआ।

यद्यपि दशरथ अकेला था; तो भी वह शत्रुओंको तृणके समान समझने लगा। चतुर कैकेयीने हरिवाहन आदि सब राजाओंके रथोंके सामने, समकालमें, अपना रथ वेगके साथ खड़ा करना प्रारंभ किया। द्वितीय इन्द्रके

समान अखंड पराक्रमी, शीघ्रवेधी दशरथने शत्रुओंके एक एक रथको खंडित करना प्रारंभ किया।

इस भाँति दशरथ राजाने सारे भूपतियोंको परास्त कर जंगम पृथ्वीके समान कैकेयीके साथ ब्याह किया। फिर रथी दशरथने उस नवोढा रमणीसे कहाः—"हे देवी! मैं तेरे सारथिपनसे प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए कुछ वरदान माँग।"

कैकेयीने उत्तर दियाः—"हे स्वामी! समय आवेगा तब मैं वरदान माँग लूँगी, तब तक आप इसको धरोहरकी भाँति अपने पास रखिए।"

राजाने स्वीकार किया। फिर शत्रुओंसे जीती हुई सेना सहित, असंख्य परिवारवाला दशरथ राजा, लक्ष्मीके समान कैकेयीको लेकर राजगृह नगरमें गया; और जनक राजा अपनी राजधानी मिथिलामें चला गया।

'समयज्ञा हि धीमंतो, न तिष्ठंति यथा तथा।'

(समयको जाननेवाले बुद्धिमान योग्य रीतिसे ही रहते हैं; जैसे तैसे नहीं रहते।)

दशरथ राजा मगधपतिको जीतकर राजगृह नगरमें ही रहा। रावणकी शंकासे अयोध्यामें नहीं गया। पीछेसे अपराजिता आदि अपनी राणियोंको भी उसने वहीं बुला लिया।

'राज्यं सर्वत्र दोष्मताम् ।'

(पराक्रमी पुरुषोंके लिए सब जगह राज्य है ।)

अपनी चारों रानियोंके साथ क्रीडा करता हुआ, दशरथ राजा बहुत दिनोंतक राजगृह नगरमें ही रहा ।

'विशेषतः प्रीतये हि राज्ञो भूः स्वयमार्जिता ।'

(राजाओंको, अपनी ही उपार्जन की हुई भूमि विशेष प्रीतिकर होती है ।)

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म ।

एकवार अपराजिता रानीने, रात्रिके पिछले भागमें, बलभद्रके जन्मको सूचित करनेवाले, हाथी, सिंह, चंद्र और सूर्य, इन चारोंको स्वप्नमें देखा । उस समय कोई महर्द्धिक देव ब्रह्म देवलोकमेंसे चवकर अपराजिताके उदरमें आया, जैसे कि पुष्करिणीमें हंस आता है । समयपर अपराजिताने पुण्डरीक–श्वेत–कमलके समान वर्णवाले पुरुषोंमें पुण्डरीक–अग्निकोणके दिग्गज–के समान संपूर्ण लक्षणवंत, एक पुत्रको जन्म दिया ।

प्रथम सन्तान रत्नके मुख-कमलके दर्शनसे, दशरथ राजाको अत्यंत हर्ष हुआ; जैसे कि पूर्ण चंद्रके दर्शनसे समुद्रको होता है । राजाने उस समय चिन्तामणि रत्नकी भाँति याचकोंको वांछित दान देना प्रारंभ किया ।

'लोक स्थितिरियं जाते नंदने दानमक्षयं ।'

(लोकस्थिति है कि-पुत्र उत्पन्न होनेपर दिया हुआ दान अक्षय होता है।)

उस समय लोगोंने इतना हर्ष किया कि, जिससे राजा की अपेक्षा भी उनकी प्रसन्नता विशेष ज्ञात हुई। नगरजन दूब, पुष्प, और फलादि युक्त मंगलमय पूर्ण पात्र राजाके दर्बारमें लाने लगे। नगरमें घर घर मधुर मंगल गान होने लगे; केसरके छिटकाव किये जानेलगे और दर्वाजोंपर तोरण बाँधे जाने लगे।

उस प्रभाविक पुत्रके प्रभावसे राजा दशरथके पास अनेक राजाओंकी तरफसे भी अचिंतित भेटें आने लगीं। राजा दशरथने पद्मा-लक्ष्मी-के निवासस्थान पद्म-कमल-रूप उस पुत्रका नाम 'पद्म' रक्खा। और लोगोंमें वह रामके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

उसके बाद रानी सुमित्राने रात्रिके शेष भागमें, वसु-देवके जन्मको सूचित करनेवाले हाथी, सिंह, सूर्य, चंद्र, अग्नि, लक्ष्मी और समुद्र इन सातोंको स्वप्नमें देखा। उस समय एक परमार्द्धिक देव देवलोकसे चवकर सुमित्रा देवीके उदरमें आया। समय होनेपर उसने वर्षाऋतुके मेघों-बादलों-के समान वर्णवाले, संपूर्ण लक्षणोंके धारी एक जगन्मित्र पुत्ररत्नका प्रसव किया।

उस समय दशरथ राजाने सारे नगरके श्रीमत् अर्हतके चैत्योंमें स्नात्रपूर्वक अष्टप्रकारी पूजा रचवाई। हर्षोत्फुल्ल

हृदयी राजाने कारागृहवासी मनुष्योंको–कैदियों–को और शत्रुओंको भी छोड़ दिया ।

'को वा न जीवति सुखं पुरुषोत्तम जन्मनि ।'

(उत्तम पुरुषोंका जन्म होनेपर कौन सुखसे नहीं जीता है ?)

उस समय प्रजा सहित केवल राजा ही उच्छ्वास नहीं पाया था–प्रसन्न नहीं हुआ था बल्के देवी पृथ्वी भी उस समय उच्छ्वास पाई थी–प्रसन्न हुई थी। राजाने रामजन्मके समय जैसा उत्सव किया था उससे भी अधिक उत्सव इस वार किया ।

हर्षे को नाम तृप्यति ।'

(हर्षमें कौन तृप्त होता है ?) दशरथने उस पुत्रका नाम 'नारायण' रक्खा; मगर लोगोंमें वह 'लक्ष्मण' के नामसे प्रख्यात हुआ ।

पयपान करनेवाले दोनों शिशु क्रमशः पिताको, दाढी मूँछके केश खींचनेकी, सजा देने योग्य वयको प्राप्त हुए । धाय माताके द्वारा पाले हुए उन दोनों कुमारोंको, दशरथ-राजा अपने दूसरे दो भुजदंड हों ऐसे वार वार देखने लगा । स्पर्शसे मानो शरीरमें अमृत बर्षा करते हों वैसे, वे सभामें, सभास्थित लोगोंकी गोदोंमे, एकके बाद दूसरेकी गोदमें, वार वार फिरने लगे ।

अनुक्रमसे दोनों बड़े होगये। दोनों नीलांबर और पीतांबर पहिनकर चरण-पातसे पृथ्वीतलको कँपाते हुए चलने लगे। मानो साक्षात मूर्तिमान दो पुण्यराशि हों, वैसे उन्होंने कलाचार्यको मात्र साक्षी रूपही रखकर, सारी कलाएँ संपादन करलीं। वे महा पराक्रमी वीर मुक्का मारकर जैसे बरफका चूराकर देते हैं वैसे ही, बड़े बड़े पर्वतोंको मुक्का मारकर चूरकर देते थे। जब वे व्यायाम शालामें व्यायाम करते हुए धनुष बाणको चिल्लेपर चढ़ाते थे, उस समय सूर्य भी, इस आशंकासे काँप उठता था कि, कहीं मुझको न वेध दें। वे अपने भुजबल मात्रहीसे शत्रुओंके बलको तृणके समान समझते थे। उनके शस्त्रास्त्रोंके सम्पूर्ण कौशलसे और उनके अपार भुजबलसे, राजा दशरथ अपने आपको देवों और असुरोंसे भी अजेय समझता था।

कुछकाल बीतनेपर राजा दशरथको अपने पुत्रोंके पराक्रमपर धीरज आया, इस लिए वह इक्ष्वाकु राजाओंकी राजधानी अयोध्या नगरीमें गया। दुर्दशामेंसे मुक्त बना हुआ दशरथ, बादलोंमेंसे निकले हुए सूर्यके समान प्रतापसे प्रकाशित होता हुआ राज्य करने लगा।

कुछ समय पश्चात् कैकेयी राणीने शुभस्वप्नसे सूचित भरतक्षेत्रके आभूषणरूप भरत राजाको जन्म दिया। सुप्रभाने भी-जिसकी भुजाओंका पराक्रम शत्रुघ्न-शत्रुना-

शक है—ऐसे कुलनंदन शत्रुघ्न नामा पुत्रको जन्म दिया। स्नेहसे रातदिन साथ रहते हुए, भरत और शत्रुघ्न भी, दूसरे बलदेव और वासुदेव हों, ऐसे सुशोभित होने लगे। राजा दशरथ भी अपने चार पुत्रोंसे ऐसा शोभित होने लगा जैसे चार गजदंताकृति पर्वतोंसे मेरुगिरी शोभता है।

सीता और भामंडलका पूर्वभव; और जन्म।

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें दास नामके ग्राममें एक वसुभूति ब्राह्मण रहता था। उसके अनुकोशा नामकी स्त्रीसे अतिभूति नामा एक पुत्र हुआ। अतिभूतिने सरसा नामा स्त्रीसे ब्याह किया।

कयान नामा एक ब्राह्मण उस पर मोहित हो गया; इस लिए वह एक दिन मौका पा, सरसाको छलकर उड़ाले गया।

'किं न कुर्यात्स्मरातुरः।'

(कामातुर क्या नहीं करता है?) अनुभूति उसको खोजनेके लिए भूतकी भाँति पृथ्वीपर भटकने लगा। पुत्र और पुत्रवधूके लिए उनके पीछे अनुकोशा और वसुभूति भी फिरने लगे। वे सब जगह फिरे; परन्तु उन्हें पुत्र और पुत्रवधूका कहीं पता नहीं मिला। आगे जाते हुए उन्होंने एक मुनिको देखा। उन्होंने भक्तिपूर्वक मुनिको वंदना की। उनके पाससे धर्म सुनकर दोनोंको वैराग्य हो अया। दोनोंने मुनिसे दीक्षा लेली। अनुकोषा गुरुकी

आज्ञासे एक कमलश्री नामा आर्याके पास गई। काल-योगसे मरकर वे सौधर्म देवलोकमें देवता हुए।

'व्रते ह्येकाहमात्रेऽपि न स्वर्गान्यतो गतिः।'

(यदि एक दिन भी व्रतका आराधन किया हो, तो स्वर्गके सिवा दूसरी गति नहीं होती है।)

वसुभूति वहाँसे चवकर वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर नगरमें चंद्रगति नामा राजा हुआ। अनुकोशा भी वहाँसे चवकर उस विद्याधरपति चंद्रगतिकी पुष्पवती नामा पवित्र चरित्रवाली सती स्त्री हुई।

सरसा किसी साध्वीको देख, दीक्षा ले, मृत्यु पा, ईशान देवलोकमें देवी हुई।

सरसाके विरहसे पीडित अतिभूति मरकर संसारमें भ्रमता हुआ एक हंसका शिशु हुआ। एकवार बाजने उस हंसके बच्चेको, भक्षण करनेके लिए पकड़ा। उसके पंजेसे छूटकर वह बच्चा एक मुनिके सामने जा गिरा। कंठगत-प्राण होनेसे मुनिने उसको नमस्कार मंत्र दिया। उस मंत्रके प्रभावसे वह मरकर किन्नर जातिके व्यंतरोंमें दश हजार वर्षकी आयुष्यवाला देवता हुआ। वहाँसे चवकर वह विदग्ध नामके नगरमें प्रकाशसिंह राजाकी रानी प्रवरावलीके गर्भसे जन्मा और कुण्डलमंडित नामसे प्रसिद्ध हुआ।

कयान भोगासक्तिमें मर, चिरकालतक संसाररूपी जंगलमें भ्रमणकर, चंद्रपुरके राजा चंद्रध्वजके पुरोहित

धूमकेशकी स्त्री स्वाहाके गर्भसे पिंगल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पिंगल चक्रध्वज राजाकी अतिसुंदरी नामा पुत्रीके साथ पढ़ता था। कुछ काल बीतनेके बाद दोनोंके परस्पर प्रेम होगया। इससे एकवार पिंगल छलसे अति-सुंदरीको, हरणकर विदग्ध नगर लेगया। कला, विज्ञान विहीन पिंगल घास लकड़ी वेचकर अपनी आजीविका चलाने लगा।

'निर्गुणस्योचितं ह्यदः।'

(निर्गुणीके लिए यही योग्य है।) वहाँ अतिसुंदरीको राजपुत्र कुंडलमंडितने देखा। उन दोनोंके परस्पर अनुराग हो गया। राजपुत्र कुंडलमंडित उसको हर ले गया; और पिताके भयसे किसी दुर्गप्रदेशमें जा, वहाँ झोंपड़ा बना अति सुंदरीके साथ रहने लगा।

पिंगल अति सुंदरीके विरहसे उन्मत्त होकर, पृथ्वीपर भटकने लगा। भटकते हुए उसने एक आर्यगुप्त नामा आचार्यको देखा। उनसे धर्म सुनकर उसने दीक्षा ले ली; परन्तु उसके हृदयसे अतिसुंदरीका स्नेह नहीं निकला।

कुंडलमंडित पल्लीमें रहता हुआ कुत्तेकी भाँति, छल करके दशरथ राजाकी भूमिको लूटने लगा। बालचंद्र नामा एक सामंतको दशरथ राजाने कुंडलमंडितको पक-ड़नेकी आज्ञा दी। उसने इसको भुलावा देकर पकड़

लिया। और दशरथ राजाके पास ले गया। कुछ काल बाद दशरथने उसको वापिस छोड़ दिया।

'कोपः शाम्यति महतां, दीने क्षीणे ह्यरावपि।'

(शत्रुके दीन हो जाने पर बड़े पुरुषोंका कोप शान्त हो जाता है।)

पश्चात कुंडलमंडित, अपने पिताका राज्य प्राप्त करनेके लिए, पृथ्वी पर फिरने लगा। अन्यदा मुनिचंद्र नामा मुनिसे धर्म सुनकर वह श्रावक हो गया। राज्यकी इच्छासे मरकर वह मिथिला नगरीमें जनक राजाकी स्त्री विदेहाके गर्भमें पुत्र होकर आया।

सरसा जो ईशान देवलोकमें देवी हुई थी, वह ईशान देवलोकसे चवकर एक पुरोहितकी वेगवती नामा कन्या हुई। वह उस भवमें दीक्षा ले मरकर ब्रह्मदेव लोकमें गई। वहाँसे चवकर विदेहा रानीके गर्भमें कुंडलमंडितके जीवके साथ ही पुत्रीरूपमें आई।

समय आनेपर विदेहाने पुत्र और कन्याको–युगल सन्तानको–जन्म दिया। उसी समयमें पिंगल मुनि मरकर सौधर्म कल्पमें देवता हुए। उन्होंने अवधिज्ञानसे अपना पूर्वभव देखा; उन्होंने अपने पूर्वभवके वैरी कुंडलमंडितको जनक राजाके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न होते देखा। अतः पूर्वभवके वैरसे रुष्ट होकर वे उसको हर ले गये।

ले जाकर उन्होंने सोचा—“ इसको शिलापर पछाड़ कर मार डालूँ ? मगर नहीं पहिले दुष्टकर्म किया था, उसका फल तो मैंने अनेक भवों तक भोगा है । दैवयोगसे मुनि होकर मैं इतनी ऊँची स्थितिमें पहुँचा हूँ । अब फिर इस बालककी हत्या कर अनन्त भव भ्रमणकर्ता किस लिए बनूँ । ”

यह सोच उन्होंने—देवने—कुंडलादि आभूषणोंसे बालकका शृंगार किया; फिर गिरते हुए नक्षत्रकी भ्रांतिको उत्पन्न करनेवाले उस बालकको ले जाकर उन्होंने रथनुपुर नगरके नंदनोद्यानमें धीरेसे सुला दिया; जैसे कि शय्यापर सुलाया करते हैं ।

आकाशमेंसे गिरती हुई बालककी कांतिको चंद्रगतिने देखा । यह क्या हुआ ? सो जाननेके लिए उसके गिरनेका अनुसरण कर वह नंदन वनमें गया । वहाँ उसने दिव्य अलंकारोंसे भूषित बालकको देखा । उस अपुत्री विद्याधरपति चंद्रगतिने तत्काल ही उसको पुत्ररूपसे ग्रहण कर लिया; और राजमहलमें आकर उसने उसे अपनी प्रिया पुष्पवतीके अर्पण कर दिया । फिर दरबारमें आकर उसने घोषणा करवा दी कि—‘ आज देवी पुष्पवतीने एक पुत्ररत्न प्रसव किया है । ’

राजाने और पुरवासियोंने उसका जन्मोत्सव किया । प्रथमके भामंडल—कांतिसमूह-के संबंधसे उसका नाम भामं-

डल रक्खा गया। पुष्पवती और चंद्रगतिके नेत्ररूपी कुमुद्-के लिए चंद्रमाके समान, वह बालक खेचरियोंके हाथोंमें लालित, पालित होकर अहर्निशि बढ़ने लगा।

उधर मिथिलामें, पुत्रका हरण हुआ जान, रानी विदेहाने करुण-क्रंदन कर सारे कुटुंबको शोकसागरमें डाल दिया। जनक राजाने उसकी शोध करनेके लिए चारों तरफ दूत दौड़ाए; मगर बहुत दिन बीत जाने पर भी कहींसे बालकके मिलनेके समाचार नहीं मिले।

जनक राजाने यह सोचकर कि इस पुत्रीमें अनेक गुण-रूप धान्यके अंकुर हैं, उस युगलोद्भव कन्याका नाम 'सीता' रक्खा। कुछ कालके बाद उनका पुत्र शोकची कम हो गया।

'शोको हर्षश्च संसारे नरमायाति याति च।'

(संसारमें मनुष्य पर शोक और हर्ष आते हैं और जाते हैं।)

कुमारी सीता रूपलावण्यकी संपत्तिके साथ वृद्धिंगत होने लगी। धीरे धीरे वह चंद्रलेखाके समान कलापूर्ण हो गई। क्रमशः वह कमलाक्षी बाला, यौवन वयको प्राप्त हो, उत्तम लावण्यमय लहरियोंकी सरिता बन, सती लक्ष्मीके समान दिखने लगी। उसके अप्रतिम रूपलावण्यको देख-कर जनक रात दिन इसी विचारमें रहने लगा कि—'इसके योग्य वर कौन होगा? अपने मंत्रियोंके साथ सलाह

करके उसने अनेक राजकुमारोंको देखा, मगर उनमेंसे एक भी उसको पसंद नहीं आया।

रामका जनककी मददको जाना।

सीताके साथ रामका संबंध निश्चय होना।

उस समय अर्ध बरबर देशके आतरंगतम आदि, दैत्यके समान म्लेच्छ राजा आ आकर जनकके राज्यमें उपद्रव करने लगे। कल्पांतकालके जलकी भाँति अपने द्वारा उसका रुकना असंभव समझ, जनकने दशरथको बुलानेके लिए उसके पास एक दूत भेजा।

महत हृदयी दशरथने आगत दूतको सन्मानकर, अपने पास बिठाया और जिस कार्यके लिये आया हो वह कार्य बतानेके लिए कहा।

दूत बोलाः—"हे महाबाहु! मेरे स्वामीके अनेक आप्त पुरुष हैं; परन्तु आत्माके समान हार्दिक मित्र तो आप ही हैं। राजा जनकको सुखदुःखमें ग्रहण करने योग्य आप ही हैं–आपही उनको सुखदुःखमें मदद कर सकते हैं। अभी वे विधुर हैं–घबराये हुए हैं। इसलिए उन्होंने कुल देवताकी भाँति आपका स्मरण किया है। वैताढ्य गिरिके दक्षिणमें और कैलास* पर्वतके उत्तरमें बहुतसे जनपद+ हैं जिनमें भयंकर लोग बसते हैं। उनमें बरबर कुलके समान अर्द्ध बरबर नामा देश है। वह

---

* चूल हिमवंत। + देश।

दारुण आचारवाले पुरुषोंसे अत्यंत दारुण बना हुआ है। उस देशका आभूषण रूप नगरसाल नामा नगर है। वहाँ आतरंग नामा अति दारुण म्लेच्छ राजा राज्य करता है। उसके हजारों पुत्र हैं। वे राजा बनकर शुक, मंकन, कांबोज आदि देशोंका उपभोग कर रहे हैं। अभी उस आतरंग राजाने अक्षय अक्षोहिणी–सेना-वाले उन सब राजाओंसहित आकर जनक राजाकी भूमिको भंग कर दिया है। उन दुष्ट आशयवालोंने प्रत्येक स्थानके चैत्यों-का नाश किया है। उनकी सारी आयुभर वे भोग कर सकें इतनी उनको संपत्ति मिल गई है, तो भी वे धर्ममें विघ्न कर रहे हैं। धर्ममें विघ्न करना ही उनको विशेष इष्ट है। हे दशरथ राजा! आपके अत्यंत प्रिय–इष्ट धर्मकी और जनककी आप रक्षा करो। इन दोनोंके आप ही प्राण रूप हो।"

दूतकी बातें सुनकर दशरथने तत्काल ही यात्रार्थ जानेको बाजे बजवाये।

'संतः सतां परित्राणे विलंबंते न जातु चित्।'

(सत्पुरुष सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें कभी विलंब नहीं करते हैं।) उस समय रामने आकर कहाः–"हे पिताजी! म्लेच्छ लोगोंका उच्छेद करनेके लिए यदि आप स्वतः जायँगे तो फिर यह राम अपने अनुज बंधु सहित यहाँ बैठा हुआ क्या करेगा? पुत्रस्नेहके कारण आप हमें

असमर्थ समझते हैं; मगर इक्ष्वाकुवंशके पुरुषोंमें तो जन्म हीसे पराक्रम सिद्ध है । अतः हे पिता! आप प्रसन्न होकर यहीं रहिए और म्लेच्छोंका उच्छेद करनेकी मुझको आज्ञा दीजिए । थोड़े ही दिनोंमें आप अपने पुत्रकी जयवार्ता सुनेंगे ।"

इतना कह, बड़ी कठिनतासे दशरथकी आज्ञा ले, राम अपने अनुज बंधुओं सहित भारी सेना लेकर मिथिलापुर गये । वहाँ जाकर उन्होंने, म्लेच्छ सुभटोंको नगरमें ऐसे फिरते देखा जैसे बड़े वनमें चमूरु—एक प्रकारके हरिण—हाथी, शार्दूल, सिंह आदि जन्तु फिरते हैं ।

जिनकी भुजाओंमें युद्ध करनेकी खुजली चलती है; और जो अपनेको विजयी समझते हैं ऐसे वे म्लेच्छ तत्काल ही रामकी सेनाको उपद्रवित करने लगे । रजको—धूलको—उड़ानेवाला महावायु जैसे जगतको अंधा बना देता है, वैसे ही उन म्लेच्छोंने रामकी सेनाको, अपने शस्त्रों द्वारा, अंधा बना दिया । उस समय शत्रु और उनकी सेना अपनेको नेता समझने लगे; राजा जनक अपना मृत्यु समझने लगा और लोग अपना संहार मानने लगे ।

इतनेहीमें हर्षित हृदय रामने बाणको चिल्ले पर चढ़ाया और रणनाटकके वाद्यकी भाँति उसकी टंकारकी । पृथ्वी पर रहे हुए देवकी भाँति, भ्रू-भंग भी न करते हुए,

रामने थोड़ी ही बारमें करोड़ों म्लेच्छोंको बाँध डाला; जैसे कि शिकारी हरिणोंको बाँध देता है।

'यह राजा जनक तो बिचारा है; उसका सैन्य मच्छरके समान है; और उसकी सहायता करनेको आया हुआ सैन्य तो पहिलेहीसे दीन बन गया है। मगर यह क्या! आकाशको ढँकते हुए गरुड़की भाँति जो बाण आ रहे हैं, ये बाण किसके हैं?' अतरंगादि म्लेच्छ राजा परस्पर बातें करते हुए रामकी ओर आये। उन्होंने विस्मय और कोपके साथ, पासमें आकर एक साथ राम पर अस्त्रवृष्टि करना प्रारंभ किया।

दूरापाती—दूरसे आकर गिरता है वैसे—दृढ आघाती, और शीघ्रवेधी रामने लीला मात्रहीमें म्लेच्छोंको भग्न कर दिया; जैसे कि अष्टापद सिंहोंको कर देता है। क्षणवारमें कौओंकी भाँति सारे म्लेच्छ इधर उधर उधर दशोंदिशाओंमें भाग गये। इससे राजा जनक और पुरवासी लोग स्वस्थ हुए।

रामका पराक्रम देखकर, जनक राजाने अपनी कन्या सीता, रामको देना निश्चय किया। रामके आनेसे जनकको दो लाभ हुए। कन्याके लिए योग्य वरकी प्राप्ति और म्लेच्छोंका उपद्रव संहार।

भामंडलका सीता पर आसक्त होना।

नारदने लोगोंके मुखसे जानकीके रूपकी विशेष

तथा प्रशंसा सुनी; इस लिए उसको देखनेके लिए नारद मिथिला नगरीमें गया । उसने जाकर कन्यागृहमें प्रवेश किया ।

पीले नेत्रवाले, पीले केशवाले, बड़े पेटवाले, हाथमें छत्री और दंडको रखनेवाले, कोपीन–लंगोटी–को पहिननेवाले, कृषशरीरी और उड़ती हुई चोटीवाले नारदके भयंकर रूपको देख कर सीता डर गई । और 'माँ, माँ' पुकारती हुई वहाँसे गर्भागारमें–अंदरके घरमें–चली गई ।

सीताकी आवाज सुनकर दासियाँ और द्वारपाल तत्काल ही वहाँ दौड़ गये । उन्होंने कोलाहल करते हुए, जाकर, कंठ, शिखा और बाहुमेंसे नारदको पकड़ लिया । कोलाहल सुन कर 'मारो, मारो,' करते हुए यमतुल्य शस्त्रधारी राजपुरुष भी वहाँ जा पहुँचे ।

नारद घबरा गया और बड़ी कठिनताके साथ उनसे वह अपना छुटकारा करा, उड़ कर वैताढ्यगिरि पर गया । वहाँ जाकर वह सोचने लगा–"जैसे गाय व्याघ्रियोंके हाथसे बड़ी कठिनतासे छुटकारा पाती है, वैसे ही मैं भी उन दासियोंके हाथसे भाग्य वश छुटकारा पाकर, अनेक विद्याधर राजाओंके निवासस्थान इस वैताढ्य गिरि पर आया हूँ । इस गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें इन्द्रके समान

पराक्रमी चंद्रगतिका लड़का भामंडल नामा युवक, रहता है। एक कपड़े पर सीताका चित्र चित्रित कर उसको दिखाऊँ। वह मुग्ध होकर जबर्दस्ती सीताको हर लायगा। इससे उसने मेरे साथ जो व्यवहार किया है, उसका उसे बदला मिल जायगा। "

ऐसा विचार कर, तीन लोकमें कहीं न देखा गया, ऐसा सीताका स्वरूप चित्रपट पर लिख, नारदने भामंडलको दिखाया। उसे देखते ही कामदेवने, भूतकी भाँति उसके शरीरमें प्रवेश किया। विंध्याचलसे खींच कर लाये हुए हाथीकी भाँति उसकी निद्रा जाती रही। उसने मधुर खाना बंद कर दिया, स्वादु पेय पदार्थ पीना छोड़ा दिया और ध्यानस्थ योगीकी भाँति वह मौन करके रहने लगा।

भामंडलको इस भाँति उदास देख, राजा चंद्रगतिने उससे पूछाः—" हे वत्स ! क्या तुझे कोई मानसिक पीड़ा है ? या शरीरमें कुछ रोग हुआ है ? या किसीने तेरी आज्ञा भंग की है ? या कोई दूसरा दुःख तेरे हृदयमें घुसा है ? जो हो सो कह। "

पिताका प्रश्न सुन, भामंडल कुमार लज्जासे—दोनों तरहसे अंतरंगसे और बहिरंगसे—नीचामुख करके रह गया। क्योंकि कुलीन गुरुजनोंके आगे ऐसी बात कैसे कह सकते हैं ?

उसके मित्रोंने कहा कि, नारदने एक स्त्रीका चित्र दिखाया था; उसी स्त्रीकी कामना—इच्छा—भामंडलके दुःखका कारण है। तब राजाने नारदको राजगृहमें; एकान्तमें बुलाकर पूछाः—" तुमने चित्रमें जिस स्त्रीको बताया है, वह कौन है? और किसकी लड़की है ?"

नारदने उत्तर दियाः—" जिस कन्याका चित्र चित्रित करके मैंने बताया है, वह जनक राजाकी कन्या है। उसका नाम सीता है। जैसा उसका रूप है वैसा ही रूप चित्रित कर देना मेरी या किसी अन्यकी शक्तिके बाहिर है; क्योंकि वह मूर्तिमती कोई लोकोत्तर स्त्री है। सीताका जैसा रूप है, वैसा देवियोंमें, नाग कुमारियोंमें और गन्धर्व कन्याओंमें भी नहीं है; तो फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

उसके रूपके समान रूपकी विक्रिया करनेमें देवता, उसका अनुसरण करनेमें देवनट और वैसा रूप बनानेमें प्रजापति ब्रह्मा—भी असमर्थ हैं। उसकी आकृति और वचनमें जो माधुर्य है, उसके कंठमें और हाथ पैरोंमें जो रक्तता है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। जैसे उसका रूप चित्रित करनेमें मैं असमर्थ हूँ, वैसे ही उसका यथार्थ वर्णन करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ। तो भी परमार्थतासे मैं कहता हूँ कि, वह स्त्री भामंडलके योग्य है। और यह:सोच कर

ही मैंने उसका रूप यथा बुद्धि पटपर लिखकर उसको बताया है।"

नारदकी बातें सुनकर चंद्रगतिने भामंडलसे कहाः— "वत्स ! वह तेरी पत्नी होगी।" इस भाँति भामंडलको आश्वासन देकर उसने नारदको बिदा कर दिया।

सीताके वरके लिए चन्द्रगतिका जनकसे प्रतिज्ञा कराना।

फिर चंद्रगतिने चपलगति नामा एक विद्याधरको आज्ञा दी कि—तू शीघ्र ही जनक राजाका अपहरण कर, उसको यहाँ ले आ। रातको आज्ञानुसार वह मिथिलामें गया और जनक राजाको, हरणकर, ला, चन्द्रगतिके आधीन कर दिया।

रथनुपुरका राजा चंद्रगति जनकके साथ भाईकी तरह बाथ भरके मिला और उसको अपने पास बिठाकर कहने लगा—"तुम्हारे लोकोत्तर गुणवाली सीता नामा कन्या है; और मेरे रूप संपत्तिसे परिपूर्ण भामंडल-नामका पुत्र है। मेरी इच्छा है कि, उन दोनोंका वधूवरकी भाँति उचित संयोग हो और हम दोनों उस संबंधके द्वारा सुहृद बनें।"

उसकी ऐसी माँग सुनकर, जनक राजा बोलाः—"पुत्री मैंने दशरथके पुत्र रामको दे दी है; अब वह दूसरेको कैसे दी जा सकती है? क्योंकि कन्या तो एक ही बार दी जाती है।"

चंद्रगति बोलाः—"हे जनक! यद्यपि मैं सीताको हरण कर लानेका सामर्थ्य रखता हूँ; तथापि स्नेहवृद्धि करनेकी मेरी इच्छा है। इस लिए मैंने तुमको यहाँ बुलाकर तुमसे उसको माँगा है। यद्यपि तुमने रामको अपनी पुत्री देनेका संकल्प किया है तथापि, हमारा पराजय किये विना राम उसको ब्याह न सकेगा। युद्ध रोकनेका एक उपाय है। हमारे घरमें दुस्सहतेज वाले 'वज्रा-वर्त' और 'अर्णवावर्त' दो धनुष रक्खे हुए हैं। एक हजार देवता उनकी रक्षा करते हैं। गोत्रदेवताकी भाँति देवोंकी आज्ञासे हमारे घरमें सदा उनकी पूजा होती रहती है। वे दोनों भावी बलदेव और वासु-देवके उपयोगमें आनेवाले हैं। तुम उनको ले जाओ। यदि राम उनमेंसे एकको भी चढ़ा देगा तो समझ लेना कि हम रामसे परास्त होगये। पीछे वह सीताको सुखसे ब्याहे।"

जनकसे जबर्दस्ती ऐसी प्रतिज्ञा कराकर चंद्रगतिने उसको मिथिलामें पहुँचा दिया। आप भी अपने परिवार सहित मिथिलामें गया। साथमें दोनों धनुष भी लेता गया। उसने धनुष दर्बारमें रखवाकर शहरके बाहिर डेरा दिया।

जनकने सारा वृत्तांत रातको, अपनी प्रियासे कहा। सुनकर विदेहा अत्यंत दुःखी हुई। वह रुदन करने और कहने लगीः—"देव! तू अत्यंत निर्दय है। तूने मेरे

एक पुत्रको हर लिया, तो भी तृप्त न हुआ। अब तू मेरी पुत्रीको भी हर लेनेकी इच्छा रखता है। संसारमें पुत्रीके लिए स्वेच्छासे वर ग्रहण किया जाता है; दूसरोंकी इच्छासे नहीं। मगर दैवयोगसे मेरे लिए तो दूसरेकी इच्छासे वर ग्रहण करनेका समय आया है। दूसरेकी इच्छासे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार यदि राम इस धनुषको न चढ़ा सकेंगे, और कोई दूसरा चढ़ा लेगा तो मेरी कन्याको अवश्यमेव अनिष्ट वर मिलेगा। हाय! दैव! अब मैं क्या करूँ?"

विदेहाका रुदन सुन, जनक राजाने उसको, आश्वासन देते हुए, कहाः—"हे देवी! तुम भय न करो। मैंने रामका बल देखा है। यह धनुष उनके लिए एक लताके समान है।"

सीताका स्वयंवर और राम, लक्ष्मण और भरतका ब्याह।

विदेहाको इस प्रकारसे समझाकर, दूसरे दिन सवेरे ही जनकने, मंच[1]मंडित मंडपमें उन दोनों धनुष रत्नोंको पूजा करके रख दिया। जनक राजाने सीताके स्वयंवरमें विद्याधर राजाओं और मनुष्य राजाओंको बुलाये थे। वे आ आकर मंचपर बैठे।

पश्चात् जानकी दिव्य अलंकारोंको धारण कर, सखियोंसे घिरी हुई, मंडपमें आई। भूमिपर चलती हुई वह

१—बाँसोका बना हुआ ऊँचा आसन।

देवी तुल्य जान पड़ती थी । लोगोंकी आँखोंके लिए अमृतकी सरिता समान, जानकी रामका ध्यान धर धनुषकी पूजा कर वहाँ खड़ी हो गई।

नारदके कथनानुसार ही सीताके रूपको देखकर, भामंडलके हृदयमें कामदेव प्रहार करने लगा।

उस समय जनकके एक द्वारपालने ऊँचा हाथ करके कहाः—" हे सर्व खेचरो और पृथ्वीचारी राजाओ! जनकराजा कहते हैं कि–इन दो धनुषोंमेंसे जो कोई एक धनुषको चढ़ालेगा वह मेरी पुत्रीका वर होगा।"

सुनकर खेचर, और मनुष्य राजा, एकके बाद दूसरा, उन धनुषोंके पास, जाजा कर लौटने लगे। उनको चढ़ाना तो दूर रहा; परन्तु भयंकर सर्पवेष्टित, तीव्रतेजवाले उन धनुषोंको कोई स्पर्श भी नहीं कर सका। अनेक तो धनुषोंमेंसे निकलते हुए अग्नि–स्फुलिंगोंसे दग्ध होकर लज्जासे सिर झुकाये हुए अपने आसनोंपर जाकर बैठ गये।

फिर जिसके कांचनमय कुंडल चालित हो रहे हैं, ऐसे दशरथ कुमार राम गजेन्द्र लीलासे गमन करते हुए उस धनुषके पास गये।

उस समय चंद्रगति आदि राजाओंने उपहासमय दृष्टिसे और जनकने शंकामय दृष्टिसे रामकी ओरै देखा।

लक्ष्मणके ज्येष्ठ बंधु रामने 'वज्रावर्त' धनुषको–जिसपरसे सर्प और अग्निज्वाला शान्त होगये थे–निःशंक होकर उठालिया; जैसेकि इन्द्र वज्रको उठालेता है । फिर धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ रामने लोहेकी पीठको ऊपर रख, बैंतकी भाँति उसको झुका चिल्लेको धनुषपर चढाया । और कानतक खींचकर उसका आस्फालन किया-उसको चलाया। धनुष, शब्दद्वारा, पटहकी भाँति, रामकी कीर्तिको प्रसिद्ध करता हुआ, और भूमि व आकाशके उदरको भरता हुआ, गूँज उठा ।

सीताने तत्काल ही आगे बढकर रामके गलेमें वरमाला डाल दी । रामने धनुषसे चिल्लेको उतार डाला । फिर लक्ष्मणने भी रामकी आज्ञासे 'अर्णवावर्त' धनुषको चढ़ाया । लोग विस्मयके साथ यह सब कुछ देखते रहे । उसका आस्फालन करनेसे उसने नादसे दिशाओंके कानोंको बहरा बना दिया । फिर चिल्लेको उतारकर लक्ष्मणने उसको वापिस उसकी जगह रख दिया ।

उस समय विस्मित और चकित बने हुए विद्याधरोंने देवकन्याओंके समान अद्भुत अपनी अट्ठारह कन्याएँ लक्ष्मणको दीं । चंद्रगति आदि विद्याधर राजा लज्जित होकर, तपे हुए भामंडलसहित अपने अपने स्थानको गये ।

जनक राजाने दशरथको संदेशा भेजा । दशरथ आये । उन्होंने बड़े उत्सवके साथ राम और सीताका ब्याह

किया। जनकके भाई कनकने सुप्रभा रानीके गर्भसे जन्मी हुई भद्रा नामकी कन्या भरतको व्याही। फिर दशरथ अपने पुत्रों और बहुओं सहित, प्रजाजनकृत उत्सवोंसे आनंदित बनी हुई अयोध्यानगरीमें आये।

दशरथके हृदयमें मोक्षप्राप्तिकी इच्छा होना।

एक वार दशरथ राजाने बड़ी धूम धामके साथ चैत्य-महोत्सव और शान्ति स्नात्र कराये। राजाने स्नात्र जल पहिले अपनी पट्टरानी कौशल्याके पास अन्तःपुरके अधिकारी वृद्ध पुरुषके साथ भेजा। फिर दासियोंके साथ दूसरी रानियोंके पास भी भेजा। युवावस्थाके कारण शीघ्र चलनेवाली दासियोंने शीघ्रतासे दूसरी राणियोंके पास स्नात्र जल पहुँचा दिया। उन्होंने तत्काल ही उसको वंदन कर शिरपर चढ़ाया।

अंतःपुरका अधिकारी वृद्ध होनेसे शनि-गृहकी भाँति धीरे धीरे चलता था, इससे पट्टरानीको शीघ्र ही स्नात्र-जल नहीं मिला। वह विचारने लगी–"राजाने सब रानियोंके पास स्नात्र-जल भेजकर उनपर कृपा की है; परन्तु मैं पट्टरानी हूँ, तो भी उन्होंने मेरे पास स्नात्र-जल नहीं भेजा। इस लिए मेरे समान मन्दभाग्याको अब जीवित रहकर क्या करना है?"

'ध्वस्ते माने हि दुःखाय जीवितं मरणादपि।'

(मानके नष्ट होने पर जीवित रहना मृत्युसे भी विशेष दुःखरूप है ।)

इस प्रकार विचार, मरनेका निश्चय कर, उस मनस्विनी–मानिनी-ने अंदरके घरमें जा वस्त्रसे फाँसी खाना प्रारंभ किया । उसी समय राजा दशरथ वहाँ जा पहुँचे । उसको वैसी स्थितिमें देख, उसकी मरणोन्मुखताको देख, भयभीत हो, राजाने उसको अपनी गोदमें बिठाया और पूछा:— " प्रिये ! तेरा क्या अपमान हुआ है ? जिससे तूने ऐसा दुस्साहस किया है ? दैवयोगसे मेरे द्वारा तो तेरा कोई अपमान नहीं हुआ है न ? "

वह गद्गद कंठ होकर बोली:–" आपने सब रानियोंके पास तो स्नात्रजल भेजा; परन्तु मेरे पास नहीं भेजा । " कौशल्या इतना ही कहने पाई थी कि, इतनेहीमें वह वृद्ध कंचुकी–अन्तःपुरका अधिकारी–यह कहता हुआ वहाँ जा पहुँचा कि–" राजाने यह स्नात्रजल भेजा है । "

राजाने तत्काल ही उस पवित्र जलसे रानीके मस्तकका अभिसिंचन किया–जल सिर पर डाला । फिर राजाने कंचुकीसे पूछा:—" तू इतनी देरसे क्यों आया ? "

कंचुकी बोला:–" स्वामी ! इसमें, सर्व कार्योंमें असमर्थ, मेरी वृद्धावस्थाका अपराध है । आप स्वयं मेरी ओर देखिए । "

राजाने उसकी ओर देखा। देखा—वह मरणेच्छु मनुष्यकी भाँति पद पद पर गिर पड़ता है; मुखमेंसे राल गिर रही है; दाँत गिर गये हैं; चहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं; भ्रकुटीके केशोंसे नेत्र ढक गये हैं; मांस व रुधिर सूख गये हैं और सारा शरीर धूज रहा है। ”

कंचुकीकी ऐसी दशा देखकर, राजाने सोचा—मेरी भी ऐसी स्थिति हो उसके पहिले ही मुझको मोक्षके लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए। इस भाँति विचार कर उनका हृदय विषयोन्मुख हो गया। फिर कुछ काल तक संसार पर वैराग्य रखनेवाले चित्तसे उन्होंने गृहवास किया।

भामंडलका जनक-पुत्र होना प्रकट होना।

एकवार चार ज्ञान[1]के धारी सत्यभूति नामा महामुनि संघ सहित अयोध्यामें गये। राजा दशरथ पुत्रादि परिवार सहित मुनिके पास गये और उनको वंदना कर देशना सुननेकी अभिलाषासे उनके निकट बैठे।

राजा चंद्रगति अनेक विद्याधर राजाओंको साथ लेकर सीताकी अभिलाषासे तप्त बने हुए, भामंडल सहित, रथावर्त गिरिके अर्हतों की वंदना करनेको गया हुआ था। उसी समय वह भी आकाश मार्गसे लौटते हुए उधर आ निकला। वह आकाशमेंसे, सत्यभूति मुनिको देख, नीचे

---

१ मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय।

उतरा और मुनिको वंदना कर, देशना सुननेके लिए बैठ गया।

भामंडल सीताकी अभिलाषासे संतप्त हो रहा है, यह जान, सत्यवान, सत्यभूति मुनिने, समयके योग्य, देशना दी। प्रसंगोपात पापमेंसे बचानेके लिए, उन्होंने चंद्रगति और पुष्पवतीके व भामण्डल और सीताके पूर्वभव कह सुनाये। उसीमें सीता और भामंडलका एक साथ उत्पन्न होना और भामंडलका हरा जाना, आदिवृत्तान्त भी कह सुनाया।

सुनकर भामंडलको जाति स्मरण ज्ञान हो आया। वह तत्काल ही, मूर्च्छित होकर, भूमि पर गिर पड़ा। थोड़ी वारके बाद चेत होने पर स्वयं भामंडलने अपना पूर्वभवका सारा वृत्तान्त, सत्यभूति मुनिने कहा था उसी भाँति, कह सुनाया। इससे चंद्रगति आदिको परम वैराग्य हो आया। सद्बुद्धि भामंडलने सीताको, भगिनी समझकर, प्रणाम किया।

जन्मते ही जिसका हरण होगया था वही यह मेरा भाई है, यह जानकर, सीताने भामंडलको आशिस दी। फिर विनयी भामंडलने—जिसके हृदयमें तत्काल ही सुहृदता उत्पन्न होगई थी—ललाटसे पृथ्वीको स्पर्श करके, रामको भी प्रणाम किया।

चंद्रगतिने, उत्तम विद्याधारोंको भेजकर, विदेहा और जनकको वहीं बुलाया, और 'जन्मते ही जिसका हरण

होगया था वह, यह भामंडल तुम्हारा पुत्र है ' आदि वृत्तांत, उनको कह सुनाया। चंद्रगति की बातें सुनकर, जनक और विदेहा बहुत हर्षित हुए; जैसे कि मेघकी गर्जना सुनकर मोर प्रसन्न होते हैं। विदेहाके स्तनोंमेंसे दुग्ध झरने लगा।

अपने वास्तविक माता पिताको, पहिचानकर, भामंडलने नमस्कार किया। उसको, उन्होंने मस्तकसे चुंबनकर, हर्षाश्रुसे स्नानकर वाया।

चंद्रगतिने, संसारसे उदास हो, भामंडलको राज्यपर बिठा, सत्यभूति मुनिके पाससे दीक्षा ले ली। फिर भामंडल सत्यभूति और चंद्रगति मुनिको, जनक और विदेहाको (मातापिताको) दशरथ राजाको, सीताको और रामको नमस्कार करके अपने नगरको गया।

दशरथ राजाके पूर्वभव।

राजा दशरथने सत्यभूति मुनिसे अपने पूर्वभव पूछे।

मुनिने कहाः—"सेनापुरमें भावन नामा किसी महात्मा वणिकके, दीपिका नामकी पत्नीसे जन्मी हुई, उपास्ति नामकी, एक कन्या थी। उसने उस भवमें साधुओंके साथ प्रत्यनीकतासे-द्वेषसे-वर्ताव किया। जिससे उसको तिर्यंचादि महाकष्ट दायी योनियोंमें, चिरकालतक भ्रमण करना पड़ा।

अनुक्रमसे उसका जीव, बंगपुरमें, धन्य नामके वणिककी सुन्दरी नामा पत्नीसे, वरुण नामका पुत्र हुआ। उस

भवमें प्रकृतिसे ही उदार ऐसा तू साधुओंको श्रद्धापूर्वक अधिक दान देता था।

वहाँसे मरकर तू धातकी खंड द्वीपके उत्तर कुरुक्षेत्रमें जुगलिया उत्पन्न हुआ । वहाँसे देवता हुआ । वहाँसे चवकर, पुष्कलावती विजयमें, पुष्कला नगरीके राजा नंदिघोष और पृथ्वी देवीका तू नंदिवर्द्धन नामक पुत्र हुआ । नंदिघोष राजा, तुझको–नंदिवर्द्धनको–राज्य दे, यशोधर मुनिके पाससे दीक्षा ले, कालधर्म पा, ग्रैवेयकमें देवता हुआ । तू नंदिवर्द्धन श्रावकपन पाल, मृत्यु पा, ब्रह्मलोकमें देवता हुआ ।

वहाँसे चवकर प्रत्यग विदेहमें, वैताढ्य गिरिकी उत्तर श्रेणीके आभूषणरूप शिशिपुर नामके नगरमें खेचरपति रत्नमालीकी, विद्युल्लता नामा स्त्रीसे, सूर्यजप नामका तू महापराक्रमीपुत्र हुआ ।

एकवार रत्नमाली गर्वित विद्याधरपति वज्रनयनको जीतनेके लिए, सिंहपुर गया । वहाँ उसने, बाल वृद्ध, स्त्री, पशु और उपवन सहित, सारे नगरको जलाना प्रारंभ किया । उस समय उपमन्यु नामा उसके पुरोहितका जीव–जो उस समय सहस्रार देवलोकमें देवता था–आकर कहने लगाः—" हे महानुभाव, ऐसा उग्रपाप न कर । तू पूर्वभवमें भूरिनंदन नामा राजा था । उस समय तूने विवेक पूर्वक यह प्रतिज्ञा ली थी कि, तू मांसका भोजन नहीं

करेगा। पीछे उपमन्यु पुरोहितके कहनेसे, तूने उस प्रतिज्ञाको तोड़ दिया। उस उपमन्यु पुरोहितको स्कंद नामक एक व्यक्तिने मार डाला। मरकर वह हाथी हुआ। उस हाथीको भूरिनंद राजाने पकड़ लिया। युद्धमें वह हाथी मर गया। मरकर वह भूरिनंदन राजाकी पत्नी गांधारीके उदरसे अरिसूदन नामा पुत्र उत्पन्न हुआ।

वहाँ उसको जाति स्मरण ज्ञान हो गया। इसलिए उसने दीक्षा लेली। वहाँसे मरकर वह सहस्रार[1] देवलोकमें देवता हुआ। वह मैं ही हूँ।

राजा भूरिनंदन मरकर एक वनमें अजगर हुआ; वहाँ वह दावानलसे जलकर दूसरे नरकमें गया। पूर्व स्नेहके कारण मैंने नरकमें जाकर उसको उपदेश दिया। वहाँसे निकल कर तू प्रतिमाली राजा हुआ है। पूर्व भवमें मांस त्यागकी प्रतिज्ञाका भंग किया था, वैसा अनंत दुःखदायक परिणामवाला, नगरदाहका कार्य अब मत कर।"

इस प्रकार अपना पूर्व भव सुन, रत्नमालीने, युद्धसे मुख मोड़, सूर्यजयके (तेरे) पुत्र कुलनंदनको राज्य दे, अपने पुत्र सूर्यजयसहित, तिलकसुंदर आचार्यके पाससे दीक्षा लेली। दोनों मुनिपन पालते हुए मरकर महाशुक्र[2] देवलोकमें उत्तम देवता हुए।

१—आठवाँ देवलोक। २ सातवाँ देवलोक।

वहाँसे चवकर सूर्यजयका जीव तू हुआ और रत्नमालीका जीव चवकर जनक राजा हुआ। पुरोहित उपमन्यु सहस्रार देवलोकमेंसे चवकर जनकका छोटा भाई कनक हुआ। और नंदिवर्द्धनके भवमें जो जीव, नंदिघोष नामा तेरा पिता था, वह ग्रैवेयकमेंसे चवकर, मैं सत्यभूति हुआ हूँ।"

दशरथ राजाको दीक्षा लेनेकी इच्छा होना।

इस तरह अपना पूर्व भव सुनकर, दशरथ राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया। इससे तत्काल ही वह वहाँसे मुनिको वंदना कर, राज्यभार रामको सौंपनेके लिए महलमें गया।

दीक्षा लेनेके उत्सुक दशरथने अपनी रानियों, मंत्रियों और पुत्रोंको बुला, उनके साथ सुधारसके समान वार्तालाप कर, उनसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा माँगी।

उस समय भरतने नमस्कार करके, कहाः—"हे प्रभो! आपके साथ मैं भी सर्व विरति बनूँगा; आपके विना मैं घरमें नहीं रहूँगा। यदि घरमें रहूँगा तो मुझको अत्यंत दुःखदायी दो कष्ट होंगे। एक आपका विरह और दूसरा संसारकी ताप।"

भरतके वचन सुनकर, कैकयी डर गई। वह सोचने लगी—यदि ऐसाही निश्चित हो जायगा तो फिर मेरे पुत्र या पति एक भी नहीं रहेगा। यह विचार वह बोलीः—

'हे स्वामी! आपको याद है न? मेरे स्वयंवरके समय मैंने आपका सारथिपन किया था। उस समय आपने मुझको एक वरदान माँगनेको कहा था। हे नाथ! वह वरदान आप इस समय दीजिए। क्योंकि आप सत्य प्रतिज्ञावाले हैं।'

'प्रस्तरात्कीर्ण रेखेव, प्रतिज्ञा हि महात्मनाम्।'

(महात्माओंकी प्रतिज्ञा पाषाणमें की हुई रेखाके समान होती है)

दशरथ राजाने उत्तर दियाः—"मैंने जो वचन दिया था, वह मुझको याद है; अतःएक व्रतलेनेके निषेधके सिवा, जो मेरे आधीन हो वह तू माँग ले"

उस समय कैकेयीने माँगाः—"हे स्वामी! यदि आप स्वयं दीक्षा लेते हैं, तो यह सारी पृथ्वी मेरे पुत्र भरतको दीजिए।"

तत्काल ही दशरथने उत्तर दियाः—"यह पृथ्वी अभी ही लेले।" फिर उन्होंने लक्ष्मण सहित रामको बुलाया और कहाः—"हे वत्स! एकवार कैकेयीने मेरा सारथिपन किया था। उस समय मैंने इसको वरदान देनेका वचन दिया था। उस वरदान-वचनके एवजमें यह इस समय भरतको राज्य दिलाना चाहती है।"

राम हर्षित होकर बोले:—"मेरी माताने मेरे महान पराक्रमी बंधु भरतको राज्य मिलनेका वरदान माँगा, यह

बहुत ही श्रेष्ठ किया। हे पिताजी आप कृपा करके मुझसे इस विषयमें सलाह लेते हैं। मगर मुझे इससे दुःख होता है। क्योंकि लोगोंमें यह मेरे अविनयी होनेकी सूचनाका कारण होता है। हे तात! आप संतुष्ट होकर यह राज्य चाहे किसीको दीजिए। मैं तो आपके एक तुच्छ प्यादा समान हूँ। मुझे निषेध करनेका या सम्मति देनेका कुछ भी अधिकार नहीं है। भरत है वह मैं ही हूँ। हम दोनों आपके लिए समान हैं। अतः बड़े हर्षके साथ भरतको राज्य सिंहासन पर बिठाइए।"

रामके वचन सुनकर, दशरथको विशेष प्रीति और विस्मय उत्पन्न हुए। फिर दशरथ तदनुसार करनेकी मंत्रियोंको आज्ञा देने लगे, इतनेहीमें भरत बोल उठे:—"हे स्वामी! आपके साथ व्रत लेनेकी मैंने पहिले ही आपसे प्रार्थना की थी, इस लिए किसीके कहनेसे उसको अन्यथा करना किसी तरह योग्य नहीं है।"

दशरथने कहा:—"हे वत्स! मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ मत कर। तेरी माताको मैंने पहिले वरदान दिया था। उसने चिरकालसे मेरे पास धरोहरकी तौरपर उसको रख रक्खा था। वह आज उसने माँग लिया है; वह तुझको राज्य दिलाना चाहती है। इस लिए हे पुत्र तेरी माताकी और मेरी आज्ञाको अन्यथा करना तेरे लिए योग्य नहीं है।"

फिर रामने भरतसे कहा:—" हे भ्राता! यद्यपि तुम्हारे हृदयमें राज्यप्राप्तिका लेश मात्र भी गर्व नहीं है–राजकी लेश भी चाह नहीं है; तथापि पिताके वचनको सत्य करनेके लिए राज्यको ग्रहण करो।"

रामके ऐसे वचन सुन, भरतकी आँखोंमें पानी भर आया। वे रामके चरणोंमें गिर, हाथ जोड़, गद्गद स्वर हो, कहने लगे:—" हे पूज्य बन्धो! पिताके लिए और आप जैसे महात्माओंके लिए मुझको राज्य देना योग्य है; परन्तु मेरे जैसोंके लिए ग्रहण करना योग्य नहीं है। क्या मैं राजा दशरथका पुत्र नहीं हूँ? क्या मैं भी आपके समान आर्यका अनुज बन्धु नहीं हूँ? कि जिससे मैं गर्व करूँ और सचमुच ही मातृमुखी कहलाऊँ।"

राम, लक्ष्मण और सीताका वनगमन।

यह सुनकर रामने दशरथसे कहा:—" मेरे यहाँ होते हुए भरत राज्यको ग्रहण नहीं करेगा। इस लिए मैं वनवास करनेको जाता हूँ।" इतना कह, पिताकी आज्ञा ले, भक्तिसे नमस्कार कर, राम हाथमें धनुष ले, गलेमें तरकश डाल, वहाँसे रवाना हुए। भरत उच्च स्वरसे रुदन करने लगे। रामको वनमें जाते देख अत्यंत स्नेहकातर राजा दशरथ वारंवार मूर्च्छित होने लगे।

राम वहाँसे निकल अपनी जननी अपराजिताके पास जाकर बोले:—" हे माता! मैं जैसे तुम्हारा पुत्र हूँ वैसे

ही भरत भी तुम्हारा पुत्र है । अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिए पिताजीने उसको राज्य दिया; परन्तु मेरे यहाँ होनेसे उसको वह ग्रहण नहीं करता है; इस लिए मुझे वन-वासके लिए जाना योग्य है । मेरी अनुपस्थितिमें भरतको विशेष प्रसाद पूर्ण दृष्टिसे देखना । मेरे वियोगसे कभी कातर मत होना । ”

रामकी बात सुन, देवी, मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर गई । दासियोंने चंदनका जल छिड़का; स्वस्थ होकर कौशल्या बोलीः—“ अरे ! मुझको स्वस्थ किसने किया ! मुझको किसने जिलाया ! मेरी सुख मृत्युके लिए मूर्च्छा ही उत्तम है । क्यों कि जीवित रह कर मैं रामका विरह कैसे सह सकूँगी ? रे कौशल्या ! तेरा पति दीक्षा लेगा और तेरा पुत्र वनमें जायगा, यह सुनकर, भी तेरा कलेजा नहीं फट जाता है, इससे वह वज्रमय जान पड़ता है । ”

रामने फिरसे कहाः—“ हे माता ! आप मेरे पिताकी पत्नी होकर, पामर स्त्रियोंकी भाँति यह क्या कर रही है ? सिंहनीका बच्चा अकेला ही वनमें फिरनेको जाता है, तो भी सिंहनी स्वस्थ होकर रहती है; वह लेशमात्र भी नहीं घब-राती है । हे माता ! प्रतिज्ञा किया हुआ जो वरदान है, वह मेरे पिताके सिर ऋण है । (उनको ऋणमुक्त करना मेरा कर्तव्य है) यदि मैं यहाँ रहूँ और भरत राज्य न ले, तो फिर पिता ऋणमुक्त कैसे हों ?

इस भाँति युक्ति वचनोंसे माता कौशल्याको समझा, दूसरी माताओंको भी नमस्कार कर राम बाहिर निकले।

पश्चात सीता दूरहीसे दशरथ राजाको नमस्कार कर, अपराजिता देवीके पास गई, और रामके साथ वनमें जानेकी उन्होंने आज्ञा माँगी।

अपराजिता देवी जानकीको गोदमें बिठा, बालाकी भाँति किंचित उष्ण नेत्रजलसे स्नान कराती हुई बोलीः- "हे वत्से! विनीत रामचंद्र पिताकी आज्ञासे वनमें जाता है; उस, नरसिंह, पुरुषके लिए यह कुछ कठिन नहीं है। परन्तु तेरा तो जन्मसे ही देवीकी भाँति, उत्तम वाहनोंमें लालन हुआ है; फिर तू पैदल चलनेकी व्यथा कैसे सह सकेगी? कमलके उदर समान, सुकुमारतासे, तेरा शरीर कोमल है; वह जब आताप आदिसे पीड़ित होगा, तब रामको भी क्लेश होगा। इस लिए पतिके साथ जाने, और अनिष्ट कष्ट सहनेके लिए, न मैं निषेध ही करनेकी उत्सुकता रखती हूँ और न आज्ञा ही देने की।"

यह सुनकर, शोक रहित सीता प्रातःकालीन विकासित कमलके समान प्रफुल्ल मुख हो, अपराजिताको नमस्कार कर बोलीः—"हे देवी, मेघके पीछे सदैव बिजली रहती है, इसी भाँति मैं भी रामके साथ जाती हूँ। मार्गमें यदि कुछ कष्ट होगा तो, आपके ऊपर जो मेरी भक्ति है, वह उसे दूर कर देगी।"

इतना कह, कौशल्याको फिरसे नमस्कार कर, अपने आत्मामें, आत्माराम ही की भाँति, रामका ध्यान करती हुई सीता भी बाहिर निकली ।

सीताको रामके साथ वनमें जाते देख, नगरकी स्त्रियोंका शोकसे हृदय भर आया। वे अत्यंत गद्गद कंठ हो, कहने लगीं:—" अहो! ऐसी अतीव पतिभक्तिसे जानकी, पतिको देवतुल्य माननेवाली स्त्रियोंमें, आज दृष्टांतरूप हो गई है। इस उत्तम सतीको कष्टका किंचित भी भय नहीं है। अहा! यह अपने अत्युत्तम शीलसे अपने दोनों कुलोंको पवित्र बना रही है।"

रामके वन-गमनकी बात सुनकर, लक्ष्मणकी क्रोधाग्नि भभक उठी। वे हृदयमें सोचने लगे—" मेरे पिता दशरथ तो प्रकृतिसे ही सरल हैं; परन्तु स्त्रियाँ स्वभावतः ही सरल नहीं होती हैं। नहीं तो कैकेयी चिरकाल तक वरदान रखकर, इसी समय उसको कैसे माँग लेती? पिता दशरथने भरतको राज्य दिया और अपने ऊपरसे ऋणका बोझा उतार पितृओंको ऋणके भयसे मुक्त किया। अब मैं निर्भीक हो, अपने क्रोधको शान्त करनेके लिए उस कुलाधम भरतसे वापिस राज्य छीन लूँगा और रामको गद्दी पर बिठाऊँगा।

मगर राम महा सत्यवान हैं। इस लिए तृणवत छोड़े हुए राज्यको वे पुनः ग्रहण नहीं करेंगे; और पिताको भी

मेरी इस कृतिसे दुःख होगा। पिताको दुःख देना मुझे अभीष्ट नहीं है। अतः भरत भले राज्य करो, मैं तो एक प्यादाकी भाँति रामके साथ वनमें जाऊँगा।'

ऐसा सोच सौमित्रि[1] पिताकी आज्ञा ले, अपनी माता सुमित्राके पास गये। माताको प्रणाम करके बोलेः—"हे माता! राम वनमें जाते हैं, इस लिए मैं भी उनके साथ जाऊँगा। क्योंकि समुद्र विना मर्यादा नहीं रहती वैसे ही रामके विना लक्ष्मण भी अकेला रहनेमें असमर्थ है।"

पुत्रके वचन सुनकर, हृदयमें कुछ धीरज धर, सुमित्रा बोलीः—"वत्स! तू धन्य है! जो मेरा पुत्र हो, वह ज्येष्ठ बंधुका ही अनुगमन करे। हे वत्स! भद्र राम मुझको, बहुत देर हुई नमस्कार करके गये हैं। अतः तू विलंब न कर, शीघ्र जा, नहीं तो उनसे दूर पड़जायगा।"

माताके वचन सुन लक्ष्मणने माताको प्रणाम किया और कहाः—"माता! आपको धन्य है! आपही वास्तविक माता हैं।"

"फिर लक्ष्मण कौशल्याको प्रणाम करने गये। कौसल्यको प्रणाम करके उन्होंने कहाः—"माता! मेरे आर्यबंधु अकेले वनमें गये हैं; इस लिए मैं भी उनके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहा हूँ; मुझे भी आज्ञा दीजिए।"

१—सुमित्राका पुत्र लक्ष्मण.

कौशल्याने आँखोंमें आँसू भरके कहाः—" वत्स ! मैं मंदभाग्या मारी जारही हूँ; क्योंकि तू भी मुझको छोड़कर वनमें जा रहा है। हे लक्ष्मण ! रामके विरहसे पीडित मेरे हृदयको आश्वासन देनेके लिए तू तो यहीं रह जा। "

लक्ष्मणने कहाः—" हे माता ? आप रामकी जननी हो, अधीर मत बनो। मेरे बन्धु दूर चले जा रहे हैं; मैं शीघ्र ही उनके पीछे जाऊँगा। अतः हे देवी ! मुझे न रोको। मैं सदैव रामके आधीन हूँ। "

ऐसा कह, प्रणामकर धनुषबाण हाथमें ले, तरकश गलेमें डाल, लक्ष्मण शीघ्र ही दौड़कर राम, सीताके पास जा पहुँचे।

फिर प्रफुल्ल मुख त्रिमूर्ति (राम, लक्ष्मण और सीता) वनमें जानेको नगरसे बाहिर निकले। उनका जाना ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे क्रीडा करनेके लिए वनमें जा रहे हैं।

निज प्राण समान राम, लक्ष्मण और सीताको नगर-वासियोंने जब नगरके बाहिर जाते देखा, तब वे अतीव व्याकुल हुए। वे अति स्नेहके साथ रामके पीछे दौड़े हुए जानेलगे और क्रूर कैकेयीको बहुत बुरा भला कहने लगे।

राजा दशरथ भी अन्तः पुरके परिवार सहित स्नेह-रज्जुसे खिंचकर रुदन करते हुए तत्काल ही रामके पीछे चले।

जब राजा और प्रजाजन रामके पीछे नगरके बाहिर निकल गये, तब सारी अयोध्या शून्य-उजड़-दिखाई देने लगी।

रामने पिता और माताओंको विनयपूर्वक समझाकर, बड़ी कठिनतासे वापिस लौटाया। फिर बहुत स्नेहपूर्ण उचित कथन सहित पुरवासियोंको भी वापिस फेर, राम शीघ्रतासे लक्ष्मण और सीता सहित आगे चले।

मार्गमें प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके लोग-वृद्ध पुरुष-रामसे अपने यहाँ ठहरनेकी प्रार्थना करते थे; परन्तु वे सबकी प्रार्थना अस्वीकार कर आगे बढ़े चले जाते थे।

दशरथकी आज्ञासे रामको लानेके लिए सामंतोंका जाना।

उधर भरतने राज स्वीकार नहीं किया। प्रत्युत वह बन्धु-विरह सहनेमें असमर्थ हो, माता कैकेयी पर बहुत कुपित हुआ।

दीक्षा ग्रहण करनेके उत्सुक दशरथ राजाने रामको, राज्य ग्रहण करनेके लिए, लक्ष्मण सहित, वापिस लौटा लानेके लिए, सामंतों और मंत्रियोंको भेजा।

राम पश्चिमकी ओर जा रहे थे। सामंत शीघ्र ही उनके पास पहुँच गये। उन्होंने रामको दशरथकी, वापिस अयोध्यामें लौटने की, आज्ञा सुनाई। दीन बने हुए, उन मंत्रियोंने और सामंतोंनें बहुत अनुनय विनय किया; परन्तु राम वापिस नहीं लौटे।

'महतां हि प्रतिज्ञा तु नचलत्यद्रिपादवत्।'

(बड़े पुरुषोंकी प्रतिज्ञा पर्वतके समान अचल रहती है।)

रामने उनको वारंवार पीछे फिर जानेको कहा; परन्तु रामको लौटा लेजानेकी आशासे वे इनके पीछे पीछे ही चले।

रामको बुलानेके लिए भरत और कैकेयीका जाना।

राम, लक्ष्मण और सीता आगे बढ़ते ही गये। वे शिकारी प्राणियोंके स्थानरूप एक निर्जन और घनेवृक्षों-वाली पारियात्रा–विंध्या–अटवीमें जा पहुँचे। वहाँ मार्गमें गंभीर आवर्त–घेरे–और विशाल प्रवाह वाली गंभीरा नामा नदी आई। उसके किनारे खड़े होकर रामने सामंतोंसे कहा:—"तुम यहाँसे अब चले जाओ; क्योंकि आगे बहुत ही कष्टकारी मार्ग आवेगा। पिताको हमारे कुशल समाचार कहना और अबसे भरतको पिताजीके समान और मेरे समान समझकर, उनकी सेवा करना।"

"रामकी चरणसेवाके अयोग्य हमें धिक्कार है!" ऐसा कह, रुदन करते और अश्रुजलसे वस्त्रोंको भिगोते हुए, सामंत बड़ी कठिनतासे वापिस लौटे। सीता, लक्ष्मण और राम पारजानेके लिए नदीमें उतरे।

तीरपर खड़े हुए सामंतोंने साश्रुनयन उनको नदीके पार गये देखा। राम जब दिखनेसे बंद होगये तब, सामंतादि बड़े दुःखी होकर अयोध्याको लौटे। उन्होंने

सब समाचार दशरथ राजाको कहे । सुनकर राजाने भरतसे कहाः—"हे वत्स! राम, लक्ष्मण तो वापिस नहीं आये इस लिए अब तू राज्य ग्रहणकर। मेरी दीक्षामें विघ्न मत बन ।"

भरतने उत्तर दियाः—"हे तात! मैं कदापि राज्य ग्रहण नहीं करूँगा । मैं स्वयं जाऊँगा और अपने ज्येष्ठ बंधुको, प्रसन्न करके लौटा लाऊँगा ।"

उसी समय कैकेयी भी वहाँ आई और बोलीः—"हे स्वामी? आपने तो अपनी सत्य-प्रतिज्ञाके अनुसार भरतको राज्य दिया; परन्तु यह आपका विनयी पुत्र राज्यको ग्रहण नहीं करता है; इससे इसकी दूसरी माताओंको और मुझे भी बहुत दुःख हो रहा है । यह सब विचार रहिता, मुझ पापिनी मूर्खाने ही किया है। अहो! आप पुत्रवान होनेपर भी यह राज अभी राजा विहीन हो गया है। कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभाका दुःश्रव रुदन सुनकर मेरा हृदय भी फटा जाता है। हे नाथ! मैं भरतके साथ जाकर वत्स राम और लक्ष्मणको वापिस लौटा लाऊँगी। इसलिए मुझको उनके पास जानेकी आज्ञा दीजिए।"

राजा दशरथने हर्षपूर्वक आज्ञा दी। इस लिए कैकेयी, भरत और मंत्रियोंको साथ लेकर, शीघ्रताके साथ रामके पास जानेको चली। कैकेयी और भरत छः दिनके अंदर

रामके पास वनमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने राम लक्ष्मण और सीताको एक वृक्षके नीचे बैठे हुए देखा । उनको देखते ही कैकेयी रथसे उतर पड़ी और 'हे वत्स ! हे वत्स !' कहती हुई, प्रणाम करते हुए रामका मस्तक चूमने लगी। लक्ष्मण और सीताने भी कैकेयीको प्रणाम किया। उनको बाहुसे दबाकर वह ऊँचे स्वरसे रोने लगी।

भरतने आँखोंमें आँसू भरके रामके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वह खेदरूपी विषसे व्याप्त होकर, तत्काल ही मूर्छित होगया।

वनमें, रामका, भरतको राज्याभिषेक करना।

चेत होनेपर रामने भरतको भली प्रकारसे समझाया, तब भरत विनयपूर्वक बोलाः—"हे आर्यबन्धु ! अभक्तकी भाँति मेरा त्याग करके आप यहाँ कैसे चले आये ? मेरे सिरपर माताके दोषसे कलंक लगा है कि-भरत राज्यका लोभी है। अतः उस दोषको आप मुझे वनमें अपने साथ लेजाकर, मिटादें। अथवा हे भ्राता ! आप वापिस अयोध्यामें चलकर राज्यलक्ष्मी ग्रहण करें। ऐसा करनेसे मेरा कौलीन-शल्य[1] मिट जायगा। आप राजा होंगे तो ये जगन्मित्र सौमित्र (लक्ष्मण) आपके मंत्री होंगे; मैं (भरत) आपका प्रतिहारी बनूँगा और शत्रुघ्न छत्र रखनेका कार्य करेगा।"

---

१ कुलीनताका नाशक—अधमकुल बनानेवाला—शल्य।

भरतके इतना कह चुकनेपर कैकेयी आँखोंमे पानी भरकर बोलीः—“ हे वत्स ! अपने भाईकी बात मान लो; क्योंकि तुम सदा भ्रातृ–वत्सल हो । इस विषयमें न तुम्हारे पिताका दोष है और न भरतका ही कुछ दोष है । यह सब अपराध स्त्री स्वभाव सुलभ मात्र कैकेयीका ही है । एक कुलटापनको छोड़कर, स्त्रियोंमें कुटिलता आदि जो भिन्न २ दोष होते हैं, वे सब दोष खानिकी भाँति, मेरेमें हैं । पतिको, पुत्रोंको और उनकी माताओंको दुःख उत्पन्न करने वाला जो कर्म मैंने किया है, उसके लिए हे वत्स ! मुझे क्षमा करो । क्योंकि तुम भी मेरे ही पुत्र हो ।”

राम बोलेः—“ हे माता ! मैं दशरथके समान पिताका पुत्र होकर अपनी प्रतिज्ञा कैसे छोड़ूँ ? पिताने भरतको राज्य दिया; मैंने उसमें सम्मति दी । अब हम दोनोंकी स्थितिमें वह अन्यथा कैसे हो सकता है ? अतः हमारी दोनोंकी आज्ञासे भरतको राजा बनना चाहिए । पिताके समान मेरी आज्ञा भी भरतके लिए अनुल्लंघनीय है । ”

इतना कह सीताके लाए हुए जलसे, सारे सामंतोंकी साक्षीसे, रामने वहीं भरतका राज्याभिषेक किया । पश्चात कैकेयीको प्रणामकर, भरतसे मधुर संभाषण कर, रामने दोनोंको अयोध्याकी ओर रवाना किया और आप दक्षिण दिशाकी ओर चले ।

पाँचवाँ सर्ग।

सीता हरण ।

वज्रकरणका उद्धार।

मार्गमें चलते हुए सीता थक गई। उनको विश्राम देनेके लिए यक्षपति कुबेरकी भाँति, रामचंद्र एक वडके नीचे बैठे। चारों तरफसे उस प्रदेशको देख कर रामने लक्ष्मणसे कहाः–" यह प्रदेश किसीके भयसे अभी ही उजड़ा हुआ जान पड़ता है। देखो उद्यानोंके–बागीचोंके–धोरे अभी तक सूखे नहीं हैं; गन्नोंके खेत ज्यों के त्यों भरे हुए हैं; और खले अन्नसे भरे पड़े हैं। ये चिन्ह बताते हैं कि, यह प्रदेश अभी ही उजड़ हुआ है।'

उस समय कोई पुरुष उधर होकर जा रहा था, उससे रामचंद्रने पूछाः–" हे भद्र ! यह प्रदेश किस कारणसे उजड़ा है ?" उसने उत्तर दियाः—

" इस देशका नाम अवंति देश है। इसमें अवंति नामा नगरी है। उसमें सिंहके समान दुःसह सिंहोदर राजा राज्य करता है। उसके आधीन इस देशमें दशांगपुर नामा नगर है; उस नगरमें वज्रकरण नामा सिंहोदरका एक सामंत राज्य करता है। एकवार वह वज्रकरण वनमें शिकार खेलनेको

गया। वहाँ उसने प्रीतिवर्द्धन नामा एक मुनिको ध्यान करते हुए देखा। उसने उनसे पूछाः—" ऐसे घोर जंगलमें तुम वृक्षकी भाँति कैसे खड़े हो ? "

मुनिने कहाः—" आत्महित करनेके लिए। " राजाने पूछाः—" इस अरण्यमें खाने पीने विना रहनेसे तुह्मारा आत्महित कैसे होता है ? "

योग्य प्रश्न समझकर, मुनिने उसको आत्महित कारक धर्म सुनाया। सुनकर बुद्धिमान वज्रकरणने तत्काल ही श्रावकपन स्वीकार किया और यह दृढ नियम धारण किया कि, मैं अर्हत देव और जैनमुनिके अतिरिक्त किसीको नमस्का नहीं करूँगा। "

फिर मुनिको वंदना करके वज्रकरण दशांगपुरमें गया। श्रावकपन पालते हुए एकवार उसने सोचा कि—मैंने देव, गुरुके सिवा किसीको नमस्कार नहीं करनेका नियम लिया है; उस नियमको निभानेके लिए यदि मैं सिंहोदरको नमस्कार नहीं करूँगा तो वह मेरा वैरी होगा; इस लिए इसका कुछ उपाय करना चाहिए।

ऐसा सोच उस बुद्धिमान सामंतने अपनी मुद्रिकामें मुनिसुव्रतस्वामीकी मणिमय मूर्ति स्थापन की। फिर वह अपनी मणिमें रही हुई मूर्तिको नमस्कार कर सिंहोदरको धोखा देने लगा।

' मायोपायो बलीयसी '

(अतिबलवान पुरुषोंके आगे मायाका उपाय ही चलता है।) वज्रकरणके इस कपटका वृत्तान्त किसीने सिंहोदर राजासे कह दिया—

'खलाः सर्वंकषा खलु ।'

(दुष्ट पुरुष सदा सबको-छुरीकी तरह-हानि पहुँचाने वाले ही होते हैं।

वज्रकरणका वृत्तान्त जानकर, सिंहोदर वज्रकरणपर कुपित हो सर्पकी भाँति फूँकारे करने लगा। । यह बात किसीने जाकर वज्रकरणको सुनाई। उसने उससे पूछाः—
"तूने कैसे जाना कि सिंहोदर मुझपर कुपित हुआ है।"

उसने उत्तर दियाः—"कुंदनपुरमें एक समुद्र-संगम नामा श्रावक रहता है, उसका मैं 'विद्युदंग' नामा पुत्र हूँ। मेरी माताका नाम 'यमुना' है। मैं जवान हुआ तब कितना ही सामान लेकर उसको बेचनेके लिए मैं उज्जयनी नगरीमें गया। वहाँ, मृगनयनी 'कामलता' नामा, एक वेश्याको मैंने देखा। उसको देखते ही मैं काम-देवका शिकार बनगया । एक ही रात इसके पास रहूँगा, यह सोच कर मैं उसके पास गया और, उससे समागम किया; परन्तु जालमें जैसे मृग फँस जाता है, वैसे ही म भी उसकी आसक्ति-जालमें दृढ़तासे बँध गया । और उम्र भर परिश्रम करके मेरे पिताने जो द्रव्य एकत्रित किआ था उसको मैंने छः महीनेमें ही उड़ादिया।"

एकवार कामलताने मुझसे कहाः—" सिंहोदर राजाकी पट्टरानी श्रीधराके जैसे कुंडल मुझे भी ला दो।" मैंने सोचा—" मेरे पास कुछ द्रव्य नहीं है, फिर इसके लिए वैसे कुंडल कैसे बनवाऊँ ? उसीके कुंडल चुरालाऊँ तो अच्छा है।"

ऐसा सोच, साहसी बन, खात पाड़कर—सेंध लगा कर-मैं राजाके महलमें घुसा। उस समय रानी 'श्रीधरा' की और सिंहोदरकी बातें हो रही थीं, वे मैंने सुनीं। सिंहोदराने पूछाः—" हे नाथ! आज उद्वेगीकी भाँति आपको नींद क्यों नहीं आती है ?"

सिंहरथने उत्तर दियाः—" हे देवी! जबतक मुझको प्रणाम नहीं करनेवाले वज्रकरणको नहीं मार लूँ, तब तक मुझको नींद कैसे आसकती है ? हे प्रिये! प्रातःकाल ही मैं, मित्र, पुत्र, बन्धु बाँधव सहित, वज्रकरणको मारूँगा। तब ही सोऊँगा—तब तक नींद नहीं लूँगा।"

उसके ऐसे वचन सुन, साधर्मीपनकी प्रीतिके कारण कुंडलकी चोरी छोड़, तत्काल ही ये समाचार सुनानेको मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

ये समाचार सुन वज्रकरणने अपनी नगरीको तृण और अन्नसे अधिक पूर्ण कर ली। थोड़ी देरके बाद पर-चक्रसे—शत्रुसेनासे—उड़ती हुई रजको उसने आकाशमें

दशांगपुर नगरको घेर लिया; जैसे कि चंदनके वृक्षको सर्प घेर लेते हैं। फिर उसने एक दूत भेजकर वज्रकरणसे कहलाया:—" हे कपटी ! अँगुलीमें अँगूठी पहिन कर, प्रणाम करनेमें तूने मुझको बहुत दिनों तक धोका दिया है। अतः अँगुलीमेंसे अँगूठी निकाल कर मुझे प्रणाम कर; नहीं तो तू अपने कुटुंब सहित, शीघ्र ही यमराजके घर पहुँचाया जायगा। "

वज्रकरणने उत्तर दिया:—" मेरे नियम है, कि मैं अर्हत और साधुके सिवा दूसरे किसीको प्रणाम नहीं करूँ। इसी लिए मैंने ऐसा किया है। मुझे पराक्रमका कुछ अभिमान नहीं है; परन्तु धर्मका अभिमान है। अतः नमस्कारके सिवा मेरा जो कुछ है, उसको आप यथारुचि ग्रहण करो और मुझे एक धर्म द्वार दो, जिससे धर्मके लिए मैं यहाँसे कहीं अन्यत्र चला जाऊँ। "

' धर्म एवास्तु मे धनं। '

(धर्म ही मेरा धन होओ।)

वज्रकरणने ऐसा कहलाया। मगर सिंहोदरने नहीं माना।

' धर्ममधर्मं वा गणयंति न मानिनः। '

(मानी पुरुष धर्माधर्मको नहीं गिनते हैं।)

तभीसे सिंहोदर वज्रकरण सहित उस नगरको घेरकर पड़ा हुआ है। उसीके भयसे यह सारा प्रदेश उजड़ गया है।

एकवार कामलताने मुझसे कहाः—" सिंहोदर राजाकी पट्टरानी श्रीधराके जैसे कुंडल मुझे भी ला दो । " मैंने सोचा—"मेरे पास कुछ द्रव्य नहीं है, फिर इसके लिए वैसे कुंडल कैसे बनवाऊँ ? उसीके कुंडल चुरालाऊँ तो अच्छा है । "

ऐसा सोच, साहसी बन, खात पाड़कर—सेंध लगा कर-मैं राजाके महलमें घुसा । उस समय रानी 'श्रीधरा' की और सिंहोदरकी बातें हो रही थीं, वे मैंने सुनीं । सिंहोदराने पूछाः—" हे नाथ ! आज उद्वेगीकी भाँति आपको नींद क्यों नहीं आती है ? "

सिंहरथने उत्तर दियाः—" हे देवी ! जबतक मुझको प्रणाम नहीं करनेवाले वज्रकरणको नहीं मार लूँ, तब तक मुझको नींद कैसे आसकती है ? हे प्रिये ! प्रातःकाल ही मैं, मित्र, पुत्र, बन्धु बाँधव सहित, वज्रकरणको मारूँगा । तब ही सोऊँगा—तब तक नींद नहीं लूँगा । "

उसके ऐसे वचन सुन, साधर्मीपनकी प्रीतिके कारण कुंडलकी चोरी छोड़, तत्काल ही ये समाचार सुनानेको मैं तुम्हारे पास आया हूँ । "

ये समाचार सुन वज्रकरणने अपनी नगरीको तृण और अन्नसे अधिक पूर्ण कर ली । थोड़ी देरके बाद पर-चक्रसे—शत्रुसेनासे—उड़ती हुई रजको उसने आकाशमें देखा । सिंहोदरने बातकी बातमें, बहुत बडी सेना सहित

दशांगपुर नगरको घेर लिया; जैसे कि चंदनके वृक्षको सर्प घेर लेते हैं। फिर उसने एक दूत भेजकर वज्रकरणसे कहलायाः—" हे कपटी ! अँगुलीमें अँगूठी पहिन कर, प्रणाम करनेमें तूने मुझको बहुत दिनों तक धोका दिया है। अतः अँगुलीमेंसे अँगूठी निकाल कर मुझे प्रणाम कर; नहीं तो तू अपने कुटुंब सहित, शीघ्र ही यमराजके घर पहुँचाया जायगा। "

वज्रकरणने उत्तर दियाः—" मेरे नियम है, कि मैं अर्हत और साधुके सिवा दूसरे किसीको प्रणाम नहीं करूँ। इसी लिए मैंने ऐसा किया है। मुझे पराक्रमका कुछ अभिमान नहीं है; परन्तु धर्मका अभिमान है। अतः नमस्कारके सिवा मेरा जो कुछ है, उसको आप यथारुचि ग्रहण करो और मुझे एक धर्म द्वार दो, जिससे धर्मके लिए मैं यहाँसे कहीं अन्यत्र चला जाऊँ। "

' धर्म एवास्तु मे धनं। '

(धर्म ही मेरा धन होओ।)

वज्रकरणने ऐसा कहलाया। मगर सिंहोदरने नहीं माना।

' धर्ममधर्म वा गणयंति न मानिनः। '

(मानी पुरुष धर्माधर्मको नहीं गिनते हैं।)

तभीसे सिंहोदर वज्रकरण सहित उस नगरको घेरकर पड़ा हुआ है। उसीके भयसे यह सारा प्रदेश उजड़ गया है।

इस राजविग्रहको देख कर, मैं भी सकुटुंब यहाँ भाग आया हूँ। आज यहाँ कई घर जल गये। उनके साथ ही मेरी झौंपड़ी भी जल गई। इस लिए मेरी क्रूर स्त्रीने, धनियोंके इन सूने घरोंमेंसे सामग्री चोर लानेको भेजा है। दैवयोगसे उसके दुर्वचनोंका भी शुभ फल मिला; तुम्हारे समान देवपुरुषके मुझको दर्शन हुए।"

उस दरिद्रीने इस भाँति सारा वृत्तान्त रामको कह सुनाया। करुणानिधि रघुवंशी रामने उसको एक रत्न सुवर्णमय सूत्र दिया। फिर उसको रवाना करके राम दशांगपुरके पास गये, और नगर बाहिरके चैत्यमें चंद्रप्रभ, प्रभुको नमस्कार कर वहीं रहे।

तत्पश्चात रामकी आज्ञासे लक्ष्मण, दशांगपुरमें वज्रकरणके पास गये।

'अलक्ष्याणां ह्यसौ स्थितिः।'

(अलक्ष्य पुरुषोंकी स्थिति ऐसी ही होती है।)

वज्रकरणने उनको आकृतिसे उत्तम पुरुष समझकर कहाः—" हे महाभाग! मेरे भोजन—आतिथ्यको स्वीकार करो।"

लक्ष्मणने उत्तर दियाः—" मेरे प्रभु राम अपनी पत्नी सीता सहित नगरके बाहिर स्थित हैं; उनको पहिले जिमाऊँगा। फिर मैं भोजन करूँगा।"

वज्रकरणने तत्काल ही, नाना भाँतिके व्यंजनोंवाला

भोजन अपने मनुष्योंके द्वारा, लक्ष्मणके साथ, रामके पास पहुँचाया।

भोजन करके रामने, कुछ बातें बता, लक्ष्मणको सिंहोदर राजाके पास भेजा। लक्ष्मणने सिंहोदर राजाके पास जाकर मधुर वचनोंमें कहाः—"सारे राजाओंको दासके समान बनानेवाला दशरथ राजाका पुत्र भरत राजा, तुमको, वज्रकरणसे विरोध न करनेका, आदेश करते हैं।"

यह सुनकर सिंहोदरने कहाः—"भरतराजा अपनी भक्ति करनेवाले सेवकों पर ही कृपा करते हैं दूसरों पर नहीं करते; इसी भाँति मेरा यह दुष्ट सामंत वज्रकरण मुझको नमस्कार नहीं करता है फिर तुम ही कहो कि, मैं इसपर कैसे कृपा कर सकता हूँ?"

लक्ष्मणने कहाः—"वज्रकरण तुम्हारे प्रति अविनयी नहीं है। उसने, धर्मके अनुरोधसे दूसरोंको प्रणाम करनेकी प्रतिज्ञा ली है इसी लिए वह तुमको प्रणाम नहीं करता है। इसलिए तुम वज्रकरण पर कोप न करो। फिर राजा भरतकी आज्ञा मानना भी तुम्हारे लिए आवश्यक है; क्योंकि भरत राजा समुद्रांत पृथ्वीपर राज्य करनेवाला है।"

लक्ष्मणके ऐसे वचन सुन, सिंहोदर, क्रोध करके बोलाः—"यह भरत राजा कौन है? जो वज्रकरणका पक्षकर, पागल हो मुझको इस भाँति कहलाता है।"

सुनकर लक्ष्मणकी कोपसे आँखे लाल हो आईं, उनके होठ फड़कने लगे। वे बोलेः–" रे मूर्ख ! क्या तू राजा भरतको नहीं जानता ? ले इसी समय मैं उनकी पहिचान करा देता हूँ। उठ, युद्धके लिए तैयार हो। चंदन गोकी भाँति तू अबतक मेरी भुजारूपी वज्रसे ताडित नहीं हुआ है, इसी लिए ऐसे बोलता है।

सुनकर सिंहोदर, बालक जैसे भस्म-राखसे दबी हुई अग्निको स्पर्श करनेके लिए तत्पर होता है वैसे ही, लक्ष्मणसे युद्ध करनेको–लक्ष्मणको मारनेको–सेनासहित तैयार हुआ।

लक्ष्मण अपनी भुजाओंसे, कमलनालके समान, हाथीके बाँधनेके स्तंभको उखाड़–दंड ऊपर उठाए हुए यमराजाकी भाँति–उसके द्वारा शत्रुओंको मारने लगे। फिर उन महाबाहुने उछलकर हाथीपर बैठे हुए सिंहोदरको, उसीके कपड़ेसे, गलेमेंसे बाँध लिया; जैसे कि कोई पशुको बाँध लेता है।

दशांगपुरके लोग आश्चर्यसे देखते रहे; और लक्ष्मण उसको खींचकर रामचंद्रके पास ले गये। रामको देख, सिंहोदरने नमस्कार किया, और कहाः—" हे रघुकुलनायक ! मैं नहीं जानता था कि आप यहाँ पधारे हैं। अथवा हे देव ! मेरी परीक्षा करनेके लिए आपने ऐसा किया है ? देव ! यदि आप ही अपना पराक्रम दिखानेको

तत्पर हो जायँगे, तो फिर हमारा जीवित रहना भी कठिन होजायगा; हम न जी सकेंगे। हे नाथ! मेरे इस अज्ञात दोषको क्षमा करो; और मेरे लिए जो कर्तव्य हो वह बताओ। क्योंकि स्वामीका कोप सेवक पर केवल उसे शिक्षा देनेहीके लिए होता है; जैसे कि गुरुका शिष्य पर!"

रामने कहा:—"वज्रकरणके साथ संधि कर लो।" सिंहोदरने 'तथास्तु' कहकर स्वीकारता दी।

पश्चात रामचंद्रकी आज्ञासे वज्रकरण वहाँ गया और विनयसे रामके सामने खड़ा हो, हाथ जोड़ बोला:—"ऋषभदेव स्वामीके वंशमें आप बलभद्र और वासुदेव उत्पन्न हुए हैं; ऐसा मैंने सुना है। आज सद्भाग्यसे हमें आप दोनोंके दर्शन हुए हैं। बहुत दिनोंके बाद आपको हम पहिचान सके हैं। आप भरतार्द्धके नाथ हैं। मैं और दूसरे सब राजा आपहीके किंकर हैं। हे नाथ! मेरे स्वामी सिंहोदरको छोड़ दीजिए और इनको ऐसी शिक्षा दीजिए कि जिससे, मेरे दूसरेको नमस्कार नहीं करनेके, अभिग्रहको ये सहन करें। 'अर्हंत देव और साधु मुनिराजके सिवा दूसरोंको नमस्कार नहीं करूँगा।' प्रीतिवर्द्धन मुनिके पाससे मैंने ऐसा दृढ़ नियम लिया है।"

रामने भ्रकुटिसे संज्ञा की। सिंहोदरने वह बात स्वीकार कर ली। लक्ष्मणने सिंहोदरको छोड़ दिया। सिंहो-

दर वज्रकरणसे गले लगकर मिला । फिर सिंहोदरने, अनुजकी भाँति अपना आधा राज्य रामकी साक्षीसे वज्रकरणको दे दिया ।

दशांगपुरके राजा वज्रकरणने उज्जयनीके राजा सिंहोदरके पाससे श्रीधराके कुंडल माँगकर विद्युदंगको दिये । वज्रकरणने अपनी आठ कन्याएँ और सामंतों सहित सिंहोदरने अपनी तीनसौ कन्याएँ लक्ष्मणको दीं ।

उस समय लक्ष्मणने उनको कहाः—"अभी इन कन्याओंको तुम अपने ही पास रक्खो; क्योंकि पिताजीने अभी राज्यपर भरतको बिठाया है; इससे जिस समय मैं राज्य गद्दीपर बैठूँगा उस समय तुम्हारी कन्याओंका पाणिग्रहण करूँगा । अभी तो हमको मलयाचलपर जाकर रहना है ।"

वज्रकरणने और सिंहोदर आदिने ऐसा ही करना स्वीकार किया । फिर रामने सबको विदा किया । वे अपने अपने नगरको गये ।

लक्ष्मण और कल्याणमालाका मिलन ।

राम रातभर वहीं रहे । दूसरे दिन सवेरे ही वे एक निर्जल प्रदेशमें जा पहुँचे । सीताको वहाँ बहुत तृषा लगी । उनको और रामचंद्रको एक वृक्षके नीचे बिठा, रामकी आज्ञा ले, लक्ष्मण जल लेनेको चले ।

आगे चलते हुए अनेक कमलोंसे मंडित, प्रिय मित्रके समान वल्लभ, और आनंदजनक एक सरोवरको उन्होंने

देखा। वहाँ कुबेरपुरका 'कल्याणमाला' नामा राजा-क्रीडा करनेको आया था। उसने लक्ष्मणको देखा। वह अति दुरात्मा कामदेवके बाणोंसे तत्काल ही बिध गया।

उसने लक्ष्मणको नमस्कार करके कहाः—"आप मेरे-घर अतिथि बनिए।"

उसके शरीरमें काम विकारके चिन्ह और स्त्रीके लक्षण देखकर लक्ष्मणने सोचा-यह कोई स्त्री प्रतीत होती है; परन्तु किसी कारण वश इसने पुरुषका वेष धारण किया है; फिर कहाः—"यहाँसे थोड़ी ही दूरपर मेरे स्वामी अपनी स्त्री सहित बैठे हुए हैं; उनको भोजन कराये विना, मैं भोजन नहीं करूँगा।"

कल्याणमालाने भद्रिक आकृतिवाले और मधुरभाषी प्रधानोंको भेजकर राम और सीताको अपने यहाँ बुलाया। उन भद्र बुद्धी वालोंने जाकर राम और सीताको प्राणाम किया और आमंत्रण दिया। राम सीता सहित वहाँ गये। कल्याणमालाने उनको प्रणाम किया। फिर उसने उनके लिए एक तंबू खड़ा करवा दिया। रामने उसमें रहकर स्नानाहार किया।

तत्पश्चात कल्याणमाला, स्त्रीका वेष धारण कर अपने अन्य परिवारको छोड़, एक मंत्रीके साथ रामके पास गई। लज्जासे नम्र मुखवाली उस स्त्रीको रामने पूछाः—"हे

भद्रे! पुरुषका वेष धारण कर, तू अपने स्त्री भावोंको क्यों छिपाती है?"

कुबेरपति कल्याणमालाने कहा:—"इस कुबेरपुरमें वालिखिल्य नामक राजा था। पृथ्वीनामा उसके प्रिया थी। एकवार राणी गर्भिणी हुई, उसी समय म्लेच्छ लोगोंने कुबेरपुर पर चढ़ाई की; और वे वालिखिल्यको बाँध कर ले गये। समयपर पृथ्वीदेवीने पुत्रीको जन्म दिया; मगर बुद्धिशाली 'सुबुद्धी' नामा मंत्रीने शहरमें घोषणा करवाई कि राजाके पुत्र जन्मा है। पुत्रजन्मके समाचार सुन, यहाँके मुख्य राजा सिंहोदरने कह लाया कि, जबतक वालिखिल्य छूटकर न आवे, तबतक यह बालक ही राजा रहे। मैं अनुक्रमसे जन्मसे ही पुरुषका वेष धारण करती हुई इतनी बड़ी हुई हूँ। मेरा स्त्री होना, माता और मंत्रीके सिवा और कोई नहीं जानता है। कल्याणमालाके नामसे प्रसिद्ध होकर मैं राज्य करती हूँ।

'मंत्रिणां मंत्रसामर्थ्यात् स्यादलीकेऽपि सत्यता।'

(मंत्रियोंके मंत्र-विचार-सामर्थ्यसे असत्यमेंभी सत्यकी प्रवृत्ति हो जाती है।) मेरे पिताको छुड़ानेके लिए मैं म्लेच्छोंको बहुत धन देती हूँ। वे धन ले जाते हैं; परन्तु मेरे पिताको छोड़ते नहीं हैं। अतः हे कृपालु! आप कृपा करो और जैसे सिंहोदर राजासे वज्रकरणको छुड़ाया, है; वैसे ही म्लेच्छोंके पाससे मेरे पिताको भी छुड़वा दो।

रामने कहा:—" हम म्लेच्छोंके पाससे तेरे पिताको छुड़ाकर लावें तब तक तू, पहिलेकी तरह ही पुरुषवेष धारणकर राज्य चलाना ।"

" बड़ी कृपा होगी ।" इतना कह कल्याणमालाने, एक ओर जा; पुनः पुरुष वेष धारण कर लिया । फिर सुबुद्धी मंत्रीने कहा:—" इस कल्याणमालाके पति लक्ष्मण होओ ।" रामने उत्तर दिया:—" इस समय हम पिताकी आज्ञासे देशान्तरको जा रहे हैं; इससे हम वापिस लौटेंगे तब लक्ष्मण इसके साथ ब्याह करेंगे ।

वालिखिल्यका छुटकारा ।

ऐसा स्वीकार कर तीन दिनतक राम वहीं रहे । चौथे दिन पिछली रातको जब कि सब सो रहे थे राम सीता और लक्ष्मण सहित वहाँसे चल दिये ।

प्रातःकाल ही कल्याणमाला, जब राम, लक्ष्मण और सीता वहाँ नहीं दिखे तब, मनमें अति दुःखी हुई; खिन्न मना होकर अपने नगरमें गई; और पूर्वकी भाँति ही राज्य करने लगी ।

चलते हुए राम नर्मदा नदीके पास पहुँचे, और उसको पारकर विंध्याटवीमें घुसे । मुसाफिरोंने उनको उधर जानेसे रोका; परन्तु उन्होंने किसीकी बात न मानी । उस समय दक्षिण दिशामें एक कंटकी-शिंबलके वृक्षपर बैठे हुए कौएने कठोर शब्द किये; फिर एक दूसरे पक्षीने

क्षीर वृक्षके ऊपर बैठे हुए मधुर शब्द किये । मगर उनको सुनकर रामको हर्ष या शोक कुछ भी नहीं हुआ ।

' शकुनंचाशकुनं च गणयंति हि दुर्बलाः । '

(शकुन या अपशकुन की दुर्बल लोग ही परवाह किया करते हैं ।) आगे चलते हुए उन्होंने देखा कि-असंख्य, हाथी, रथ और घोड़ोंवाली म्लेच्छोंकी सेना देशोंका घात करनेके लिए जा रही है ।

उस सेनामें एक युवक सेनापति था । वह सीताको देखकर कामातुर हो गया । इस लिए उस स्वच्छंदाचारीने तत्काल ही अपने म्लेच्छ सिपाहियोंको आज्ञादीः- " अरे ! जाओ और इन दोनों पथिकोंको भगाकर या मारकर उस सुंदरी स्त्रीको मेरे लिए ले आओ । "

आज्ञा होते ही वे सेनापति सहित बाण और भाले आदि तीक्ष्ण आयुधोंसे रामके ऊपर प्रहार करनेके लिए दौड़ गये ।

उस समय लक्ष्मणने रामचंद्रसे कहाः—" आर्य ! कुत्तोंकी तरह मैं इन म्लेच्छोंको यहाँसे घेर कर-हाँक कर-निकाल दूँ तबतक सीता सहित आप यहीं रहें । "

इतना कह, धनुष चढ़ा, लक्ष्मणने उसकी टंकारकी । उस टंकार मात्रहीसे, सिंहनादसे जैसे हाथी घबरा जाते हैं वैसे ही, म्लेच्छ घबरा गये।

जिसके धनुषकी टंकार ही इतनी असह्य है, उसके बाणोंको सहन करनेकी तो बात ही क्या है ? ऐसे सोचता हुआ म्लेच्छ राजा तत्काल ही रामके पास आया। शस्त्र छोड़, रथमेंसे उतर, दीनमुखी हो उसने रामको नमस्कार किया। लक्ष्मणने क्रोध पूर्वक उसकी ओर देखा। म्लेच्छाधिपति बोला:—"हे देव! कौशांबीपुरमें 'वैश्वानर' नामा एक ब्राह्मण रहता है। उसके सवित्री नामा एक पत्नी है। मैं उनका 'रुद्रदेव' नामा पुत्र हूँ। मैं जन्मसे ही, क्रूर कर्म करनेवाला, चोर और परस्त्रीलंपट हुआ हूँ। कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं है; जिसको मुझ पापीने नहीं किया है।

एक वार खात पाड़ते,–सेंध लगाते– हुए, खातके मुखमें ही मुझको राजपुरुषोंने पकड़ लिया। फिर राजाज्ञासे मुझको लोग शूली पर चढ़ानेके लिए ले चले। कसाईके घरमें जैसे बकरा दीन होकर रहता है, वैसे ही दीन होकर शूलीके पास खड़े हुए मुझको एक श्रावकने देखा। उसको दया आई। अतः उसने दंडके रुपये भर कर मुझको छुड़ा दिया। "अब फिर कभी चोरी मत करना।" ऐसा कह उस महात्माने मुझको रवाना कर दिया। उसके बाद मैंने उस देशको भी छोड़ दिया।

फिरता फिरता मैं इस पल्लीमें आ पहुँचा और काकके नामसे प्रसिद्ध हो पल्ली पतिके पदको पाया। यहाँ

रहकर लुटेरोंकी सहायतासे मैं शहरोंको लूटता हूँ; और स्वयमेव जाकर राजाओंको भी पकड़ लाता हूँ।

हे स्वामी, आज व्यंतरकी भाँति मैं आपके आधीन हुआ हूँ। अतः मुझे आज्ञा दीजिए कि, मैं किंकर आपकी क्या सेवा करूँ? मेरे अविनयको आप क्षमा करो।"

रामने उसे-किरातपतिसे-कहाः-"वालिखिल्य राजाको छोड़ दे।"

तत्काल ही उसने वालिखिल्यको छोड़ दिया। इसने आकर रामको प्रणाम किया। रामकी आज्ञासे काकने वालिखिल्यको कूबर नगरमें पहुँचा दिया। वहाँ उसने अपनी कन्या कल्याणमालाको पुरुषके वेषमें देखा। फिर कल्याणमालाने और वालिखिल्यने राम लक्ष्मणका, एक दूसरेको सब वृत्तान्त सुनाया।

कपिल ब्राह्मणके घर रामका जाना।

काक वापिस अपनी पल्लीमें गया। राम वहाँसे आगे चले। अनुक्रमसे विंध्याटवीको पारकर वे तापी नदीके पास पहुँचे। तापीको पारकर, आगे चलते हुए वे उस देशकी सीमापर आये हुए अरुण नामा नगरमें गये।

वहाँ सीताको प्यास लगी। राम, लक्ष्मण और सीता-सहित एक कपिल नामा अग्निहोत्री, क्रोधी ब्राह्मणके घर गये। उसकी सुशर्मा नामा भार्याने उनको जुदा जुदा आसन दिया और शीतल व स्वादिष्ट जलका पान कराया।

उसी समय पिशाचके तुल्य दारुण कपिल बाहिरसे घर आया। उसने रामादिको घरमें बैठे देख गुस्से हो, अपनी स्त्रीसे कहाः—" रे पापिनी ! तूने मेरा अग्निहोत्र अपवित्र कर दिया।"

लक्ष्मणने, क्रोध करते हुए उस कपिलको, हाथीकी भाँति पकड़कर आकाशमें भमाना शुरू किया। तब रामने कहाः—" हेमानद ! एक कीड़ेके समान चिल्लाते हुए इस अधम ब्राह्मण पर कोप क्या करते हो? इसको छोड़ दो।"

रामकी ऐसी आज्ञा होते ही लक्ष्मणने उस ब्राह्मणको धीरेसे छोड़ दिया। पीछे सीता और लक्ष्मण सहित राम उसके घरमेंसे निकलकर आगे चले।

गोकर्ण यक्षका रामपुरी बनाना।

अनुक्रमसे वे एक दूसरे बड़े अरण्यमे पहुँचे। कज्जलके समान श्याम मेघोंका समय-वर्षाऋतु-आया। बारिश बरसनेसे राम एक वटवृक्षके नीचे आये और बोलेः—" इस वटवृक्षके नीचे ही हम वर्षाकाल बितायँगे।"

यह बात सुनकर उस वडपर रहनेवाला अधिष्ठायक 'इभकर्ण' यक्ष भयभीत होगया। इस लिए वह अपने प्रभु 'गोकर्ण' यक्षके पास गया; और प्रणाम करके उससे कहने लगाः—" हे स्वामी ! किसी दुःसह तेजवाले पुरुषोंने आकर मुझे मेरे निवास स्थान, वटवृक्षमेंसे निकाल दिया है। इस लिए हे प्रभु ! मुझ शरणहीनकी रक्षाकरो।

वे मेरे निवासवाले वट-वृक्षके नीचे सारी वर्षाऋतु बितानेवाले हैं।'

विचक्षण गोकर्णने अवधि ज्ञानसे जानकर, कहाः—"जो पुरुष तेरे घर आये हैं, वे आठवें बलभद्र और वासुदेव हैं। इस लिए वे पूजा करनेके योग्य हैं।'

फिर गोकर्ण यक्ष रात्रिमें उसके साथ जहाँ राम ठहरे हुए थे वहाँ गया। और रातहीमें नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लंबी, धनधान्य पूरित ऊँचे किले और बड़े बड़े प्रासादोंवाली और विविध भाँतिके पदार्थोंसे पूर्ण ऐसी एक नगरीको उसने बसाया। नाम उसका 'रामपुरी' रक्खा।

प्रातःकाल ही मंगल शब्द-ध्वनि सुनकर राम जागृत हुए। उन्होंने वीणाधारी यक्षको और सारी समृद्धिवाली उस पुरीको देखा। अकस्मात बनी हुई उस नगरीको देखकर रामचंद्रको विस्मय हुआ।

यक्षने विस्मित रामचंद्रसे कहाः—"हे स्वामी, आप जबतक यहाँ रहेंगे तबतक मैं रातदिन सपरिवार आपकी सेवा करूँगा। अतः आप इच्छानुसार यहाँपर आनंदसे रहें।"

रामका कपिलको दान देना।

एकवार कपिल ब्राह्मण समिध लेनेके लिए हाथमें कुल्हाड़ी लेकर भटकता हुआ उस बड़े वनमें पहुँचा। वहाँ उसने नवीन नगरीको देखा। वह विस्मित हो,

विचार करने लगा—यह माया है, इन्द्रजाल है या कोई गंधर्वपुर है ?

वह ऐसा सोच रहा था, इतनेहीमें, सुन्दर वेष धारण कर, मानुषी रूपमें खड़ी हुई, एक यक्षिणी उसके नजर आई। कपिलने उससे पूछाः—" यह नवीन नगरी किसकी है ? "

उसने उत्तर दियाः—" गोकर्ण नामा यक्षने राम लक्ष्मण और सीताके लिए यह रामपुरी नामा नवीन नगरी बसाई है। यहाँ दयानिधि राम दीन जनोंको दान देते हैं और जो दुःखी यहाँ आते हैं, वे सब कृतार्थ होकर यहाँसे जाते हैं। "

यह सुन कपिलने समिधका भारा पृथ्वीपर डाल दिया और उसके चरणोंमें गिरकर उससे पूछाः—" हे भद्रे ! कहो मुझे किस भाँति रामके दर्शन होंगे ? "

यक्षिणीने कहाः—" इस नगरके चार द्वार हैं। प्रत्येक द्वारपर, यक्ष द्वारपालकी भाँति खड़े होकर नगरीकी रक्षा करते हैं। इससे अंदर जाना दुर्लभ है। परन्तु इसके पूर्व द्वारके बाहिर एक जिन-चैत्य है; वहाँ जा, श्रावक बन, यथाविधि वंदना कर फिर यदि नगरकी ओर जायगा तो तू नगरमें प्रवेश कर सकेगा। "

उसकी बात सुनकर द्रव्यार्थी—धनका लोभी—कपिल जैन साधुओंके पास गया। उनको वंदना कर उसने

उनसे जैन धर्म सुना । वह लघु कर्मी था, इसलिए तत्का-लही उसपर धर्मोपदेशका प्रभाव हुआ और वह शुद्ध श्रावक बन गया । फिर घर आ, उसने अपनी पत्नीको भी, धर्म सुना, शुद्ध श्राविका बना लिया ।

पश्चात जन्मतः दरिद्रताकी अग्निसे दग्ध बने हुए वे दम्पती रामके पाससे धन प्राप्त करनेकी इच्छासे राम-पुरीके पास गये । पहिले वे पूर्व द्वार वाले जिन मंदिरमें गये । वहाँ वंदना करके फिर उन्होंने रामपुरीमें प्रवेश किया।

अनुक्रमसे वे राज्य-ग्रहमें पहुँचे । राज्य-ग्रहमें प्रवेश करते ही, कपिलने राम, सीता और लक्ष्मणको पहिचाना । उसी समय उसने उनपर क्रोध किया था, उसका उसे स्मरण हो आया । इससे वह भीत होकर भग जानेका विचार करने लगा ।

उसको भयभीत देख, लक्ष्मण दया कर बोलेः—"हे द्विज ! तू भयभीत न हो । तू यदि याचक होकर आया है, तो यहाँ आ, और जो चाहिए वह माँग ले ।"

सुनकर कपिलने निःशंक हो, रामके पास जा, आशी-र्वाद दिया । यक्षोंने उसको आसन दिया । वह उस पर बैठ गया ।

रामने पूछाः—"तू कहाँसे आया है ?"

उसने उत्तर दियाः—"मैं अरुण ग्रामका रहनेवाला ब्राह्मण हूँ । क्या आप मुझको नहीं पहिचानते हैं ? आप

जब मेरे अतिथि हुए थे, तब मैंने क्रोध करके आपको बहुतसे दुर्वचन कहे थे, तो भी आपने मुझको दया कर, इस आर्य पुरुषके हाथसे छुड़ाया था।"

कपिलकी स्त्री सुशर्मा ब्राह्मणी, सीताके पास जा, पूर्वका वृत्तान्त सुना, दीन वचनोंसे आशीर्वाद दे, बैठ गई। रामने उनको बहुत धन देकर विदा किया। वे विदा होकर अपने गाँवमें गये। वहाँ कपिलने, वैराग्य हो जानेसे, यथा रुचि दान दे, 'नंदावतंस' मुनिके पाससे दीक्षा ले ली।"

वर्षा ऋतु बीतगई, तब रामको वहाँसे जानेकी इच्छा हुई। गोकर्ण यक्षने हाथ जोड़कर कहाः—"हे स्वामी! आप यहाँसे विदा होना चाहते हैं; (इससे मुझको खेद होता है।) आपकी भक्ति करनेमें मुझसे कुछ भूल हो गई हो-मुझसे कुछ अपराध होगया हो-तो मुझको क्षमा कीजिए और प्रसन्नता पूर्वक यहाँसे प्रस्थान कीजिए। हे महाभुज! आपकी योग्यता-नुसार आपकी सेवा करनेका किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है।"

इतना कह उसने, एक 'स्वयंप्रभ' नामा हार रामके भेट किया, दो दिव्य रत्नमय कुंडल लक्ष्मणके अर्पण किये, और सीताको 'चूडामणि' और इच्छानुसार बज-नेवाली वीणा दिये।

पश्चात राम उस यक्षका सन्मान कर वहाँसे रवाना हुए। गोकर्णने अपनी रची हुई नगरीको वापिस मिटा दिया।

लक्ष्मण और वनमालाका मिलन ।

राम, लक्ष्मण और जानकी चलते हुए कई जंगलोंको लाँघ कर एक दिन संध्याके समय 'विजयपुर' नगरके पास पहुँचे। वहीं नगरके बाहिर दक्षिण दिशामें एक उद्यान था उसमें; घरके समान बहुत बड़ा एक वट-वृक्ष था उसके नीचे उन्होंने विश्राम किया ।

उस नगरके राजाका नाम 'महीधर' था। उसकी रानीका नाम 'इन्द्रानी' था। उससे एक 'वनमाला' नामा कन्या उत्पन्न हुई थी।

उस 'वनमाला' ने बचपनहीसे 'लक्ष्मण' की गुण-संपत्ति और रूप-संपत्तिकी बातें सुनी थीं; इस लिए लक्ष्मणके सिवा वह और किसीको वरना नहीं चाहती थी।

दशरथने दीक्षा ली; और रामलक्ष्मण वनमें रवाना हो गये। यह खबर जब महीधरको लगी तब वह मनमें बहुत दुखी हुआ। और उसने 'चंद्रनगर' के राजा 'वृषभ' के पुत्र 'सुरेन्द्ररूप' के साथ वनमालाका संबंध ठीक किया।

वनमालाको यह खबर लगी। उसने मरनेका निश्चय किया; और जिस रातको राम, लक्ष्मण, व सीता वहाँ पहुँचे थे उसी रातको वह घरसे, मरनेको, निकली और

दैवयोगसे जिस उद्यानमें रामादि ठहरे हुए थे उसी उद्यानमें वह भी चली गई।

प्रथम उसने उस उद्यानस्थ यक्षायतनमें प्रवेश कर, वनदेवताकी पूजा की और कहाः—"जन्मान्तरमें भी मेरे पति लक्ष्मण ही होवें।"

तत्पश्चात वहाँसे निकलकर उस वटवृक्षके पास गई। वहाँ उसने सुप्त राम और सीताके, पहेरुकी भाँति जागते हुए लक्ष्मणको देखा। लक्ष्मणने उसको देखकर सोचा—क्या यह कोई वनदेवी है? इस वटवृक्षकी अधिष्ठात्री है या कोई अन्य यक्षिणी है?

इतनेहीमें लक्ष्मणने उसको बोलते हुए सुनाः-"इस भवमें लक्ष्मण मेरे पति नहीं हुए। मेरी यदि उनपर पूर्ण भक्ति है, तो अगले भवमें मुझे लक्ष्मण ही वर मिलें।" आवाज बंद होगई। फिर लक्ष्मणने देखा कि उसने उत्तरीय वस्त्रसे कंठपाश बना, उसका, एक मुँह वट-वृक्षकी डालीसे बाँध, दूसरेको अपने गलेमें लगाया है। और फिर वह लटक गई है।

लक्ष्मणने तत्काल ही जाकर उसके गलेमेंसे पाश खोल दिया और उसको नीचे उतारका कहा—"हे भद्रे! मैं ही लक्ष्मण हूँ। तू ऐसा दुस्साहस न कर।"

रात्रिके अन्तिम भागमें राम लक्ष्मण जागृत हुए, तब लक्ष्मणने उन्हें वनमालाका सारा वृत्तान्त सुनाया। वन-

मालाने लज्जित हो, मुख ढक, सीता और रामके चरणोंमें नमस्कार किया ।

उधर सवेरे ही महीधर राजाकी स्त्री महलमें वनमालाको न देख, करुण-आक्रंदन करने लगी । महीधर उसको धीरज बँधा वनमालाको खोजनेके लिए रवाना हुआ ।

सेना सहित, इधर उधर भटकते हुए उसने, वनमालाको उद्यानमें बैठे देखा । उसकी सेना वनमालाके चोरको, मारो, मारो पुकारती हुई शस्त्र उठाकर लक्ष्मणादिको मारनेके लिए दौड़ी ।

उनको इस स्थितिमें आते देख लक्ष्मणको क्रोध आया वे खड़े हो गये । भ्रकुटीकी भाँति उन्होंने धनुष पर चिल्ला चढ़ाकर, शत्रुओंका अहंकार हरनेवाली धनुषकी टंकार की । टंकार शब्दसे कई सुभट, क्षुब्ध हो गये, कई त्रासित होगये और कई तो पृथ्वीपर गिर गये । मात्र महीधर राजा अकेला सामने खड़ा रहा । उसने ध्यानसे लक्ष्मणको, देखा, पहिचाना, और कहाः—" हे सौमित्र ! धनुषपरसे चिल्ला उतार लो । मेरी पुत्रीके पुण्यसे ही आपका यहाँ आगमन हुआ है । "

तत्काल ही लक्ष्मणने धनुषसे चिल्ला उतार लिया । इससे महीधरका हृदय स्वस्थ बना । फिर उसने रामको देख, रथमेंसे उतर, उनको प्रणाम किया और कहाः— " आपके अनुज लक्ष्मणपर मेरी कन्याका पहिलेहीसे

अनुराग है; इस लिए मैंने इसके लिए लक्ष्मणहीको वर ठीक कर रक्खा था। मेरे भाग्यके योगसे आज इनका समागम हो गया है। लक्ष्मणके समान जामाता और आपके समान संबंधी मिलना बहुत ही दुर्लभ है।"

इतना कह, बड़े सन्मानके साथ, महीधर राजा, जानकी, लक्ष्मण और रामको अपने महलोंमें ले गया।

राम लक्ष्मणका स्त्रीरूप; अतिवीर्यका पराभव।

राम आदि वहीं रहते थे। एक दिन राम सहित महीधर राजा अपनी सभामें बैठा हुआ था; उसी समय अतिवीर्य राजाका एक दूत आया और कहने लगाः—

"'नंद्यावर्त' के राजा 'अतिवीर्य' ने-जो वीर्यक सागर है, भरत राजाके साथ विग्रह होनेसे, तुमको अपनी सहायताके लिए बुलाया है। दशरथके पुत्र राजा भरतकी सेनामें बहुतसे राजा आये हुए हैं; इसलिए महा बलवान अतिवीर्यने तुमको बुला भेजा है।"

उससे लक्ष्मणने पूछाः—"नंद्यावर्त पुरके राजा अतिवीर्यके साथ भरतका विग्रह क्यों हुआ?"

दूतने उत्तर दियाः—"मेरे स्वामी अतिवीर्य भरतसे भक्ति कराना चाहते हैं और भरत इन्कार करते हैं। यही विरोध और विग्रहका कारण है।"

यह सुनकर रामने पूछाः—"हे दूत! भरत क्या अति

वीर्यके साथ युद्ध करनेका सामर्थ्य रखता है; जिससे वह अतिवीर्यकी सेवा करनेसे इन्कार करता है ?"

दूतने उत्तर दियाः—" अतिवीर्य बहुत बलवान है; परन्तु भरत भी उससे किसी प्रकार कम नहीं है; इसलिए कहा नहीं जा सकता कि, युद्धमें विजय किसकी होगी।"

अतिवीर्यने दूतको यह कहकर रवाना किया कि, मैं अभी आता हूँ। फिर उसने रामचंद्रसे कहाः—" अहो ! अल्प बुद्धी अतिवीर्यकी कितनी अज्ञानता है, जो मुझको वह भरतके साथ युद्ध करनेके लिए बुलाता है। अतः अब मैं बहुत बड़ी सेना सहित वहाँ जाकर भरतके साथकी सुहृदता और उसके साथ का वैर बताये विना ही भरतके शासनकी भाँति उसको मार डालूँगा।"

राम बोलेः—" राजन्! तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारी, सेना और पुत्रों सहित वहाँ जाऊँगा और यथोचित करूँगा।" महीधरने स्वीकार किया।

फिर राम, लक्ष्मण और सीता सहित, महीधरके पुत्रोंको और उसकी सेनाको लेकर नंद्यावर्त पहुँचे।

उस नगरके उद्यानमें रामने सेनाका पड़ाव डाला। उस समय उस क्षेत्रका अधिष्ठायक देवता रामके पास आया और बोलाः—" हे महाभाग! आपकी क्या इच्छा है? जो हो सो कहिए। मैं तदनुसार करनेको तैयार हूँ।"

रामने कहाः—"हमें कुछ नहीं कराना है?" तब देवता बोलाः—"यद्यपि आप स्वयमेव सब कुछ करने योग्य हैं; तथापि मैं एक उपकार करता हूँ। लोगोंमें अति वीर्यकी अपकीर्ति हो कि, वह स्त्रियोंसे पराजित होगया, इस लिए मैं आपका, सेना सहित कामुक स्त्रीका रूप बना देता हूँ।"

इतना कह, स्त्रीराज्यकी भाँति उसने सारी सेना स्त्री-रूपिणी बना दी। राम और लक्ष्मण भी सुन्दर स्त्रियाँ होगये।

फिर राम सेना सहित राजमंदिरके पास गये और अतिवीर्यको, द्वारपालके हाथ कहलाया कि, महीधर राजाने तुम्हारी सहायताके, लिए सेना भेजी है।

अतिवीर्यने कहाः—"जब स्वयं महीधर नहीं आया है, तब मुझे उस मानी और मरनेकी इच्छा रखनेवालेकी सेनाकी भी क्या आवश्यकता है? मैं अकेला ही भरतको जीत लूँगा। मुझे सहायताकी कोई जरूरत नहीं है। इस लिए अपकीर्ति करनेवाले उसके सैन्यको तत्काल ही यहाँसे निकाल दो।"

उस समय किसीने कहाः—"देव! महीधर स्वयं नहीं आया सो तो ठीक परन्तु आपकी हँसी करनेके लिए उसने सेना भी स्त्रियोंकी भेजी है।"

यह सुनकर नंद्यावर्तके राजा अतिवीर्यको बहुत क्रोध चढ़ा। राम आदि सब सेना स्त्रीरूपमें द्वारपर खड़ी हुई

थी उसके लिए उसने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि— दासियोंकी भाँति इन सब स्त्रियोंको गर्दनिया देदेकर अपने नगरसे बाहिर निकाल दो।"

तत्काल ही उसके महापराक्रमी सामंत, उसकी आज्ञा पालनेके लिए, सेना सहित स्त्रियोंको उपद्रवित करने लगे।

लक्ष्मणने तत्काल ही हाथीको बाँधनेका एक स्तंभ उखाड़ लिया और उसीको शस्त्र बना, उससे सारे सामंतोंको, धराशायी कर दिया।

सामंतोंके विनाशसे अतिवीर्य अधिक क्रुद्ध हुआ। और खड्ग खींचकर युद्धके लिए स्वयं सामने आया। तत्काल ही लक्ष्मणने उसके पाससे खड्ग छीन लिया और उसको, केश पकड़ पृथ्वीपर पछाड़, उसीके वस्त्रसे उसको बाँध लिया।

पीछे मृगको जैसे सिंह पकड़ता है, वैसे ही उसको नर-सिंह लक्ष्मण पकड़कर ले चले। भयत्रासित चपल लोचन वाले नगरजन उसको देखने लगे।

तब दयालु सीताने उसको छुड़ा दिया। लक्ष्मणने उससे भरतकी सेवा करना स्वीकार कराया।

तत्पश्चात यक्षने सबका स्त्रीरूप मिटा दिया। इससे उसने राम, लक्ष्मणको पहिचान, उनकी सेवा भक्ति की। फिर उस मानी अतिवीर्यको अपने मानका विचार आया। अपने मानको नष्ट हुआ समझ उसको वैराग्य उत्पन्न हो

गया। 'क्या मैं दूसरेका सेवक बनूँ ?' ऐसा अहंकार कर हुआ उसने, दीक्षा लेना निश्चित किया; और तत्काल ही अपने पुत्र 'विजयरथ' को राज्य दे दिया।

उस समय रामने कहाः—"तुम मेरे दूसरे भरत हो; प्रसन्नतासे राज्य करो दीक्षा न लो।"

तोभी उस महामानी अतिवीर्यने दीक्षा लेली। उसके पुत्र विजयरथने अपनी बहिन 'रतिमाला' लक्ष्मणको दी। लक्ष्मणने उसे ग्रहण की।

राम वहाँसे सेना लेकर वापिस विजयपुर गये और विजयरथ भरतकी सेवा करनेको अयोध्या गया।

गौरवताके गिरि तुल्य भरतने सब हाल जान आगत विजयरथका सत्कार किया।

'संतो हि नतवत्सलाः।'

(सत्पुरुष भक्तवत्सल होते हैं।) फिर विजयरथने अपनी छोटी बहिन 'विजयमाला' नामा-जो रतिमालासे छोटी थी भरतको दी।

उस समय अतिवीर्य मुनि विहार करते हुए वहाँ गये। भरत राजाने अनेक राजाओं सहित उनके सामने जा, वंदना कर उनसे क्षमा माँगी।

जितपद्माका लक्ष्मणको वरना।

महीधर राजाकी आज्ञा लेकर रामचंद्र विजयपुरसे चल—

नेको तैयार हुए। उस समय, गमनेच्छु लक्ष्मणने भी वनमालासे जानेकी सम्मति चाही।

आँखोंमें आँसू भरकर वनमाला बोली:—"प्राणेश! उस समय आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा किस लिए की थी? यदि उस समय मैं मरजाती तो मेरी वह सुख-मृत्यु होती; क्योंकि मुझे आपके विरहका यह असह्य दुःख न सहना पड़ता। हे नाथ! मुझे इसी समय ब्याह कर साथ ले चलो, नहीं तो तुम्हारे वियोगका छल पाकर यमराज मुझको ले जायगा।"

लक्ष्मणने उत्तर दिया:—"हे मनस्विनी! इस समय मैं अपने ज्येष्ठ बंधु रामकी सेवामें लीन हूँ। इस लिए मेरे साथ चलकर भ्रातृसेवामें विघ्न न बनो। हे वरवर्णिनी! मैं अपने ज्येष्ठ बन्धुको इच्छित स्थानपर पहुँचा, तत्काल ही तेरे पास आऊँगा और तुझको ले जाऊँगा। क्योंकि तेरा निवास मेरे हृदयमें है। हे मानिनी! पुनः यहाँ आनेकी प्रतीतिके लिए यदि तुझको मुझसे कोई घोर प्रतिज्ञा कराना हो, तो वह भी मैं करनेको तैयार हूँ।"

फिर वनमालाकी इच्छासे लक्ष्मणने, शपथ ली कि यदि मैं पुनः लौट कर यहाँ न आऊँ, तो मुझको रात्रि-भोजनका पाप लगे।

रात्रिके अन्तिम भागमें राम वहाँसे रवाना होकर आगे चले। क्रमशः कई वन लाँघकर वे 'क्षेमांजलि' नामा

नगरके समीप पहुँचे। वहाँ बाहिर उद्यानमें ठहरे। लक्ष्मण वनफल लाये, सीताने उनको सुधारा। पीछेसे रामने उनको खाया।

पश्चात रामकी आज्ञा लेकर लक्ष्मण नगरमें गये। वहाँ उन्होंने, उच्च स्वरसे होता हुआ एक ढिंढोरा सुना कि– जो पुरुष इस नगरके राजाकी शक्तिके प्रहार सहन करेगा उसको राजा अपनी कन्या ब्याह देगा। '

सुनकर लक्ष्मणने एक मनुष्यसे ऐसा ढिंढोरा करानेका हेतु पूछा। उसने उत्तर दियाः–यहाँके राजा ' शत्रु-दमन ' के–रानी ' कन्यका देवी ' के उदरसे जन्मी हुई- जितपद्मा ' नामकी एक कन्या है। वह कमललोचना बाला लक्ष्मीका स्थान है। उसके वरकी शक्तिकी परीक्षा करनेके लिए राजाने ऐसा करना प्रारंभ किया है। परन्तु अबतक कोई ऐसा वर नहीं मिला। इस लिए यहाँ प्रति-दिन ऐसा ढिंढोरा पिटा करता है। "

इतना सुन लक्ष्मण तत्काल ही राजाकी सभामें गये। राजाने उनसे पूछाः–" तुम कहाँ रहते हो ? और कहाँसे आये हो ? "

लक्ष्मणने उत्तर दियाः–" मैं भरत राजाका दूत हूँ। किसी कार्यके लिए इधरसे जा रहा था। मार्गमें तुम्हारी कन्याकी बात सुनी; इस लिए उसके साथ ब्याह करनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ। "

राजाने पूछा:–" क्या तुम मेरी शक्तिका प्रहार सहोगे ? " लक्ष्मणने उत्तर दिया:–" एक ही नहीं बल्के पाँच प्रहार सहन कर लूँगा । "

उस समय राजकुमारी ' जितपद्मा ' राजसभामें आई । लक्ष्मणको देखते ही वह कामातुर होगई और उनसे स्नेह करने लगी । उसने राजाको लक्ष्मण पर शक्तिका आघात करनेसे रोका; परन्तु राजा न माना । उसने लक्ष्मण पर दुस्सह शक्तिके पाँच प्रहार किये । लक्ष्मणने, दो प्रहार हाथ पर, दो बगलमें और एक दांतोंपर ऐसे पाँच प्रहार जितपद्माके मन सहित ग्रहण किये ।

जितपद्माने तत्काल ही लक्ष्मणके गलेमें वरमाला डाल दी । राजाने भी कहा:–" इस कन्याको ग्रहण करो । "

लक्ष्मणने उत्तर दिया:–" मेरे ज्येष्ठ बंधु रामचंद्र बाहिर वनमें हैं इस लिए मैं सदैव परतंत्र हूँ । "

सुनकर शत्रु दमनने समझा कि, ये दोनों राम, लक्ष्मण हैं । फिर वह वनमें गया; और रामको नमस्कार कर उन्हें अपने यहाँ बुला ले गया । बड़े ठाटबाटके साथ उसने उनकी सेवा-पूजा की । "

' सामान्योऽप्यतिथिः पूज्यः किं पुनः पुरुषोत्तमः । '

(सामान्य अतिथि भी पूज्य होता है, तब उत्तम पुरुषकी तो बात ही क्या है ?)

राजाने पूछाः—" क्या तुम मेरी शक्तिका प्रहार सहोगे ? " लक्ष्मणने उत्तर दियाः—" एक ही नहीं बल्के पाँच प्रहार सहन कर लूँगा । "

उस समय राजकुमारी ' जितपद्मा ' राजसभामें आई । लक्ष्मणको देखते ही वह कामातुर होगई और उनसे स्नेह करने लगी । उसने राजाको लक्ष्मण पर शक्तिका आघात करनेसे रोका; परन्तु राजा न माना । उसने लक्ष्मण पर दुस्सह शक्तिके पाँच प्रहार किये । लक्ष्मणने, दो प्रहार हाथ पर, दो बगलमें और एक दांतोंपर ऐसे पाँच प्रहार जितपद्माके मन सहित ग्रहण किये ।

जितपद्माने तत्काल ही लक्ष्मणके गलेमें वरमाला डाल दी । राजाने भी कहाः—" इस कन्याको ग्रहण करो । "

लक्ष्मणने उत्तर दियाः—" मेरे ज्येष्ठ बंधु रामचंद्र बाहिर वनमें हैं इस लिए मैं सदैव परतंत्र हूँ । "

सुनकर शत्रु दमनने समझा कि, ये दोनों राम, लक्ष्मण हैं । फिर वह वनमें गया; और रामको नमस्कार कर उन्हें अपने यहाँ बुला ले गया । बड़े ठाटबाटके साथ उसने उनकी सेवा-पूजा की । "

' सामान्योऽप्यतिथिः पूज्यः किं पुनः पुरुषोत्तमः । '

(सामान्य अतिथि भी पूज्य होता है, तब उत्तम पुरुषकी तो बात ही क्या है ?)

उसका सत्कार ग्रहण कर राम वहाँसे रवाना हुए। उस समय लक्ष्मणने कहाः—" वापिस लौटूँगा, तब तुम्हारी पुत्रीके साथ ब्याह करूँगा। "

रामका दो मुनियोंका उपसर्ग निवारण करना।

राम वहाँसे रात्रिके अन्त भागमें रवाना होकर, सायं-कालको, वंशशैल नामा गिरिकी तलहटीमें बसे हुए 'वंशस्थल' नामा नगरके पास जा पहुँचे।

वहाँ उन्होंने वहाँके राजाको और अन्य सारे पुरवा-सियोंको भयभीत देखा। रामने एक पुरुषसे उनके भयका कारण पूछा। उसने उत्तर दियाः—" तीन दिनसे यहाँ पर्वतपर रातको भयंकर ध्वनि होती है; उसके भयसे सारे लोग रातको अन्यत्र जाकर विश्राम करते हैं, और प्रातः काल ही पुनः यहाँ चले आते हैं। इस भाँति आजकल लोगोंको अतीव दुःख सहना पड़ रहा है। "

यह सुनकर लक्ष्मणकी प्रेरणा और कौतुकसे राम उस पर्वतपर चढ़े। वहाँ उन्होंने, कायोत्सर्ग करते हुए दो मुनियोंको देखा। राम, लक्ष्मण और सीताने उनको भक्तिसे वंदना की।

तत्पश्चात उनके आगे राम गोकर्णकी दी हुई वीणा बजाने लगे, लक्ष्मण ग्राम और रागसे मनोहर गायन गाने लगे और सीता देवीने अंगहारसे विचित्र ऐसा नृत्य किया।

सूर्य अस्त होगया । रात्रि क्रमशः बढ़ने लगी । उसी समय अनेक वैताल बनाकर 'अनलप्रभ' नामा एक देव वहाँ आया । और स्वयं भी वैतालका रूपधर, अट्ट-हास करता हुआ, आकाशको फोड़दे ऐसे शब्द करने लगा और उन दोनों महर्षियोंको कष्ट पहुँचाने लगा ।

तत्काल ही राम और लक्ष्मण, सीताको मुनिके पास पीछे रख, कालरूप हो, उस वेतालको मारनेके लिए उद्यत हुए ।

उनके तेजको न सह सकनेसे वह देव तत्काल ही वहाँसे निज स्थानको चला गया । इधर दोनों मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न होगया । देवताओंने आकर मुनियोंका केवलज्ञान महोत्सव किया ।

कुलभूषण और देशभूषण मुनियोंका पूर्वभव ।

पश्चात रामने, दोनों मुनियोंको वंदनाकर उनपर उप-सर्ग होनेका कारण पूछा । कूलभूषण नामा मुनि बोलेः—"'पद्मिनी' नामा नगरीमें 'विजयपर्व' राजा राज्य करता था । उसके 'अमृतस्वर' नामा एक दूत था । उसके 'उपयोगा' नामकी स्त्रीसे 'उदित' और 'मुदित' नामके दो पुत्र हुए थे ।

अमृतस्वर दूतके 'वसुभूति' नामका एक ब्राह्मण मित्र था । उसपर उपयोगा आसक्त होकर अपने पतिको मार-नेकी इच्छा करने लगी । एकवार अमृतस्वर राजाकी

आज्ञासे कहीं विदेश निकला । वसुभूति भी उसके साथमें गया और इसने उसको किसी तरकीबसे मार डाला ।

फिर वसुभूति वापिस नगरीमें आया और लोगोंसे कहने लगा, कि अमृतस्वरने किसी कार्यके लिए उसको वापिस लौटा दिया है ।

तत्पश्चात वह उपयोगाके पास गया और बोलाः— " मैंने अपने भोगमें विघ्न करनेवाले अमृतस्वरको छल करके मार डाला है । "

उपयोगाने कहाः—" यह तुमने बहुत ही श्रेष्ठ कार्य किया है । अब इन पुत्रोंको भी मार डालो तो अपने निर्मक्षिकता-विघ्नकारक रहितता-हो जायगी । "

वसुभूतिने यह स्वीकार किया । दैवयोगसे उनका विचार वसुभूतिकी स्त्रीको मालूम हो गया । उसने ईर्ष्या-वश यह बात अमृतस्वरके पुत्र उदित और मुदितसे कहदी । तत्काल ही उदितने क्रोध करके वसुभूतिको मार डाला । वह मरकर ' नलपल्ली ' में म्लेच्छ हुआ ।

एकवार ' मतिवर्द्धन ' नामा मुनिके पाससे धर्म सुन-कर, विजयपर्व राजाने दीक्षा ली । उसके साथ ही उदित और मुदितने भी दीक्षा लेली ।

किसी समय उदित और मुदित मुनि समेतशिखर पर चैत्योंकी वंदना करनेको जा रहे थे । चलते हुए रस्ता-भूल गये और उस नलपल्लीमें जा पहुँचे ।

वहाँ वसुभूतिके जीवने—जो म्लेच्छ हो गया था—उन मुनियोंको देखा। तत्काल ही पूर्व भवके वैरके कारण वह उनको मारने दौड़ा। म्लेच्छ राजाने उसको रोका; क्योंकि पूर्वभवमें वह म्लेच्छपति पक्षी था और वे उदित और मुदित नामा किसान थे। उस समय किसी शिकारीके पाससे उन्होंने उस पक्षीको छुड़ाया था; इस लिए म्लेच्छपतिने वहाँ उनकी रक्षा की थी। फिर उन मुनियोंने समेतशिखर पर जाकर चैत्य-वंदना की और चिरकालतक पृथ्वीपर विहार किया। अन्तमें अनशन व्रत ग्रहण कर, मृत्यु पा दोनों मुनि महाशुक्र देवलोकमें 'सुंदर' और 'सुकेश' नामा महर्द्धिक देवता हुए।

वसुभूतिका जीव अनेक भव भ्रमण कर, किसी पुण्यके योगसे मनुष्य जन्म पाया। उस भवमें वह तापस बना। वहाँसे मरकर वह ज्योतिष्क देवोंमें 'धूमकेतु' नामा मिथ्या दृष्टि महान दुष्ट देवता बना।

उदित और मुदितके जीव महाशुक्र देवलोकमेंसे चव, भरतक्षेत्रके बहुत बड़े नगर 'रिष्टपुर' में 'प्रियंवदा' राजाके 'पद्मावती' रानीसे 'रत्नरथ' और चित्ररथ नामक विख्यात पुत्र हुए।

धूमकेतु भी ज्योतिष्क देवोंमेंसे चव उसी राजाकी, कनकाभा नामा रानीसे अनुद्धर नामा पुत्र हुआ। वह अपने सापत्न-सौतके-भाई रत्नरथ और चित्ररथ पर

ईर्ष्या करने लगा। मगर वे उससे मत्सर भाव नहीं रखते थे।

रत्नरथको राज्यपद और चित्ररथ व, अनुद्धरको युवराज पद देकर प्रियंवद राजाने दीक्षा ली। वह मात्र छः दिन तक व्रतपाल कर मरा और देवता हुआ।

राज्य करते हुए रत्नरथको एक राजाने अपनी कन्या 'श्रीप्रभा' नामा दी। उस कन्याको अनुद्धरने पहिले चाहा था; इस लिए वह कुपित हुआ और उसने युवराज पद त्याग कर रत्नरथकी भूमिको लूटना खसोटना प्रारंभ किया।

रत्नरथने उसको युद्धस्थलमें परास्तकर, पकड़ लिया। बहुत कुछ हैरान करनेके बाद उसने उसको वापिस छोड़ दिया। अनुद्धर छूट कर तापस बना। तापसपनमें उसने स्त्रीसंग करके अपने तपको निष्फल कर दिया।

वहाँसे मरकर बहुत भवों तक भ्रमण कर, वह वापिस मनुष्य हुआ। मनुष्यभवमें तापस बनकर अज्ञान तप किया। वह उस भवमेंसे मर कर हमको उपसर्ग करनेवाला यह अनलप्रभ नामा ज्योतिष्कदेव हुआ है।

चित्ररथ और रत्नरथने भी क्रमशः दीक्षा ली। और वे मरकर अच्युत कल्पमें, 'अतिबल' और 'महाबल' नामा दो महर्द्धिक देव हुए। वहाँसे चवकर उन्होंने 'क्षेमकर' राजाकी रानी 'विमला देवी' के गर्भसे जन्म

लिया । अनुक्रमसे विमला देवीकी कूखसे, दो पुत्र हुए । वे ही दोनों हम हैं । मेरा नाम है ' कूलभूषण ' और ये हैं ' देशभूषण '

राजाने हमको शिक्षा देनेके लिए ' घोष ' नामा उपाध्यायके सिपुर्द किया था। बारह वर्ष तक उनके पास रह कर हमने सब कलाओंका अभ्यास किया । तेरहवें वर्ष घोष उपाध्यायके साथ हम वापिस राजाके पास आये ।

मार्गमें आते हुए, राजमंदिरके झरोखेमें, बैठी हुई एक कन्याको हमने देखा । उसको देखते ही हम उसके अनुरागी बन गये, इस लिए हमारे मनमें उसीकी चिन्ता होने लगी ।

राजाके पास जाकर हमने सब कलाएँ दिखाईं । राजाने उपाध्यायकी पूजा करके उनको विदा किया । हम राजाकी आज्ञासे हमारी माताके पास गये । वहाँ उसके पास उस कन्याको हमने फिरसे देखा । माताने कहा:—" हे वत्सो ! यह तुम्हारी कनकप्रभा नामा बहिन है । तुम घोष उपाध्यायके यहाँ थे, तब यह कन्या जन्मी थी इससे तुम इसको नहीं पहिचानते हो । "

यह सुनकर हम बहुत लज्जित हुए । और अज्ञानसे उसके अनुरागी हुए थे, इसका हमें पश्चात्ताप हुआ । हमें वैराग्य उत्पन्न होगया, और तत्काल ही हमने गुरुके पाससे दीक्षा ले ली ।

तीव्र तपस्या करते हुए हम इस महा गिरिपर आये और शरीरपर भी ममत्व न रख, कायोत्सर्गपूर्वक ध्यानमें

लीन हुए । हमारे पिता हमारे वियोगसे दुखी हो; अनशनकर, मृत्यु पा 'महालोचन' नामा गरुडपति देवता हुए हैं। आसन–कंपसे हमपर होते हुए उपसर्गको जान, पूर्वस्नेहके कारण दुखी हो वे, इस समय यहाँ आये हुए हैं।"

अन्यदा पूर्वोक्त अनलप्रभ देव कौतुकसे कई देवताओंको साथ लेकर केवलज्ञानी अनंतवीर्य महा मुनिके पास गया था । देशना पूर्ण होनेपर किसी शिष्यने अनन्तवीर्य महा मुनिसे पूछाः—" हे स्वामी! आपके पीछे मुनिसुव्रत स्वामीके तीर्थमें केवलज्ञानी कौन होगा ?"

मुनिने उत्तर दियाः—"मेरे निर्वाण होनेके बाद, कुलभूषण और देशभूषण नामा दो भाई केवलज्ञानी होंगे। यह सुनकर अनलप्रभ अपने स्थानको गया ।

कुछ दिन पहिले उसने अवधिज्ञान द्वारा हमको यहाँ कायोत्सर्ग ध्यान करते देखा। इससे मिथ्यात्वके कारण मुनिके वचनको अन्यथा करने, और हमारे पर पूर्वभवका उसका जो वैर था उसको चुकानेके लिए वह यहाँ आकर हमपर घोर उपसर्ग करने लगा। उसको उपद्रव करते हुए आज चार दिन होगये हैं। आज वह तुम्हारे भयसे भाग गया है; और कर्मक्षयसे हमको केवलज्ञान हुआ है। देव उपसर्गमें तत्पर था, तो भी हमको, तो केवलज्ञानप्राप्तिमें वह सहायक ही बना है।"

उस समय वहाँ बैठा हुआ गरुडपति महालोचन देव बोला:—" हे राम ! तुमने बहुत अच्छा किया सो यहाँ आये। अब बताओ कि मैं तुम्हारे उपकारका बदला कैसे दूँ ? "

रामने कहा:—" मुझे तो कुछ भी कार्य नहीं है । "

" मैं किसी तरह किसी समय तुमपर उपकार करूँगा ।" ऐसा कह, महालोचन देव अन्तर्धान हो गया।

यह खबर सुनकर वंशस्थलका राजा ' सुरप्रभ ' भी वहाँ गया; और उसने रामको नमस्कार कर उनकी उच्च प्रकारसे पूजा की । रामकी आज्ञासे उसने उस पर्वतपर अर्हत प्रभुके चैत्य बनवाये; और तबहीसे वह पर्वत, रामके नामसे, ' रामगिरि ' नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

रामका दण्डकारण्यमें पहुँचना; जटायु पक्षीका पूर्वभव ।

फिर रामचंद्र सुरप्रभ राजाकी सम्मति लेकर वहाँसे रवाना हुए। आगे चलकर निर्भीक हो रामने महाप्रचंड दण्डकारण्यमें प्रवेश किया । वहीं एक बड़े पर्वतकी गुफामें निवास कर, घरकी भाँति वे स्वस्थतासे उसमें रहने लगे।

एकवार भोजनके समय ' त्रिगुप्त ' और ' सुगुप्त ' नामा दो चारण मुनि आकाशमार्गसे वहाँ गये। वे दो मासके उपवासी थे और पारणाके लिए वहाँ आये थे ।

राम, सीता और लक्ष्मणने उनको भक्तिपूर्वक वंदना की । फिर सीताने यथोचित अन्नजलसे मुनिको प्रतिलाभा

उस समय देवताओंने वहाँ रत्नोंकी और सुगंधित जलकी वृष्टि की।

उस समय कंबूद्वीपका रत्नजटि और दो देवता वहाँ आये। उन्होंने प्रसन्न होकर अश्व सहित रामको एक रथ दिया। सुगंधित जलकी वृष्टिकी सुगंधसे 'गंध' नामा कोई रोगी पक्षी—जो वहाँ रहता था—वृक्षसे उतर कर नीचे आया।

मुनिके दर्शन करते ही उसको जातिस्मरण ज्ञान हो गया; इससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। सीताने उसपर जल छिड़का; इससे थोड़ी देर बाद वह चेतमें आकर मुनिके चरणोंमें गिरा।

मुनिको स्पर्शौषध नामा लब्धि प्राप्त थी, इस लिए मुनिके चरणोंका स्पर्श होते ही वह नीरोग हो गया। उसके पंख स्वर्णतुल्य हो गये; वे चंचू-पक्षीका भ्रम कराने लगे। चरण पद्मराग मणिके समान होगये; और सारा शरीर अनेक प्रकारका प्रभा वाला हो गया। उसके मस्तक पर रत्नांकुरकी श्रेणीके समान जटा दिखाई देने लगी; इस कारण उस पक्षीका नाम उसी समयसे जटायु पड़ गया।

उस वक्त रामने मुनिसे पूछाः—"गीध पक्षी मांस खानेवाले और मोटी बुद्धिवाले होते हैं, तो भी यह गीध पक्षी आपके चरणोंमें आकर शान्त कैसे हो गया? हे भगवंत! पहिले यह पक्षी अत्यंत विरूप था और अब क्षणवारहीमें ऐसा स्वर्ण, रत्नकी कांतिवाला कैसे होगया?"

सुगुप्त मुनि बोलेः—" यहाँ पहिले ' कुंभकारक ' नामा नगर था, वहाँ यह पक्षी दंडक नामका राजा था । उसी समय श्रावस्ती नगरीमें ' जितशत्रु ' नामका राजा राज्य करता था । उसके ' धारणी ' नामा रानीसे दो सन्तान हुई थीं । एक पुत्र और दूसरी कन्या । पुत्रका नाम ' स्कंदक ' था और कन्याका नाम ' पुरंदरयशा '

उस लड़कीका ब्याह ' कुंभकारकट ' नगरके राजा ' दंडक ' के साथ हुआ था ।

एकवार दंडक राजाने जितशत्रुके पास, ' पालक ' नामा एक ब्राह्मण दूतको किसी कार्यके लिए भेजा था । वह दुष्ट बुद्धि पालक जैनधर्मको दूषित करने लगा । उस समय उस दुराशय और मिथ्या दृष्टि पालकको ' स्कंदक ' कुमारने, सभ्य संवाद पूर्वक युक्तियों द्वारा निरुत्तर कर दिया । इससे सभ्य जनोंने उसका बहुत उपहास किया । पालकको इस घटनासे अत्यंत क्रोध चढ़ा । अन्यदा, राजाने उसको विदा किया । वह वापिस कुंभकरकट नगरमें पहुँचा ।

कुछ काल बाद स्कंदकने विरक्त हो पाँच सौ राजपुत्रोंके साथ ' मुनिसुव्रत ' प्रभुके पाससे दीक्षा ले ली । एकवार उन्होंने कुंभकरकट जाकर पुरंदरयशाको और उसके परिवारको उपदेश देनेकी आज्ञा चाही ।

प्रभुने उत्तर दियाः—" वहाँ जानेसे परिवार सहित तुमको मरणान्त दुःख होगा । "

स्कंदकमुनिने फिरसे मुनि सुव्रतस्वामीको पूछाः–" हे भगवन ! हम उसमें आराधक होंगे या नहीं ?"

प्रभुने उत्तर दियाः–" तुम्हारे सिवा अन्य सब आराधक होंगे !"

" तो मैं समझूँगा कि मेरा सब कुछ पूर्ण हुआ है।" इतना कह, स्कंदक मुनिने परिवार सहित वहाँसे विहार किया। पाँचसौ मुनियोंके साथ विहार करते हुए, वे अनुक्रमसे कुंभकारकट पुरके पास पहुँचे।

उनको दूरसे देखते ही क्रूर पालकको अपने पहिलेका वैर याद आगया; इस लिए उसने तत्काल ही, साधुओंके उपयोगमें आने योग्य जो उद्यान थे उनमें, पृथ्वीमें, शस्त्र डटवा दिये।

उनमेंसे एकमें स्कंदकाचार्यने जाकर निवास किया। दंडक राजा परिवार सहित उनको वंदना करनेके लिए आया। स्कंदकाचार्यने देशना दी। उसको सुनकर लोगोंको बहुत आनंद हुआ। देशनाके अन्तमें हर्षित चित्त दंडक अपने महलमें गया।

उस समय दुष्ट पालकने राजाको, एकान्तमें लेकर कहाः—" यह स्कंदक मुनि बगुला भक्त है; पाखंडी है। हजार हजार योद्धाओंके साथ युद्धकर सके ऐसे सहस्त्रयुधी पुरुषोंको साथ ले, उनको मुनिका वेष दे, यह महाशठ मुनि, उनकी सहायतासे आपको मार, आपका राज्य

लेनेके लिए यहाँ आया है । इस उद्यानमें इन मुनिवेषधारी सुभटोंने अपने स्थानमें, गुप्तरीत्या शस्त्र दबा रक्खे हैं; आप स्वयं चलकर इसकी जाँच करसकते हैं।"

पालकके कथनानुसार राजाने मुनियोंके स्थानको खुदवाया। वहाँ राजाने विचित्र जातिके शस्त्र दबे हुए देखे; इससे उसको बहुत दुःख हुआ। फिर दंडकने बिना ही विचारे पालकको आज्ञा दीः—

"हे मंत्री! तुमने यह जानलिया सो बहुत अच्छा हुआ। मैं तो तुम्हारेसे ही नेत्रवाला हूँ। अब इस दुर्मति स्कंदकको जो योग्य दंड, हो वह दो; क्योंकि तुम सब कुछ जानते हो। हे महामती! इस विषयमें अब दुबारा मुझको मत पूछना।"

इस प्रकार आज्ञा मिलते ही पालकने, मनुष्योंको पीलनेका एक यंत्र बनवाया, उसको लेजाकर उद्यानमें रक्खा; और स्कंदकाचार्यके देखते हुए उसने एक एक मुनिको पिलवाना प्रारंभ किया।

प्रत्येक मुनिको पिलते समय देशना देकर स्कंदकाचार्यने सम्यक प्रकारसे आराधना कराई। सब परिवार पिल चुका। अन्तमें एक बाल मुनि रहे। वे जब यंत्रके पास लाये गये तब स्कंदकाचार्यको बहुत करुणा आई; अतः उन्होंने पालकसे कहाः—"पहिले मुझको पीलो; जिससे

मैं इस बाल मुनिको पिलता हुआ न देख सकूँ । हे पालक! इतनी बात मेरी मान ले । ”

स्कंदकके सामने इस बालकको पीलूँगा, पीड़ा दूँगा, तो उसको ज्यादह दुःख होगा; यह सोचकर ही उसने उनका कहना न मान पहिले बाल मुनिको ही पीला ।

सारे मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर, अव्ययपद—मोक्ष—को पाये । स्कंदकाचार्यने अंतमें पच्चखाणकर ऐसा नियाणा किया कि—यदि मेरी तपस्याका कुछ फल हो, तो मैं दण्डक, पालक और उसके कुल देशका नाशकर्ता होऊँ । ”

ऐसे नियाणा बाँधते हुए स्कंदकाचार्यको, पालकने पील डाला । वहाँसे मरकर उनका क्षय करनेके लिए वे कालाग्निकी भाँति वह्निकुमार निकायमें देवता हुए ।

रुधिरसे भरे हुए स्कंदकाचार्यके रजोहरणको—जो रत्नकंबलके तारोंका बना हुआ था—जो पुरंदरयशाका दिया हुआ था—एक पक्षिणी उठाकर लेगई । पक्षिणीने उसको मजबूतीके साथ पैरोंमें दबाया था; परन्तु दैवयोगसे वह उसके पैरोंमेंसे छूटगया और देवी पुरंदरयशाके आगे जाकर गिरा ।

रजोहरणको देखकर उसने अपने भाईके लिए खोज कराई, तो ज्ञात हुआ कि उसके महर्षि भाई स्कंदकाचार्य यंत्रमें पीलकर मार दिये गये हैं । इससे उसको अपने

पतिपर बड़ा क्रोध आया। वह शोकमग्न हो, मनही मन कहने लगी—"रे पापी! तूने यह क्या पाप किया है?"

उसी समय शोक-निमग्ना पुरंदरयशाको शासन देवीने मुनि सुव्रतप्रभुके पास पहुँचाया। वहाँ तत्काल ही उसने मुनिसुव्रत स्वामीके पाससे दीक्षा लेली।

अग्निकुमार निकायमें जन्मे हुए स्कंदकाचार्यके जीवने, अवधिज्ञान द्वारा अपने पूर्वभवका वृत्तान्त जान, पालक और दंडक सहित सारे नगरको भस्म कर दिया। तबहीसे नगर दारुण और ऊजड़ होगया है; और दंडकके नामहीसे इस वनका नाम दंडकारण्य पड़ा है।

दंडक राजा संसारकी कारणरूप अनेक योनियोंमें परिभ्रमणकर, अपने पापकर्मोंसे गंधनामा यह महारोगी पक्षी हुआ है। हमारे दर्शनसे इसको जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और हमें स्पर्शौषध नामा लब्धि प्राप्त है, इस लिए हमारे स्पर्शसे इसके सब रोग नष्ट होगये हैं।

इस प्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुन, पक्षी बहुत प्रसन्न हुआ। वह फिरसे मुनिके चरणोंमें गिरा और धर्म सुनकर उसने श्रावकपन स्वीकार किया। महामुनिने, उसकी इच्छा जानकर उसको जीवघात, मांसाहार और रात्रिभोजनका त्याग कराया।

फिर मुनिने रामचंद्रसे कहाः—"यह पक्षी तुम्हारा सधर्मी है। और सधर्मी बन्धुओंपर वात्सल्य करना कल्याणकारी है; ऐसा जिनेश्वर भगवानने फर्माया है।"

मुनिके वचनसुन 'हाँ यह मेरा परमबन्धु है' ऐसा कह, रामने मुनिको वंदना की । मुनि वहाँसे उड़कर आकाशमार्गद्वारा दूसरे स्थानको गये । राम, लक्ष्मण और जानकी उस जटायु पक्षीके साथ दिव्य रथमें बैठ क्रीडा करनेके लिए अन्य स्थानमें विचरने लगे ।

सूर्यहास खड्गसाधतेहुए शंबूककी अचानक हत्या ।

उसी कालमें पाताल लंकामें, खर और चंद्रनखाके 'शंबूक' और सुंदनामा दो पुत्र यौवन वयको प्राप्त हुए । एकवार माता पिताके मना करने पर भी शंबूक सूर्यहास खड्गको साधनेके लिए दंडकारण्यमें गया । वहाँ वह क्रौंच-रेवा नदीके तीरपर एक वंश गव्हरमें जाकर रहा । उस समय वह आप ही आप बोला–"यहाँ रहते हुए, यदि कोई मुझको रोकेगा तो मैं उसको मार डालूँगा ।"

तत्पश्चात वह एकाहारी, विशुद्धात्मा, ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय शंबूक वट वृक्षकी शाखासे अपने दोनों पैरोंको बाँध, अधोमुख हो, सूर्य हास खड्गको साधनेवाली विद्याका जप करने लगा । यह विद्या बारह वर्ष और सात दिनतक साधनेसे सिद्ध होती है ।

इस प्रकार वागलकी भाँति औंधे मुख रह साधना करते हुए उसको बारह वर्ष और चार दिन बीत गये । इससे सिद्ध होनेकी इच्छासे म्यानमें रहा हुआ, सूर्यहास खड्ग, आकाशमें तेज और सुगंध फैलाता हुआ, वंशगव्हरके पास आया ।

उसी समय इधर उधर फिरते और क्रीडा करते हुए लक्ष्मण भी वहाँ जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सूर्य-किरणोंके समूह समान सूर्यहास खड्गको देखा। लक्ष्मणने उसको हाथमें लेकर म्यानमेंसे खींच लिया।

'अपूर्व शस्त्रालोके हि क्षत्रियाणां कुतूहलम्'

(अपूर्व शस्त्र देखनेसे क्षत्रियोंको कुतूहल होता है।) फिर उसकी परीक्षा करनेके लिए उन्होंने उससे पासवाले वंशजालको, कमल नालकी भाँति, काट डाला। उस वंशजालमें रहे हुए शंबूकका शिर वंशजालके साथ ही कट गया और वह लक्ष्मणके आगे आगिरा। यह देखकर लक्ष्मणने-जालमें प्रवेश किया। अंदर उन्होंने लटकता हुआ धड़ भी देखा। इससे लक्ष्मण अपनी निन्दा करने लगे:— "अरे! मुझे धिक्कार है कि, मैंने ऐसा कृत्य किया है। मैंने युद्ध नहीं करनेवाले शस्त्र-विहीन निरपराधी पुरुषको मार डाला है।"

तत्पश्चात उन्होंने रामके पास जाकर, सारा वृत्तान्त सुनाया और उनको वह खड्ग भी दिखाया। खड्ग देखकर रामबोले:—"हे वीर! यह सूर्यहास खड्ग है। इसके साधकको ही तुमने मारा है। इसका कोई उत्तर साधक भी आसपासमें कहीं होना चाहिए।"

रामपर चंद्रनखाकी आसक्ति।

उस समय उधर पाताल लंकामें रावणकी बहिन चंद्र-

नखाको विचार हुआ कि—'आज अवधि पूरी हुई है; मेरे पुत्रको सूर्यहास खड्ग आज अवश्य सिद्ध होगा। इसलिए मुझको उसके लिए पूजाकी सामग्री और अन्नपान लेकर जाना चाहिए।'

ऐसा विचार कर वह तत्काल ही वंशगव्हरके पास गई। वहाँ उसने अपने पुत्रके कटे हुए सिरको-जिस पर बाल बिखर रहे थे, जिसके कानोंमें कुंडल लटक रहे थे-देखा। इससे वह व्याकुल हो "हावत्स शंबूक! हावत्स शंबूक! तू कहाँ?" पुकार पुकार कर रोने लगी।

इतने ही में भूमिपर पड़े हुए लक्ष्मणके पैरोंके मनोहर-चिन्ह उसकी दृष्टिमें आये। जिसने मेरे पुत्रको मारा है, उसीके ये चिन्ह हैं; ऐसा सोचकर वह उन पद-चिन्हों-का अनुसरण करती हुई चली। थोड़ी दूर जाकर एक वृक्षके नीचे सीता और लक्ष्मणके साथ बैठे हुए, नेत्राभिराम रामचंद्रको उसने देखा। रामके सुंदर रूपको देखकर चंद्रनखा, तत्काल ही रतिवश हो गई।

'कामावेशः कामिनीनां शोकोद्रेकेऽपि कोऽप्यहो।'

(अहो! महा शोकमें भी कामिनियोंको कैसा कामका आवेश चढ़ जाता है।)

फिर नाग कन्याके समान सुंदर रूप बनाकर कामपीडित चंद्रनखा धूजती हुई रामके पास गई। उसको देख-

कर रामने पूछाः—" भद्रे ! यमराजके घर समान इस दारुण दंडकारण्यमें तू अकेली यहाँ कैसे आई ? "

उसने उत्तर दियाः—" मैं अवन्तिके राजाकी कन्या हूँ। रातको मैं महलमें सो रही थी; वहाँसे कोई खेचर मुझको हरकर इस अरण्यमें ले आया। इतनेहीमें किसी दूसरे विद्याधर कुमारने हमको देखा। इससे वह हाथमें खड्ग लेकर बोलाः—" रे पापी ! रत्नहारको जैसे चील पक्षी ले जाता है, वैसे ही इस स्त्री रत्नको हरकर तू कहाँ जायगा ? मैं तेराकाल बनकर यहाँ आया हूँ। "

इतना सुनकर मुझको, हरलानेवाले खेचरने मुझे छोड़, उसके साथ युद्ध करना प्रारंभ किया। बहुत देरतक दोनोंमे खड्गसे युद्ध होता रहा। अन्तमें उन्मत्त हाथियोंकी भाँति दोनों मरगये। तबसे मैं यही सोचती हुई इधर उधर फिर रही हूँ कि, अब मै कहाँ जाऊँ। इतनेहीमें, मरुभूमिमें अचानक कोई छायादार वृक्ष मिल जाता है, वैसे ही पुण्य योगसे आप मिल गये हैं। हे स्वामी ! मैं एक कुलीन कुमारिका हूँ; इस लिए आप मेरे साथ व्याह कीजिए।

' महत्सु जायते जातु न वृथा प्रार्थनार्थिनाम्। '

(महत्पुरुषोंके पास की हुई याचकोंकी याचना वृथा नहीं जाती है।)

उसकी बातें सुनकर, महा बुद्धिमान राम लक्ष्मण परस्पर प्रफुल्ल नेत्र हो: सोचने लगे कि, यह कोई मायाविनी स्त्री

है, और नटकी भाँति वेष धारणकर, कूट नाटक दिखा, हमको ठगनेके लिए आई है । फिर हास्य–ज्योत्स्नाके पूरसे ओष्ठोंको विकसित करते हुए राम बोलेः—"मैं तो स्त्री सहित हूँ, इसलिए तू स्त्री विहीन लक्ष्मणके पास जा।"

चंद्रनखाने, रामके वचन सुन, लक्ष्मणके पास जाकर ब्याहकी प्रार्थना की । लक्ष्मणने उत्तर दियाः—"तू पहिले मेरे पूज्य बन्धुके पास गई, इस लिए तू भी मेरे लिए पूज्य होगई । अतः अब इस विषयमें तू मुझसे कुछ न कह ।"

खरके साथ युद्ध और सीता-हरण ।

इस भाँति अपनी याचनाके खंडित होनेसे और पुत्रके वधसे उसको अत्यंत क्रोध आया। वह तत्काल ही पाताल लंकामें गई । उसने अपने स्वामी खरको और दूसरे विद्याधरोंको अपने पुत्रवधके समाचार सुनाये । सुनकर चौदह हजार विद्याधरोंके सैन्यको ले खर, दण्डकारण्यमें, रामको पीडित करनेके लिए गया; जैसे कि पर्वतको पीडित करनेके लिए हाथी जाते हैं ।

'मेरी उपस्थितिमें क्या पूज्य रामचंद्रजी युद्ध करेंगे?' ऐसा सोच, लक्ष्मणने युद्धके लिए रामसे आज्ञा माँगी । रामने कहाः—"हे वत्स ! तू भले विजय प्राप्त करनेके लिए जा; परन्तु यदि कोई संकट पड़े तो मुझे बुलानेके लिए सिंहनाद करना।"

लक्ष्मण यह बात स्वीकारकर, रामकी आज्ञा ले, धनुष-बाण धारणकर वहाँसे युद्धमें चले; और गरुड जैसे सर्पोंको मारता है, वैसे ही वे उनको मारने लगे ।

जब युद्ध बढ़ने लगा तब चंद्रनखा, अपने स्वामीके पक्षको प्रबल करनेके लिए तत्काल ही रावणके पास गई ।

उसने रावणके पास जाकर कहाः–" हे भाई ! राम लक्ष्मण नामा दो अजाने पुरुष दण्डकारण्यमें आये हैं । उन्होंने तेरे भानजेको मार डाला है । यह बात सुनकर तेरा बहनोई खर विद्याधर अपने अनुज बन्धु सहित सेना लेकर वहाँ गया है, और अभी लक्ष्मणके साथ युद्ध कर रहा है । राम अपने अनुजके और स्वतःके बलके गर्वसे गर्वित होकर, अलग बैठा हुआ है, और सीताके साथ विलास कर रहा है । सीता स्त्रियोंमें रूपलावण्यकी अन्तिम सीमा है । उसके समान न कोई देवी है; न कोई नागकन्या है और न कोई मानुषी ही है । वह कोई जुदा ही है । उसका रूप सुर, असुरोंकी स्त्रियोंको भी दासियाँ बनावे ऐसा है; उसका रूप तीन लोकमें अनुपम और अकथनीय है–वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती है ।

हे बन्धु ! इस समुद्रसे लेकर दूसरे समुद्र पर्यंत पृथ्वीपर जितने भी रत्न हैं, वे सब रत्न तेरे योग्य हैं । इस लिए रूप संपत्तिद्वारा दृष्टिओंको अनिमेषी करनेवाले उस

स्त्रीरत्नको तू ग्रहण कर। यदि तू उसको प्राप्त न कर सका तो तू रावण नहीं है।"

इतना सुनते ही रावण तत्काल ही पुष्पक विमानमें बैठा और बोलाः—" हे विमानराज ! जहाँ जानकी है वहाँ तू शीघ्रतासे चल।"

सीताके पास गये हुए रावणके मनकी स्पर्द्धा करता हो वैसे वह विमान अति वेगके साथ जानकीके पास गया। वहाँ उग्र तेजवाले रामको देख, रावण तत्काल ही दूर जा खड़ा हुआ। जैसे कि अग्निसे सिंह भीत होकर दूर जा खड़ा होता है।

"अहो इस अति उग्रतेजधारी रामके पाससे सीताको हर लेजाना, इतना ही कठिन है जितना कि सिंहके सामनेसे अतिपूर वाली नदीको पार कर जाना।" ऐसा विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याका स्मरण किया। विद्या तत्काल ही आकर दासीकी तरह हाथ जोड़, खड़ी हो गई।

रावणने उससे कहाः—" सीताको हरनेके कार्यमें तू मुझको सहायता कर।"

विद्या बोलीः—" वासुकि नागके मस्तकसे मणि लेना सरल है; मगर रामके पाससे सीताको ले लेना देवताओंके लिए भी कठिन है। तो भी इसका एक उपाय है। युद्धमें जाते समय रामनें लक्ष्मणसे बुलानेकी आवश्यकता पड़ने पर सिंहनाद करनेका संकेत निश्चित किया था। इस

लिए संकेतानुसार सिंहनाद करनेपर राम यदि लक्ष्मणके पास जायँ, तो फिर सीताका हरण सरलतासे हो सकता है।"

रावणने ऐसा करनेकी आज्ञा की। इससे विद्याने दूर जाकर साक्षात लक्ष्मणके समान सिंहनाद किया।

सिंहनाद सुनकर राम सोचने लगे–यद्यपि हस्तिमल्लकी तरह मेरे अनुजका कोई प्रतिमल्ल नहीं है; लक्ष्मणको संकटमें डालनेवाला कोई भी पुरुष पृथ्वीमें नहीं है; तो भी संकेतानुसार उसका यह सिंहनाद कैसे सुनाई दे रहा है?

इस प्रकारके तर्क वितर्क करते हुए महा मनस्वी राम व्यग्र हो उठे। उसी समय लक्ष्मणके प्रति सीताका जो वात्सल्य भाव था उसको व्यक्त करती हुई वे बोलीं:—" हे आर्यपुत्र! वत्स लक्ष्मण संकटमें पड़े हुए हैं, तो भी आप उनके पास जानेमें कैसे विलंब कर रहे हैं? शीघ्र ही जाकर वत्स लक्ष्मणकी रक्षा कीजिए।"

सीताके इस प्रकारके वचनोंसे और सिंहनादसे प्रेरित होकर राम शकुनकी कुछ परवाह न कर शीघ्रताके साथ लक्ष्मणके पास गये।

समय देख रावण तत्काल ही विमानसे नीचे उतरा और रुदन करती हुई जानकीको पकड़ कर विमानमें बिठाने लगा। जानकीको रोते सुन, " हे स्वामिनी कुछ डर नहीं है; मैं आ पहुँचा हूँ। अरे निशाचर! खड़ा रह

खड़ा रह।" कहता हुआ जटायु पक्षी क्रोध कर रावणपर झपटा। और अपने तीक्ष्ण नाखूनोंकी अणियोंसे उस बड़े पक्षीने रावणके उरस्थलको चीरना शुरु किया; जैसे कि किसान हलसे भूमिको चीरता है।

रावणने क्रोध कर दारुण खड्ग खींच लिया और उससे जटायुके पाँखोंको काट उसे पृथ्वीपर गिरा दिया।

फिर निःशंक हो; सीताको पुष्पक विमानमें बिठा अपना मनोरथ पूर्ण कर, शीघ्रताके साथ वह आकाशमार्गसे चला।

"शत्रुओंको मथन करनेवाले हे नाथ रामभद्र! हे वत्स लक्ष्मण! हे पूज्य पिता! हे महावीर बन्धु भामंडल! जैसे बलिको कौआ उड़ा ले जाता है, वैसे ही यह रावण छलसे तुम्हारी सीताको हर कर ले जा रहा है।" इस भाँति रुदन करती हुई सीता भूमि और आकाशको भी रुलाने लगी।

मार्गमें अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी खेचरने सीताका रुदन सुना। वह सोचने लगा—"यह रुदन अवश्यमेव रामकी पत्नी सीताका है; और ये शब्द समुद्र पर सुनाई दे रहे हैं इस लिए जान पड़ता है कि रामलक्ष्मणको धोखा देकर रावणने सीताका हरण किया है। इस लिए उचित है कि—मैं इस समय सीताको छुड़ाकर अपने स्वामी भामंडल पर उपकार करूँ।"

ऐसा सोच, तलवार खींच, रत्नजटी रावणपर दौड़ा। रत्नजटीके युद्धाव्हानको सुनकर रावण हँसा। फिर उसने अपने विद्याबलसे उसकी सारी विद्याएँ हर लीं। इससे पंख छेदित पक्षीकी भाँति रत्नजटी विद्याविहीन हो कंबूद्वीपमें पड़ा; और वहीं कंबू गिरिपर रहने लगा।

रावण विमानमें बैठ कर आकाश मार्गसे जिस समय समुद्र पार कर रहा था, उस समय वह कामातुर हो सीतासे अनुनय करने लगाः—"हे जानकी! सारे खेचर और भूचर लोगोंका जो स्वामी है; उसकी पट्टरानीके पदको पाकर भी तुम कैसे रो रही हो? हर्षके बजाय तुम शोक क्यों कर रही हो। मंदभागी रामके साथ पहिले विधिने तुम्हारा संबंध कर दिया वह अनुचित था; इस लिए मैंने अब उचित किया है।

हे देवी! सेवामें दासके समान मुझे तुम पतिकी भाँति मानो। मैं जब तुम्हारा दास हो जाऊँगा तब सारे खेचर और खेचरियाँ भी तुम्हारे दास दासी हो जायँगे।"

रावण ऐसे बोल रहा था उस समय सीता, नीचा सिरकर, मंत्रकी भाँति भक्तिके साथ 'राम' इन दो अक्षरोंका जाप कर रही थी। सीताको बोलते न देख, कामातुर रावणने उनके पैरोंमें सिर रख दिया।

परपुरुष-स्पर्श-कातरा सीताने तत्काल ही अपना पैर दूर खींच लिया और क्रोधपूर्वक रावणको कहाः—"रे

निर्दय, निर्लज्ज ! थोड़े ही समयमें परस्त्री कामनाकी फल-रूप मृत्यु तुझको मिलेगी । ”

उसी समय ‘ सारण ’ आदि मंत्री और दूसरे सामंत राक्षस रावणके सामने आये । बहुत बड़ा उत्साही और महान साहसके कार्य करनेवाला अति बलवान रावण, उत्सव पूर्ण लंकापुरीमें गया ।

उस समय सीताने नियम लिया कि—जब तक राम और लक्ष्मणके उनको समाचार नहीं मिलेंगे तब तक वे भोजन नहीं करेंगी ।

तत्पश्चात तेजनिधि रावणने सीताको, लंकापुरीके पूर्व दिशामें आये हुए, देवताओंके क्रीडास्थल नंदनवनके समान, और खेचरोंकी स्त्रियोंके विलासके धामरूप, ‘ देवरमण ’ नामा उद्यानमें रक्तवर्णके अशोक वृक्षके नीचे छोड़ा; और त्रिजटा आदि रक्षिकाएँ उनके पासमें छोड़ आप हर्षित होता हुआ अपने महलोंमें गया ।

छठा सर्ग ।

हनुमानका सीताकी खबर लाना ।

जटायुकी मृत्यु ।

लक्ष्मणके समान सिंहनाद सुनकर, राम धनुष लेकर शीघ्रतासे जहाँ लक्ष्मण शत्रुओंके साथ रणक्रीडा कर रहे थे वहाँ पहुँचे ।

रामको आये हुए देखकर लक्ष्मणने पूछाः—" हे आर्य ! सीताको अकेली छोड़कर आप यहाँ क्यों आये हैं ? "

रामने उत्तर दियाः—" हे लक्ष्मण तुमने मुझको कष्ट सूचक सिंहनाद करके बुलाया इसी लिए मैं आया हूँ । "

लक्ष्मण बोलेः—" मैंने तो सिंहनाद नहीं किया था; मगर आपने सुना इससे जान पड़ता है कि, किसीने हमको धोखा दिया है । जान पड़ता है कि, आर्या सीताका हरण करनेके लिए किसीने यह कुमंत्रणा कर आपको वहाँसे हटाया है । सिंहनाद करनेमें दूसरा कोई हेतु मुझे मालूम नहीं होता । अतः हे आर्य ! आप शीघ्र ही सीताकी रक्षाके लिए जाइए । मैं भी शत्रुओंका संहार कर, आपके पीछे पीछे आता हूँ । "

लक्ष्मणका कथन सुन रामभद्र तत्काल ही अपने पूर्व स्थानपर लौट आये; परन्तु वहाँ वे सीताको न देख, मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़े ।

थोड़ी वारके बाद उन्होंने चैतन्य हो, बैठकर देखा; तो उन्हें वहाँ मरणोन्मुख पड़ा हुआ जटायु नजर आया । उसको देखकर राम सोचने लगे—“ किसी मायावीने छल करके मेरी प्रियाका हरण किया है । यह महात्मा पक्षी क्रोधकर हरणकर्ताके सामने हुआ होगा; इस लिए उस हरणकर्ताने ही इसके पंखोंको छेद दिया है । ”

फिर, उसपर प्रत्युपकार करनेके लिए, रामने अंत समयमें, श्रावक जटायुको परलोकके मार्गमें, भाता—सूँखड़ीके समान, नवकार मंत्र सुनाया ।

तत्काल ही मरकर वह पक्षीराज माहेन्द्र कल्पमें देवता हुआ । राम सीताकी शोधमें इधर उधर वनमें फिरने लगे ।

विराधका लक्ष्मणके पक्षमें आना ।

उधर लक्ष्मण बड़ी भारी सेनावाले खरके साथ अकेले ही युद्धकर रहे थे ।

‘ न सिंहस्य सखा युधि । ’

(युद्धमें सिंहके कोई सहकारी—सखा—नहीं होता है ।)

फिर खरके अनुज ‘ त्रिशिराने ’ अपने ज्येष्ठ बंधुसे कहाः—“ ऐसे तुच्छ व्यक्तियोंके साथ आप क्या युद्ध करते है ? ” उसको युद्ध करनेसे रोक, आप लक्ष्मणसे युद्ध करने लगा ।

रामके अनुज लक्ष्मणने, रथमें बैठकर युद्ध करनेको उद्यत बने हुए त्रिशिराको, पतंगकी भाँति मार डाला ।

तब पाताल लंकाके पति 'चंद्रोदरका' पुत्र 'विराध' अपनी सारी तैयार सेनाको लेकर वहाँ आया।

रामके शत्रुओंका नाश करने और उनका आराधक बननेकी इच्छाकर उसने रामके अनुज लक्ष्मणको नमस्कार किया व कहाः—"मैं आपके शत्रुओंका द्वेषी और दुश्मन हूँ और आपका सेवक हूँ। रावणके इन सेवकोंने; मेरे पराक्रमी पिता चंद्रोदरको निकालकर, पाताल लंकाको अपने कबजेमें कर लिया है। हे प्रभु ! यद्यपि अन्धकारका नाश करनेमें सूर्यका कोई सहायक नहीं होता है; तथापि शत्रुओंका संहार करनेमें, आपकी थोड़ी बहुत मदद करनेको यह सेवक तैयार है। अतः इसको युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिए।

लक्ष्मणने हँसते हुए उत्तर दियाः—"मैं अभी ही इन शत्रुओंका संहार कर देता हूँ; तुम खड़े हुए देखो।"

'विजयो ह्यन्य–साहाय्याद्दोष्मतां ह्रियो।'

(दूसरोंकी सहायतासे (शत्रुओंको जीतना) पराक्रमी वीरोंके लिए लज्जाकी बात है) "आजसे मेरे ज्येष्ठ बन्धु रामचंद्र तेरे स्वामी हैं; और मैं अभीहीसे तुझे पाताल लंकाके राज्यपर बिठाता हूँ।"

खर और दूषणका वध।

अपने विरोधी विराधको लक्ष्मणके पास गया देख, खरको बहुत क्रोध आया। उसने धनुषपर चिल्ला चढ़ाकर कहाः—

" रे विश्वासघातक ! बता मेरा पुत्र शंबूक कहाँ है ? मेरे पुत्रको मारनेकी हत्याका अपराध कर, क्या तू इस तुच्छ विराधकी सहायतासे रक्षित होना चाहता है ? "

लक्ष्मणने हँसकर उत्तर दियाः—" तेरा बन्धु त्रिशिरा अपने भतीजेको देखनेके लिए उत्सुक हो रहा था, इस लिए मैंने उसको तेरे पुत्रके पास पहुँचा दिया है । अब यदि तू भी अपने अनुजको और पुत्रको देखनेके लिए बहुत उत्कंठित हो रहा हो, तो तुझको भी उनके पास पहुँचानेके लिए मैं धनुष साहित तैयार हूँ ।

रे मूढ ! पैरोंके नीचे आकर जैसे कुंथुआ मर जाता है, वैसे ही, प्रमाद वश मेरे क्रीडा–प्रहारसे तेरा पुत्र मर-गया । उसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं था; परन्तु अपने आपको सुभट समझने वाला तू यदि मेरे रणकौतुकको पूर्ण करेगा, तो वनवासमें भी मैं दान देनेवाला होऊँगा; यमराजको प्रसन्न करूँगा । "

लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर, खर उनके ऊपर ती-क्ष्ण प्रहार करने लगा; जैसे गिरि शिखरपर हाथी प्रहार करता है ।

लक्ष्मणने भी हजारों कंकपत्रोंसे–कंकपक्षीके परोंवाले-तीरोंसे–आकाश मंडलको आच्छादित कर दिया; जैसे कि सूर्य अपनी किरणोंसे आकाशको पूरित कर देता है ।

इस प्रकार खर और लक्ष्मणके बीचमें बहुत बड़ा युद्ध होने लगा—जो खेचरोंके लिये भयंकर और यमराजके लिए महोत्सव था ।

उस समय आकाशवाणी हुईः—“ वासुदेवके सामने-भी जिसकी ऐसी शक्ति है, वह खर राक्षस प्रतिवासुदेवसे भी अधिक है । ”

आकाशवाणी सुन लक्ष्मणने तत्काल ही क्षुरप्र अस्त्रसे खरका यह सोचकर, शिरच्छेद कर दिया, कि—इसका वध करनेमें इतना समय खोना व्यर्थ है ।

तत्पाश्चात खरका भाई दूषण सेना सहित लक्ष्मणसे युद्ध करनेको उद्यत हुआ । परन्तु लक्ष्मणने थोड़ी ही देरमें उसका भी संहार कर दिया; जैसे कि दावानल यूथ सहित गजेन्द्रका संहार कर देती है ।

विराधको लंकाकी गद्दीपर बैठाना ।

तत्पश्चात विराधको साथ लेकर लक्ष्मण वापिस लौटे । उस समय उनकी बाई आँख फड़की; इससे आर्या सीता और रामके लिए उनको अशुभकी शंका होने लगी ।

बहुत पास आने पर लक्ष्मणने रामको सीताविहीन अकेले बैठे हुए देखा । इससे उनको अत्यंत खेद हुआ । वे रामके सामने जा खड़े हुए; परन्तु रामने उनको नहीं देखा । राम विरहके दुःखसे आकाशकी ओर मुँह करके कहने लग रहे थे—“ हे वनदेवता ! मैं सारे वनमें भटका मगर मैंने

जानकीको कहीं भी नहीं देखा। यदि तुमने उसको कहीं देखा हो, तो बताओ। भूतों और शिकारी प्राणीयोंसे पूर्ण इस भयंकर वनमें सीताको अकेली छोड़कर मैं लक्ष्मणके पास गया और हजारों राक्षस सुभटोंके बीचमें, लक्ष्मणको भी अकेला छोड़कर वापिस चला आया।

हाय! मुझ दुर्बुद्धिकी वह कैसी बुद्धि थी! हे प्रिये! हे सिता! मैंने तुझको इस अरण्यमें अकेली कैसे छोड़ी? हे वत्स! हे लक्ष्मण! तुझको इस रण–संकटमें अकेला छोड़कर मैं वापिस कैसे चला आया?"

इस प्रकार बोलते हुए राम मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरगये। उस समय उनके दुःखसे दुखी हो पशुपक्षी भी आक्रंदन करने लगे और उन महावीरको देखने लगे।

लक्ष्मण बोलेः—"हे आर्य! आप यह क्या कर रहे हैं? यह आपका अनुज लक्ष्मण सारे शत्रुओंको जीतकर आपके पास आया है।'

लक्ष्मणके वचन सुनते ही राम सचेत होगये; जैसे कि अमृतासिंचनसे मरणासन्न सचेत हो जाता है। उन्होंने आँखें खोलीं। लक्ष्मणको सामने खड़े देखा; उनको गलेसे लगा लिया।

लक्ष्मणने आँखोंमें जल भरकर कहाः—"हे आर्य! जानकीको हरनेहीके लिए किसीने सिंहनाद किया था। मगर कुछ चिन्ता नहीं। मैं उस दुष्टके प्राणों सहित जान-

कीको वापिस लाऊँगा । अतःअब चलिए । हम उसको खोजनेका प्रयत्न करें । पहिले इस विराधको इसके पिताके पाताललंकाके राज्यपर बिठाइए; क्योंकि युद्ध करते समय मैंने इसको वचन दिया है । ”

उनको प्रसन्न करनेके लिए विराधने उसी समय सीताकी शोधके लिए विद्याधर सुभटोंको भेजा । उनके वापिस लौट आने तक राम और लक्ष्मण, क्रोधाग्निसे विकराल हो, वार वार निःश्वास डालते हुए और क्रोधसे होठोंको चबाते हुए वहाँ वनमें ही रहे ।

विराधके भेजे हुए विद्याधर बहुत दूरतक फिरे; परन्तु उन्हें सीताके कुछ भी समाचार नहीं मिले; इस लिए वे वापिस लौट आये और नीचामुख करके खड़े होगये ।

उनको नीचा मुहँ कर खडे देख, रामने कहाः—“ हे सुभटो । तुमने स्वामीका काम करनेमें यथा शक्ति कोशिश की, परन्तु सीताके खोज नहीं मिले, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? जब दैव विपरीत होता है, तब तुम या कोई और क्या कर सकते हो ? ”

विराध बोलाः—“ हे प्रभु ! खेद न कीजिए । खेद न करना ही लक्ष्मीका मूल है । आपकी सेवा करनेके लिए यह आपका सेवक तैयार है । अतः मुझे पाताल लंकामें प्रवेश करानेके लिए आज ही आप वहाँ चलिए । वहाँ रहनेसे सीताकी शोध भी सरलताके साथ हो सकेगी ।

तत्पश्चात राम और लक्ष्मण, विराध व उसकी सेना सहित पातालढंकाके पास आये।

वहाँ शत्रुहन्ता खरका पुत्र सुंद बड़ी भारी सेना लेकर युद्ध करनेको सामने आया। बड़ी देरतक अग्रगन्ता पूर्व-विरोधी विराधके साथ वह युद्ध करता रहा।

फिर लक्ष्मण युद्धमें आये। उनको युद्धमें देख, वह चंद्रनखाके कहनेसे भाग कर लंकामें रावणके शरण चला गया।

राम और लक्ष्मणने पातालढंकामें प्रवेशकर, विराधको उसके पिताकी गद्दीपर बिठाया। फिर राम और लक्ष्मण खरके महलमें रहे और विराध युवराजकी भाँति सुंदके महलोंमें रहने लगा।

छद्मवेषी सुग्रीव और सच्चेसुग्रीवका युद्ध।

उधर सुग्रीवकी प्रिया ताराके अभिलाषी साहसगति विद्याधरको—जो बहुत दिनोंसे हिमालयकी गुफामें जाकर विद्या साध रहा था—प्रतारणी विद्या सिद्ध हो गई।

उस विद्याके द्वारा कामरूपी (इच्छित रूप करनेवाले) देवकी तरह वह सुग्रीवका रूपधर, आकाशमें जैसे दूसरा सूर्य हो वैसे, किष्किंधाके पास गया।

सुग्रीव जब क्रीडा करनेके लिए बाहिर गया; तब उसने तारा देवीसे सुशोभित अन्तःपुरमें प्रवेश किया। थोड़ी ही देरके बाद जब सच्चा सुग्रीव वापिस आया, तब उसको

द्वारपालोंने रोककर कहा कि–" राजा सुग्रीवतो अंदर गये हैं। "

एक समान दो सुग्रीवोंको देखकर वालीके पुत्रके मनमें सन्देह पैदा हुआ। इस लिए वह, यह सोच अन्तःपुरमें गया कि अन्तःपुरमें किसी प्रकारका विप्लव न हो जाय। और वहाँ उसने छद्मवेषी सुग्रीवको अन्तःपुरमें घुसते ही रोक दिया, जैसे कि नदीके पूरको पर्वत रोक देता है।

तत्पश्चात जगतका सारा सार एकत्रित किया गया हो, वैसी चौदह अक्षोहिणी सेना वहाँ जमा हुई। जब सेनाने सच्चे और झूठे सुग्रीवको नहीं पहिचाना तब वह दो भागोंमें विभक्त होकर, आधी आधी दोनों ओर हो गई।

फिर दोनोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। भालाओंके आघातसे अग्निकी चिनगारियाँ उछल कर ऐसी जान पड़ने लगीं मानो आकाशमें उल्कापात हो रहा है। सवारसे सवार महावतसे महावत, रथीसे रथी और पैदलसे पैदल, आपसमें युद्ध करने लगे।

प्रौढ पतिके समागमसे मुग्धा स्त्री जैसे काँपती है, वैसे ही चतुरंगिणी सेनाके विमर्दसे पृथ्वी काँपने लगी।

सच्चे सुग्रीवने ऊँचा सिरकर छद्म वेषी सुग्रीवको युद्धके लिए ललकारा—"अरे! परघरमें प्रवेश करनेवाले चोर! सामने आ।" ललकार सुन तिरस्कृत हाथीकी भाँति छद्मवेषी सुग्रीव उग्र गर्जना करता हुआ उसके सामने गया।

क्रोधसे रक्तनेत्र किये हुए, यमराजके सहोदरकी भाँति, जगतको त्रासित करते हुए वे युद्ध करने लगे। दोनों वीर रणचतुर थे; इस लिए एक दूसरेके शस्त्रोंको अपने शस्त्रोंसे त्रणकी भाँति छिन्न करने लगा।

दो भैंसोंके युद्धमें जैसे वृक्षके टुकड़े उड़ते हैं, वैसे उन दोनोंके युद्धमें शस्त्रोंके टुकड़े आकाशमें उड़ने लगे। उनको देख कर आकाशस्थ खेचरियाँ भयभीत होने लगीं।

क्रोधी जन शिरोमणि उन दोनोंके शस्त्र जब छिन्नभिन्न होगये तब वे, मल्लयुद्ध करने लगे। वे ऐसे मालूम होते थे मानो दो पर्वत युद्ध कर रहे हैं। क्षणमें आकाशमें उड़ते और क्षणमें पृथ्वीपर गिरते हुए वे वीर चूडामणी दो मुर्गोंके समान जान पड़ने लगे।

दोनों समान बलवाले थे, इस लिए, कोई किसीको न जीत सका और अन्तमें वे थक कर दो बैलोंकी भाँति दूर जा खड़े हुए।

पश्चात सच्चे सुग्रीवने अपनी सहायताके लिए हनुमानको बुलाया; और फिरसे उसने छद्मवेषी सुग्रीवके साथ उग्र युद्ध करना प्रारंभ किया।

हनुमान, दोनोंके भेदको—सच्चे झूठेको—न जान सकनेसे चुपचाप देखते ही रहे; इससे छद्मवेषी सुग्रीवने सच्चे सुग्रीवको अच्छी तरहसे पीट डाला।

सच्चे सुग्रीवका सहायतार्थ रामके पास जाना ।

दूसरी बार युद्ध करनेसे सुग्रीव मनसे और शरीरसे खिन्न हो गया; इस लिए किष्किंधा छोड़ वह किसी अन्य स्थानमें जाकर रहा । जार सुग्रीव स्वस्थ मन होकर महलहीमें रहा; मगर वालीके कुमारके रोकनेसे वह अन्तःपुरमें न जा सका ।

सच्चा सुग्रीव सिर झुकाकर मनमें सोचने लगा— "अहो ! यह मेरा स्त्रीलंपट शत्रु, कूट कपट करनेमें बहुत होशियार जान पड़ता है । मेरे खास नौकर भी मायासे उसके वशमें हो गये हैं । अहा ! यह तो अपने घोड़ेहीसे अपना पराभव हुआ है । मायासे उत्कृष्ट बने हुए इस शत्रुको अब मैं कैसे मारूँ ? अरे ! पराक्रम विहीन और वालीके नामको लज्जित करनेवाले मुझ कापुरुषको धिक्कार है ! महाबलवान वालीको धन्य है, कि जो पुरुषव्रतको अखंड रख, तृणकी भाँति राजको छोड़, मोक्षमें चले गये ।

मेरा पुत्र 'चंद्ररश्मि' संसार भरमें बलवान है; परन्तु वह क्या कर सकता है ? दोनोंके भेदको न समझ सकनेसे वह किसकी सहायता करे और किसको मारे; परन्तु उसने यह बहुत अच्छा किया कि, उस छद्मवेषीको अन्तःपुरमें नहीं घुसने दिया । अब उस बलिष्ठ शत्रुको मारनेके लिए कौनसे सबल पुरुषका आश्रय ग्रहण करूँ ?

"यद्घात्या एव रिपवः स्वतोऽपि परतोऽपि वा ।"

(क्योंकि--अपनेसे या दूसरेसे शत्रु तो मारने योग्य ही है।) इस शत्रुका नाश करनेके लिए तीन लोकमें वीर शिरोमणि, मरुतके यज्ञको विध्वंस करनेवाले रावणकी जाकर मैं शरण लूँ। मगर रावण तो प्रकृतिसे ही स्त्रीलंपट और जगतका कंटक है; इस लिए वह मुझे और उसे दोनोंको मार डालेगा और स्वयं ताराको ग्रहणकर लेगा।

ऐसी आपत्तिमें सहाय करनेवाला, उग्र प्रतापी एक खर राक्षस था; मगर उसको रामने मारडाला। इस लिए अब यही उचित है कि, मैं पाताल लंकामें जाकर राम-लक्ष्मणको मित्र करूँ। क्योंकि शरणागत विराधको उन्होंने तत्काल ही पाताल लंकाका राज्य दे दिया हैं; और अभी वे, पराक्रमी विराधके आग्रहसे वहीं ठहरे हुए हैं।"

ऐसा विचार कर, सुग्रीवने अपने एक विश्वास पात्र दूतको, एकान्तमें समझाकर, विराधके पास भेजा। दूतने पाताल लंकामें जा, विरोधको प्रणाम कर, अपने स्वामीके सारे कष्टको उसके आगे सुनाया, और कहाः—"मेरे स्वामी सुग्रीव इस समय बड़ी भारी विपत्तिमें फँस गये हैं। इस लिए तुम्हारे द्वारा वे रामलक्ष्मणके शरणमें जाना चाहते हैं।"

सुनकर विराधने दूतसे कहाः—"तू सुग्रीवको जाकर कह कि वे तत्काल ही यहाँ आवें। क्यों कि—

'सतां संगो हि पुण्यतः।'

(सत्पुरुषोंकी संगति पुण्यहीसे प्राप्त होती है ।)

दूतने शीघ्र ही सुग्रीवके पास जाकर उसको विराधका कथन कह सुनाया ।

तत्पश्चात सुग्रीव अश्वोंके गलेके गहनोंके शब्दोंसे दिशाओंको गुँजाता हुआ, तीव्र वेगसे दूरको अदूर करता हुआ, वहाँसे रवाना हो गया; और क्षण वारहीमें पाताललंकामें जा पहुँचा; जैसे कि कोई घरसे उपगृहमें (पासवाले घरमें) चला जाता है ।

विराधने हर्षसे सामने जाकर सुग्रीवका स्वागत किया । फिर सुग्रीवको लेकर विराध रामके पास गया । सुग्रीवने रामको प्रणाम किया । विराधने सुग्रीवकी सारी कष्ट कथा रामको सुनाई ।

सुग्रीव बोलाः—" हे प्रभो ! इस दुःखमें आप ही मेरी गति हैं । जैसे कि छींकके बंद हो जानेसे सूर्य ही आश्रय होता है—सूर्यकी ओर देखनेहीसे छींक आती है । "

राम स्वयं स्त्रीवियोगसे पीडित थे, तो भी उन्होंने सुग्रीवके दुःखको नष्ट करना स्वीकार किया ।

' स्वकार्यादधिको यत्नः परकार्ये महीयसां । '

(महापुरुष अपने कार्यकी अपेक्षा दूसरोंके कार्यमें अधिक यत्न करते हैं ।)

तत्पश्चात विराधने सीताहरणके सब समाचार सुग्रीवको सुनाये । सुनकर सुग्रीवने हाथ जोड़, कहाः—" हे देव !

विश्वकी रक्षा करनेमें समर्थ ऐसे आपको, और जगतको प्रकाशित करनेवाले सूर्यको, किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है; तथापि, मैं निवेदन करता हूँ कि–आपकी कृपासे मेरे शत्रुका नाश हो जानेपर सेना सहित मैं आपका अनुचर होकर रहूँगा और थोड़े ही समयमें सीताको खोज लाऊँगा।"

फिर राम सुग्रीव सहित किष्किंधामें गये। विराध भी उनके साथ जाना चाहता था; परन्तु वह समझाकर वापिस लौटा दिया गया।

रामचंद्र किष्किंधाके दर्वाजेपर जाकर ठहरे; सच्चे सुग्रीवने छद्मवेषी सुग्रीवको युद्धार्थ बुलाया। वह तत्काल ही गर्जना करता हुआ नगरके बाहिर आया।

'रणाय नालसाः शूरा, भोजनाय द्विजा इव।'

(जैसे भोजनमें ब्राह्मण आलस नहीं करते हैं, वैसे ही शूर भी रणमें आलस्य नहीं किया करते हैं।)

दुर्द्धर चरण-न्याससे–पृथ्वीको कंपित करते हुए वे दोनों वीर वनके उन्मत्त हाथियोंकी भाँति युद्ध करने लगे।

राम दोनोंको समान रूपवाले देख, अपने सुग्रीवको और दूसरे सुग्रीवको न पहिचान, संशयित हो, थोड़ी देर तक तो तटस्थ खड़े रहे।

'पहिले तो ऐसा करना चाहिए' ऐसा सोच रामने वज्रावर्त-धनुषकी टंकार की। उस टंकारसे साहसगति

विद्याधरकी रूपान्तर करनेवाली विद्या तत्काल ही, हरिणोंकी भाँति पलायन कर गई। साहसगति अपने असली रूपमें आगया।

उसको देखकर—पहिचानकर—रामने तिरस्कार करते हुए कहाः—“ रे पापी ! मायासे सबको मुग्ध करके तू परस्त्रीके साथ भोग करना चाहता है। मगर अब धनुष चढ़ा।” फिर एक ही बाणमें रामने उसके प्राण हर लिए।

‘ न द्वितीया चपेटा हि हरेर्हरिणमारणे।’

(हरिणको मारनेके लिए, सिंहको दूसरा थप्पड़ नहीं लगाना पड़ता है।)

तत्पश्चात विराधकी भाँति ही रामने सुग्रीवको गद्दीपर बिठाया। उसके पुरजन और सेवक लोग, सच्चे सुग्रीवकी पूर्वकी भाँति ही सेवा करने लगे।

सुग्रीवने हाथ जोड़कर अपनी तेरह कन्याओंको ग्रहण करनेकी रामसे प्रार्थना की। रामने उत्तर दियाः—“ हे सुग्रीव ! इन कन्याओंकी या और किसी वस्तुकी मुझको आवश्यकता नहीं है।”

राम बाहिर उद्यानहीमें रहे। सुग्रीव रामकी आज्ञासे नगरमें गया।

मंदोदरीका सीताको समझाना।

उधर लंकामें मंदोदरी आदि रावणके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ खर दूषण आदिके वधका वृत्तान्त सुनकर रोने

लगीं ? रावणकी बहिन चंद्रनखा भी दोनों हाथोंसे छाती कूटती हुई, सुंदको साथ लेकर रावणके घरमें गई।

रावणको देख उसके गलेसे चिमट गई और उच्च स्वरसे रोती हुई चंद्रनखा कहने लगीः—"अरे ! दैवने मुझको मार डाला। मेरा पुत्र, मेरा पति, मेरे दो देवर और चौदह हजार कुलपति मारे गये। हे बन्धु ! तेरे जीवित होते हुए भी अभिमानी शत्रुओंने, तेरी दी हुई पाताल लंकाकी राजधानी हमसे छीन ली। इससे अपने सुंद पुत्रको ले, प्राण बचा, भाग, तेरे शरणमें आई हूँ। अतः बता अब मैं कहाँ जाकर रहूँ ?"

रुदन करती हुई अपनी बहिनको रावणने समझाकर कहाः—"तेरे पति और पुत्रको मारनेवालेको मैं थोड़े ही समयमें मार डालूँगा।"

एकवार रावण इस शोकसे और सीताकी विरहवेदनासे फाल–च्युत व्याघ्रकी भाँति निराश होकर लोट रहा था; उस समय मंदोदरीने आकर कहाः—"हे स्वामी ! साधारण मनुष्यकी भाँति इस तरह निश्चेष्ट होकर आप कैसे सो रहे हैं। ?"

रावणने उत्तर दियाः—"सीताके विरहतापसे मैं इतना विकल हो रहा हूँ कि–मुझमें किसी प्रकारकी चेष्टा करनेका, कहनेका या देखनेका सामर्थ्य नहीं रह गया है। इस लिए हे मानिनी ! यदि तू मुझको जीवित रखना

चाहती है, तो, मान छोड़कर सीताके पास जा और उसको विनयसे समझा, कि जिससे वह मेरे साथ क्रीडा करनेको उद्यत हो। मैंने गुरुकी साक्षीसे नियम लिया है कि–'अनेच्छु परस्त्रीके साथ मैं कभी भोग नहीं करूँगा।' वह नियम आज मेरे लिए अर्गला हो रहा है।"

रावणके वचन सुन, पतिपीड़ासे पीडित बनी हुई कुलीन मंदोदरी तत्काल ही देवरमण उद्यानमें गई। वहाँ जाकर उसने सीतासे कहाः—"मैं रावणकी पट्टरानी मंदोदरी हूँ। मैं भी तुम्हारी दासी होकर रहूँगी। अतः तुम रावणको चाहने लगो। हे सीता! तुम्हें धन्य है, जो विश्वपूज्य चरणकमलवाले मेरे बलवान स्वामी भी तुम्हारे चरणकमलकी सेवा करनेको उद्यत हैं।

यदि रावणके समान पति मिले, तो उनके सामने, प्यादेके समान भूचारी और तपस्वी राम पति रंक मात्र है!"

मंदोदरीके वचन सुन, क्रोधित हो, सीता बोलीः—"कहाँ सिंह और कहाँ सियार? कहाँ गरुड और कहाँ काकपक्षी? इसी भाँति कहाँ राम और कहाँ तेरा पति रावण? अहो! तेरा और पापी रावणका दम्पतीपन योग्य ही हुआ है। क्योंकि वह (रावण) परस्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा करता है और तू उसकी स्त्री–उसकी कुट्टनीका कार्य करती है।

रे पापिनी स्त्री ! जब तेरा मुँह भी देखने योग्य नहीं है; तब फिर तू संभाषण करने योग्य तो कैसे हो सकती है ? अतः शीघ्र ही इस जगहसे चली जा; मेरा दृष्टिमार्ग छोड़ दे ।"

उसी समय रावण भी वहाँ जा पहुँचा और बोलाः— "हे सीता ! तू इसपर क्यों कोप करती है ? यह मंदोदरी तो तेरी दासी है, और हे देवी ! मैं स्वतः भी तेरा दास हूँ । इसलिए मुझपर प्रसन्न हो । हे जानकी ! तू इस मनुष्यको (रावणको) दृष्टिसे भी क्यों प्रसन्न नहीं करती है ?"

महा सती सीताने मुँह फेरकर कहाः—"हे दुष्ट ! जान पड़ता है कि, तुझपर यमराजकी दृष्टि पड़ी है, इसी लिए तूने मेरा (रामकी स्त्रीका) हरण किया है । हे हताश और अप्रार्थित वस्तुकी प्रार्थना करने वाले ! तेरी इस आशाको धिक्कार है । शत्रुओंके कालरूप अनुज बंधु सहित रामके आगे तू कितने समयतक जीवित रहने वाला है ?"

सीताने इस भाँति उसका तिरस्कार किया, तो भी वह बार बार पहिलेकी तरह ही अनुनय विनय करता रहा ।

'........धिगहो, कामावस्था बलीयसी ।'

(अहो बलवती कामावस्थाको धिक्कार है ।)

उसी समय विपत्तिनिमग्ना सीताको देख न सका हो ऐसे भाव प्रकट करता हुआ सूर्य, पश्चिम समुद्रमें जाकर विलीन होगया—अस्त होगया । घोर रात्रिने प्रवेश किया। घोर बुद्धिवाला रावण क्रोधसे और कामसे अंधा होकर सीताको कष्ट पहुँचाने लगा ।

सीताके पास विभीषणका आना ।

उल्लू घुत्कार करने लगे; फेस फूँफाड़े मारने लगे सिंह गर्जना करने लगे; बिल्लियाँ परस्पर लड़ने लगीं; व्याघ्र पूँछें फटकारने लगे; सर्प फूत्कार करने लगे। पिशाच, प्रेत, वेताल, और भूत, नंगी बरछियाँ लेकर फिरने लगे ।

ये रावणकी मायासे बने हुए, यमराजके सभासद तुल्य भयंकर प्राणी उछलते और खराब चेष्टाएँ करते हुए सीताके पास गये ।

सीता मनमें पंचपरमेष्ठीका ध्यान करती हुई, चुपचाप बैठी रही। मगर भयभीत होकर उन्होंने रावणकी इच्छा नहीं की।

रातका यह सारा वृत्तान्त विभीषणने सुना, इस लिए रावणके पास जाते हुए पहिले वह सीताके पास गया और उसने उनसे पूछाः—" हे भद्रे! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? कहाँसे आई हो? और यहाँ तुमको कौन लाया है? सब बातें निर्भीक होकर मुझसे कहो। मैं परस्त्रीका सहोदर हूँ। "

उसको मध्यस्थ समझ, नीचा मुखकर सीताने कहाः— “मैं जनक राजाकी पुत्री और भामंडल विद्याधरकी बहिन हूँ। रामचंद्र मेरे पति हैं। राजा दशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ। मेरा नाम सीता है। अनुज बंधु सहित मेरे पति दण्डकारण्यमें आये थे। मैं भी उनके साथ आई थी।

वहाँ मेरे देवर क्रीडा करनेके लिए इधर उधर फिर रहे थे; इतनेहीमें आकाशस्थ एक महान खड्गको उन्होंने देखा। कौतुकसे उन्होंने उसको हाथमें लेलिया। उससे उन्होंने पासहीमें एक वंशजाल थी उसको छेदा; इससे उसके अंदर रहे हुए उस खड्गके साधकका मस्तक अजानमें कट गया।

युद्ध करनेकी इच्छा न रखनेवाले निरपराधी मनुष्यका वधकर मैंने बहुत बुरा कार्य किया है। ऐसे पश्चात्ताप करते हुए वे अपने ज्येष्ठ बन्धुके पास आये।

थोड़ी ही देरमें मेरे देवरके पदचिन्होंके सहारे उस खड्गसाधककी उत्तर साधिका कोई स्त्री कोप-युक्त चित्त हो हमारे पास आई। अद्भुत रूपवाले इन्द्र तुल्य मेरे पतिको देख कर उस काम-पीडित स्त्रीने उनसे क्रीडा करनेकी प्रार्थना की। मगर मेरे पतिने, उसको जानकर, उसकी प्रार्थना अस्वीकार की। इससे वह वहाँसे चली गई; और बड़ी भारी उग्र राक्षस सेना लेकर वापिस आई।

उसी समय विपत्तिनिमग्ना सीताको देख न सका हो ऐसे भाव प्रकट करता हुआ सूर्य, पश्चिम समुद्रमें जाकर विलीन होगया–अस्त होगया । घोर रात्रिने प्रवेश किया । घोर बुद्धिवाला रावण क्रोधसे और कामसे अंधा होकर सीताको कष्ट पहुँचाने लगा ।

सीताके पास विभीषणका आना ।

उल्लू घुत्कार करने लगे; फेस फूँफाड़े मारने लगे सिंह गर्जना करने लगे; बिल्लियाँ परस्पर लड़ने लगीं; व्याघ्र पूँछें फटकारने लगे; सर्प फूत्कार करने लगे । पिशाच, प्रेत, वेताल, और भूत, नंगी बरछियाँ लेकर फिरने लगे ।

ये रावणकी मायासे बने हुए, यमराजके सभासद तुल्य भयंकर प्राणी उछलते और खराब चेष्टाएँ करते हुए सीताके पास गये ।

सीता मनमें पंचपरमेष्ठीका ध्यान करती हुई, चुपचाप बैठी रही । मगर भयभीत होकर उन्होंने रावणकी इच्छा नहीं की ।

रातका यह सारा वृत्तान्त विभीषणने सुना, इस लिए रावणके पास जाते हुए पहिले वह सीताके पास गया और उसने उनसे पूछाः—"हे भद्रे ! तुम कौन हो ? किसकी स्त्री हो ? कहाँसे आई हो ? और यहाँ तुमको कौन लाया है ? सब बातें निर्भीक होकर मुझसे कहो । मैं परस्त्रीका सहोदर हूँ । "

उसको मध्यस्थ समझ, नीचा मुखकर सीताने कहाः— "मैं जनक राजाकी पुत्री और भामंडल विद्याधरकी बहिन हूँ। रामचंद्र मेरे पति हैं। राजा दशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ। मेरा नाम सीता है। अनुज बंधु सहित मेरे पति दण्डकारण्यमें आये थे। मैं भी उनके साथ आई थी।

वहाँ मेरे देवर क्रीडा करनेके लिए इधर उधर फिर रहे थे; इतनेहीमें आकाशस्थ एक महान खड्गको उन्होंने देखा। कौतुकसे उन्होंने उसको हाथमें लेलिया। उससे उन्होंने पासहीमें एक वंशजाल थी उसको छेदा; इससे उसके अंदर रहे हुए उस खड्गके साधकका मस्तक अजानमें कट गया।

युद्ध करनेकी इच्छा न रखनेवाले निरपराधी मनुष्यका वधकर मैंने बहुत बुरा कार्य किया है। ऐसे पश्चात्ताप करते हुए वे अपने ज्येष्ठ बन्धुके पास आये।

थोड़ी ही देरमें मेरे देवरके पदचिन्होंके सहारे उस खड्गसाधककी उत्तर साधिका कोई स्त्री कोप-युक्त चित्त हो हमारे पास आई। अद्भुत रूपवाले इन्द्र तुल्य मेरे पतिको देख कर उस काम-पीडित स्त्रीने उनसे क्रीडा करनेकी प्रार्थना की। मगर मेरे पतिने, उसको जानकर, उसकी प्रार्थना अस्वीकार की। इससे वह वहाँसे चली गई; और बड़ी भारी उग्र राक्षस सेना लेकर वापिस आई।

तत्पश्चात ' यदि संकट पड़े तो सिंहनाद करना ' ऐसा संकेत कर लक्ष्मण युद्ध करनेको गये। फिर मायासे झूठा सिंहनाद कर, मेरे पतिको मुझसे दूर हटा, दुष्ट इच्छा-वाला यह रावण मुझको अपनी मृत्युके लिए यहाँ ले आया है। "

रावणकी उन्मत्ततासे विभीषणका कुल-प्रधानोंको बुलाना।

इस प्रकार सीताका वृत्तान्त सुन, विभीषणने जाकर रावणको नमस्कार किया और कहाः—" हे स्वामी, आपने अपने कुलको कलंकित करनेवाला यह कार्य किया है। मगर राम लक्ष्मण हमको मारनेके लिए यहाँ आवें इसके पहिले ही आप सीताको शीघ्रतासे उनके पास छोड़ आइए। "

विभीषणकी बातें सुन क्रोधसे लाल आँखें कर रावण बोलाः—" रे भीरु! तू ऐसे क्या बोल रहा है? क्या तू मेरे पराक्रमको भूल गया है? अनुनय करनेसे यह सीता अवश्य मेरी स्त्री होगी; और पीछे राम लक्ष्मण यदि यहाँ आयँगे तो मैं उनको मार डालूँगा। विभीषणने कहाः—" हे भ्राता! ज्ञानीने कहा था कि, सीताके कारण अपना कुल नष्ट होगा। सो ज्ञानीका वचन सत्य होता दिखता है। यदि ऐसा नहीं होता तो आप इस भक्त बन्धुके वचन क्यों न मानते? और मेरे द्वारा वध किया हुआ दशरथ फिरसे कैसे जीवित हो उठता?

हे महाभुज! जो भावी है, वह कभी अन्यथा होनेवाला नहीं है; तथापि आपसे प्रार्थना है कि, अपने कुलकी नाश करनेवाली सीताको आप छोड़ दीजिए।"

बिभीषणके वचन सुने ही न हों, इस तरह रावण वहाँसे उठ, अशोकवृक्षके नीचेसे सीताको पुष्पक विमानमें बिठा, फिरने लगा; उसको अपना ऐश्वर्य दिखाने लगा और कहने लगा:—"हे हंसगामिनी! रत्नमय शिखर वाले और स्वादिष्ट जलके स्रोतवाले ये पर्वत मेरे क्रीडा पर्वत हैं। नंदनवनके समान ये उद्यान हैं; इच्छानुरूप भोगने योग्य ये धारागृह हैं; हंस सहित ये क्रीडा करनेकी नदियाँ हैं।

हे सुन्दर भ्रकुटीवाली स्त्री! स्वर्ग खंडके तुल्य ये रति-गृह हैं; इनमेंसे जहाँ तेरी इच्छा हो, उसीमें तू मेरे साथ क्रीडा कर।"

सीता हंसकी भाँति रामके चरणकमलका ध्यान करती रही। रावणकी इस प्रकारकी बातें सुन उसको किंचित मात्र भी क्षोभ नहीं हुआ। पृथ्वीकी भाँति धीर होकर वह सब कुछ सुनती रही।

सारे रमणीय स्थानोंमें भ्रमण कर अन्तमें उसने सीताको वापिस अशोक वृक्षके नीचे छोड़ दिया।

जब विभीषणने देखा कि, रावण उन्मत्त हो गया है; वह उसकी बात माननेवाला नहीं है; तब उसने उस विष-यका विचार करनेके लिए कुल प्रधानोंको बुलाया।

उनके आने पर विभीषणने उनसे कहाः—" हे कुल-मंत्रियो! कामादि अंतर शत्रु भूतकी भाँति विषम हैं; उनमेंसे एक भी प्रमादी मनुष्यको हैरान कर देता है।

अपना स्वामी रावण अत्यन्त कामातुर हुआ है। अकेला काम ही दुर्जय है; और उसको यदि परस्त्रीकी सहायता मिल जाय फिर तो कहना ही क्या है? उस कामदेवके कारण लंकापुरीका स्वामी अति बलवान होने पर भी, शीघ्र ही अत्यंत दुःख सागरमें आ गिरेगा।"

मंत्रियोंने कहाः—" हम तो केवल नामके मंत्री हैं। वास्तविक मंत्री तो आप हैं जो इतनी दीर्घदृष्टि रखते हैं। जब स्वामी कामदेवके वश हो गये हैं, तब उनपर हमारे कहनेका कुछ असर नहीं होगा। जैसे कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर जैनधर्मका उपदेश कुछ असर नहीं करता है। सुग्रीव और हनुमानके समान बलवान पुरुष भी रामसे मिल गये हैं।

'महात्मानां न्यायभाजां कः पक्षं नावलंबते?'

(न्यायी महात्माके पक्षको कौन ग्रहण नहीं करता है?) सीताके निमित्तसे रामभद्रके हाथों अपने कुलका क्षय होना ज्ञानियोंने बताया है; तो भी पुरुषके आधीन जो कुछ हो; वह उपाय, समयके योग्य, करना कर्तव्य है।"

इस प्रकार मंत्रियोंके वचन सुन, विभीषणने लंकाके किले पर यंत्रादि रखवा दिये।—

'अनागतं हि पश्यंति, मंत्रिणो मंत्रचक्षुषा।'
(मंत्री विचार रूपी नेत्रोंसे अनागत वस्तुको भी देखते हैं।)

सीताकी खोजके लिए सुग्रीवादिका निकलना।

इधर सीताके विरहसे पीडित राम, लक्ष्मण प्रदत्त आश्वासनसे, बड़ी कठिनताके साथ समय निकाल रहे थे।

एकवार रामने लक्ष्मणको शिक्षा देकर सुग्रीवके पास भेजा। लक्ष्मण, तरकश, धनुष और खड्ग लेकर सुग्रीवके पास चले। चरण-न्याससे पृथ्वीको चूर्ण करते, पर्वतोंको कँपाते और वेगके झपाटेसे लटकती हुई भुजाओं द्वारा मार्गके वृक्षोंको गिराते हुए, वे किष्किंधामें पहुँचे।

भ्रकुटीके चढ़नेसे जिनका लिलाट भयंकर हो रहा है; आँखें जिनकी लाल हो रही हैं, ऐसे लक्ष्मणको देख भयभीत हो, द्वारपालोंने तत्काल ही उन्हें मार्ग दे दिया। वे सुग्रीवके महलमें पहुँचे।

लक्ष्मणका आगमन सुन कपिराज सुग्रीव तत्काल ही अन्तःपुरसे बाहिर निकला। और भयसे काँपता हुआ उनके सामने खड़ा हो गया।

लक्ष्मणने क्रोधसे कहा:—"हे वानर! अब तू कृतार्थ हो गया है। तेरा काम बन जानेसे तू अन्तःपुरकी कामिनियोंसे परिवृत्त होकर निःशंक सुखमें निमग्न हो रहा है। स्वामी राम भद्र वृक्षके नीचे बैठ, बरसके बराबर दिन निकाल रहे हैं, इसकी तुझको कुछ भी खबर नहीं है।

जान पड़ता है कि, तू स्वीकृत बातको भी भूल गया है। अब सीताकी शोध करनेको उद्यत हो; नहीं तो साहस गतिवाले मार्गको जा। वह रस्ता अब तक संकुचित नहीं हुआ है।"

लक्ष्मणके वचन सुन, सुग्रीव उनके चरणमें गिर गया और बोलाः—"हे स्वामी! मेरे प्रमादको सहन करो–मुझे क्षमा करो–और मुझ पर प्रसन्न होओ। क्योंकि आप मेरे प्रभु हो।"

इस प्रकार लक्ष्मणकी आराधना कर, लक्ष्मणके पीछे पीछे सुग्रीव रामके पास आया; और भक्ति सहित उनको प्रणाम किया। फिर सुग्रीवने अपने सैनिकोंको आज्ञा दीः—

"हे सैनिको! तुम पराक्रमी हो और तुम सर्वत्र अस्खलित गति हो–सब जगह तुम जा सकते हो। इस लिए सब जगह जाकर सीताकी शोध करो।"

इस प्रकारकी आज्ञा सुन सुग्रीवके सुभट, सब द्वीपोंमें, पर्वतोंमें, वनोंमें, समुद्रोंमें और गुफाओंमें सीताकी शोध करने लगे।

रावण सीताको ले गया इसके समाचार मिलना।

सीताहरणके समाचार सुन, भामंडल रामचंद्रके पास आया, और अत्यंत दुःखी होकर वहीं रहा। अपने स्वामीके दुःखसे दुःखी विराध बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ आया, और पुराने प्यादेकी तरह वह भी रामकी सेवा करता हुआ, वहीं रहा।

सुग्रीव स्वयमेव भी सीताकी शोध करनेको निकला। वह अनुक्रमसे कम्बूद्वीपमें पहुँचा। उसको दूरसे आते देख रत्नजटी विचारने लगा:—“ क्या रावणने मेरा अपराध याद करके, मुझको मारनेके लिए इस महाबाहु वानरपति सुग्रीवको भेजा है? पराक्रमी रावणने पहिले मेरी सारी विद्याएँ हरली हैं; अब यह वानरपति मेरे प्राण हर लेगा।”

रत्नजटी इस तरह विचार करने लग रहा था, उसी समय सुग्रीव उसके पास पहुँचा और कहने लगा:-“ हे रत्नजटी! मुझे देखकर तू खड़ा क्यो नहीं हुआ? क्या तुझे आकाशमें गमन करते आलस्य आता है?”

रत्नजटी बोला:—“ रावण जानकीका हरण कर ले जा रहाथा, मैं उसके साथ युद्ध करने गया। वहाँ उसने मेरी सारी विद्याएँ हरलीं।”

सुनकर, तत्काल ही सुग्रीव उसको उठा कर रामके चरणोंमें लाया। रामने उससे सारी बातें पूछीं। उसने सीताका वृत्तांत कहना शुरू किया:—

“ हे देव! क्रूर और दुरात्मा रावण सीताको हरकर ले गया है। हा राम! हा वत्स लक्ष्मण! हा भ्रात भामंडल! इस तरह पुकारकर रोती हुई सीताके शब्द सुनकर, मुझे रावणपर क्रोध आया। मैं उससे लड़ने गया। उसने कोप करके मेरी सारी विद्याएँ हरलीं।”

यदि उसकी अवज्ञा करेगा तो वह तत्काल ही तुम्हारे पास चला आयगा। ”

वृद्ध कपियोंकी सलाहसे राम सम्मत हुए। इसलिए श्रीभूतिको कह कर सुग्रीवने हनुमानको बुलाया।

सूर्यके समान तेजवाले हनुमानने, तत्काल ही वहाँ आकर, सुग्रीव आदिसे परिपूर्ण सभामें बैठे हुए रामको प्रणाम किया। सुग्रीवने रामसे कहाः—“पवनंजयके विनयी पुत्र हनुमान, विपत्तिके समय हमारे परम बन्धु हैं। विद्याधरोंमें इनकी बराबरी करनेवाला एक भी नहीं है। इसलिए सीताकी शोध करनेके लिए इन्हींको आज्ञा दीजिए। ”

हनुमानने कहाः—“मेरे समान अनेक विद्याधर हैं; परन्तु राजा सुग्रीव मुझसे विशेष स्नेह रखते हैं, इसी लिए ये ऐसा कहते हैं।

गव गवाक्ष, गवया, शरभ, गंधमादन, नील, द्विविद, मैंद, जामवान, अंगद और नल आदि अनेक विद्याधर यहाँ उपस्थित हैं; मैं भी उन्हींकी संख्याको पूरी करनेके लिए एक हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो, तो राक्षस द्वीप सहित लंकाको उठाकर यहाँ लाऊँ और आज्ञा हो तो बन्धुओं सहित रावणको बाँधकर यहाँ ले आऊँ ? ”

राम बोलेः—“हे वीर हनुमान ! तुझमें सब कुछ करनेकी शक्ति है। मगर अभी तो तू सीर्फ इतना ही करना कि

लंकामें जाकर सीताकी खोजकरना; उससे मिलकर मेरा चिन्ह यह अंगूठी उसको देना और उसका चूडामणि चिन्ह स्वरूप यहाँ ले आना। उसको मेरा संदेशा कहना कि–हे देवी! रामचंद्र तुह्मारे वियोगसे अत्यंत पीडित हो, तुह्मारा ही ध्यान करते हैं। रामके वियोगसे कहीं जीवनको मत छोड़ देना-मर मत जाना। थोड़े ही दिनमें तुम देखोगी कि लक्ष्मणने रावणको मार डाला है।

हनुमानने कहा:—" हे प्रभो! मैं आपकी आज्ञाका पालन कर वापिस आऊँ तब तक आप यहीं रहिए।" ऐसा कह, रामको नमस्कारकर, एक वेगवाले विमानमें सवार हो, हनुमान लंकाकी ओर चला।

हनुमानका अपने नानासे युद्ध।

आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमान महेन्द्र गिरिके शिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने नाना महेन्द्रका महेन्द्रपुर नगर देखा। उसे देख, हनुमानने सोचा—" यह मेरे उन्हीं नानाका नगर है कि, जिन्होंने मेरी निरपराधिनी माताको निकाल दिया था।" ऐसे पहिलेकी बातोंका विचार करते हुए हनुमानको क्रोध हो आया। इस लिए उन्होंने रणके बाजे बजवा दिये। ब्रह्मांडको फोड़ दे इस तरहकी ध्वनि उन बाजोंसे निकलने लगी और दिशाओंको व्याप्त करने लगी।

सीताका वृत्तांत सुनकर, राम प्रसन्न हुए। और सुसंगीतपुरके पति रत्नजटीसे वे गले लगकर मिले।

फिर राम बारबार उससे सीताके विषयमें पूछते थे; और वह उनके मनको प्रसन्न करनेके लिए बारबार उत्तर देता था।

रामने सुग्रीव आदि महा सुभटोंसे पूछाः—" यहाँसे उस राक्षसकी लंकापुरी कितनी दूर है ? "

उन्होंने उत्तर दियाः—" वह पुरी दूर हो या निकट, इससे क्या होता जाता है ? हम सब तो उस जगत–विजयी रावणके सामने तृणके समान हैं। "

राम बोलेः—" वह जीता जायगा कि नहीं; इसकी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है। तुम तो दर्शनके जामिनकी भाँति उसको हमें दिखा दो। फिर तुम लक्ष्मणके बाणसे निकले हुए शरोंको उसके गलेका रक्त पीते हुए देखकर समझ जाओगे कि वह कितना सामर्थ्यवान है। "

लक्ष्मण बोलेः—" वह रावण बिचारा कौन चीज है ? कि-जिसने छल करके ऐसा कार्य किया है ? संग्रामरूपी नाटकमें सभ्य होकर खड़े हुए, तुम्हारे देखते ही देखते मैं क्षत्रियाचारसे उसका शिरच्छेद करदूँगा। "

जामवान बोलाः—" तुम्हारेमें सब सामर्थ्य है; यह ठीक है; परन्तु अनलवीर्य नामा ज्ञानी साधुने कहा है कि, जो पुरुष कोटिशिलाको उठावेगा, वही रावणको

मारेगा। इसलिए हमारी प्रतीतिके लिए तुम उस शिलाको उठाओ।"

लक्ष्मणने उत्तर दियाः—"मैं तैयार हूँ।"

फिर वे आकाश मार्गसे जहाँ कोटि शिला थी वहाँ लक्ष्मणको ले गये। लक्ष्मणने लताकी तरह तत्काल ही उस शिलाको अपनी भुजासे उठा लिया। यह देख, 'साधु, साधु' शब्दोंका उच्चारण कर, देवताओंने आकाशमेंसे फूल बरसाये। अन्य सबको भी प्रतीति हुई। फिर वे गये थे उसी भाँति आकाश मार्गसे लक्ष्मणको रामके पास किष्किंधामें वापिस ले आये।

वृद्ध कपियोंने कहाः—"अवश्यमेव तुम्हारे द्वारा रावणका ध्वंस होगा; मगर नीतिवान पुरुषोंकी ऐसी नीति है कि, पहिले दूत भेजना चाहिए। यदि समाचार देनेवाले दूतके द्वारा ही, काम बनता हो, तो फिर स्वयं राजाओंको उसके लिए उद्योग करनेकी आवश्यकता नहीं है। दूत बनाकर किसी, पराक्रमी और बुद्धिमान पुरुषको वहाँ भेजना चाहिए; क्योंकि लंका पुरीमें प्रवेश करना और निकलना भी बहुत कठिन है। ऐसा सुना जाता है। दूतको जाकर विभीषणसे मिलना चाहिए और उसीसे सीताको, वापिस सौंप देनेके लिए कहना चाहिए; क्योंकि राक्षस कुलमें वह बहुत ही नीतिमान पुरुष है। विभीषण सीताको छोड़ देनेके लिए रावणसे कहेगा, और रावण

शत्रुका ऐसा बल देख, इन्द्रके समान पराक्रमी महेन्द्र राजा भी अपनी सेना और अपने पुत्रों सहित युद्ध करनेके लिए नगरसे बाहिर निकला। दोनोंके बीच, आकाशमें घोर युद्ध प्रारंभ हुआ; आहत सैनिकोंके शरीरसे रक्त गिरने लगा; उनके शरीर गिरने लगे, ऐसा मालूम हो रहा था, मानो भयंकर उत्पातका—प्रलय कालका—मेघ बरस रहा है।

रणभूमिमें तीव्र गतिसे फिरते हुए हनुमानने शत्रुकी सेनाको नष्ट कर दिया; जैसे कि प्रबल वायु वृक्षोंको नष्ट कर देता है। महेन्द्र राजाका पुत्र प्रसन्नकीर्ति अपना, हनुमानके साथका, संबंध जाने विना, निःशंक होकर शस्त्र प्रहार करता हुआ, हनुमानके साथ युद्ध करने लगा। दोनों समान बली और समान क्रोधी थे इस लिए एक दूसरेको, शस्त्र प्रहारसे, श्रमित करने लगा।

युद्ध करते हुए हनुमानको विचार आया—"अहो! मुझे धिक्कार है कि, मैंने स्वामीके कार्यमें विलंब करनेवाला यह युद्ध प्रारंभ किया है। क्षणवारमें मैं इनको जीत सकता हूँ; परन्तु क्या करूँ ये तो मेरे मामेरेके हैं।" फिर सोचा—"यद्यपि मामा, नाना आदिसे युद्ध कर रहा हूँ तो भी जिस कार्यको प्रारंभ किया है, उसे पूरा करनेके लिए इन्हें जीतना ही होगा।"

ऐसा सोच, क्रोध कर, हनुमानने शस्त्र-वर्षासे प्रसन्न

कीर्तिको घबरा दिया और उसके शस्त्र, रथ और सारथिको भग्न कर उसको पकड़ लिया।

तत्पश्चात हनुमानने महेन्द्र राजाको नमस्कार कर, कहाः— " मैं आपका भानजा; और अंजना सतीका पुत्र हूँ। मैं रामकी आज्ञासे सीताकी शोध करनेको लंकाकी ओर जा रहा था। मार्गमें चलते हुए मुझे आपका नगर नजर आया; उसी समय, आपने मेरी निरपराधिनी माताको निकाल दिया था, वह बात याद आगई, जिससे क्रोध उत्पन्न हो आया और मैं युद्ध करनेको प्रवृत्त हो गया। मुझको क्षमा कीजिए। अब मैं स्वामीका कार्य करनेको जा रहा हूँ। आप भी मेरे स्वामी रामके पास जाइए। "

अपने वीर शिरोमणि भानजेका आलिंगन कर, महेन्द्रने कहाः—" पहिले मैंने लोगोंके मुखसे तेरे पराक्रमी होनेकी बातें सुनी थीं। आज भाग्यके योग्यसे, मैंने अपने पराक्रमी भानजेको निज आँखोंसे देखा है। अब तू शीघ्र ही अपने स्वामीका कार्य साधन करनेके लिए जा। तेरा मार्ग कल्याणकारी हो। " हनुमान लंकाकी ओर चले। राजा महेन्द्र भी अपनी सेना लेकर रामके पास गया।

गंधर्व राजाकी कन्याओंसे हनुमानकी भेट।

आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमान दधिमुख नामा द्वीपमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने दो महा मुनियोंको काउसग्ग ध्यानमें निमग्न देखा। उनके पासहीमें उन्होंने तीन

निर्दोष शरीरवाली कुमारियोंको भी देखा; वे विद्यासाधनके लिए तत्पर होकर ध्यान कर रही थीं । उसी समय अकस्मात उस द्वीपमें दावानल प्रकट हुआ । कुमारियाँ और मुनि दावानलके संकटमें फँस गये । साधर्मी वात्सल्यभावके कारण विद्या द्वारा सागरमेंसे जल लेकर, हनुमानने अग्निको शान्त कर दिया; जैसे कि मेघ बरसकर अग्निको शान्त कर देते हैं ।

उधर इन कन्याओंको उसी समय विद्याएँ सिद्ध हो गईं; इस लिए वे ध्यान रत दोनों मुनियोंको प्रदक्षिणा दे, हनुमानसे कहने लगीं:—" हे परम अर्हत भक्त ! आपने हमें आपत्तिसे बचाया इसके लिए हम आपकी कृतज्ञ हैं । आपहीकी सहायतासे असमयमें भी हमें विद्याएँ सिद्ध हो गई हैं । "

हनुमानने पूछाः—" तुम कौन हो ? "

उन्होंने उत्तर दियाः—" इस दधिमुख द्वीपमें, दधिमुख नगर है । उसमें गंधर्वराज नामका राजा राज्य करता है । उसकी कुसुममाला नामक रानीकी कूखसे हम तीनों कन्याओंका जन्म हुआ है । कई खेचर पतियोंने हमें चाहा था; अंगारक नामका एक उन्मत्त खेचर पति भी हमें माँगता था; परन्तु हमारे स्वाधीन विचारी पिताने हमें किसीको नहीं दिया । एक वार हमारे पिताने एक मुनिसे पूछा कि—" इन कन्याओंका पति कौन होगा ? " मुनिने

उत्तर दिया था कि—“ जो साहसगति विद्याधरको मारेगा वही तुम्हारी कन्याओंका पति होगा।” उसके बाद हमारे पिता उस पुरुषकी खोज करने लगे; परन्तु कहीं भी उसका पता नहीं मिला। इसलिए उसको जाननेके लिए हमने यह विद्या साधना प्रारंभ किया था।

उस उन्मत्त अंगारकने विद्या साधनमें विघ्न डालनेको यह दावानल प्रकट किया था; इसको आपके समान निष्कारण बन्धुने भली प्रकारसे शमन कर दिया। और जो ‘ मनोगामिनी ’ विद्या छः महीनेमें सिद्ध होती है, वह भी क्षण वारहीमें आपकी सहायतासे सिद्ध हो गई।”

साहसगतिका रामने वध किया है, और वे उन्हींके कार्यार्थ लंकामें जा रहे हैं; क्यों जा रहे हैं आदि सारी बातें हनुमानने उनको कह सुनाई। सुन कर तीनों कन्याएँ हर्षित हो, अपने पिताके पास गईं; और उन्होंने अपने पिताको, हनुमानकी कही हुई, सारीं बातें सुना दीं। राजा गंधर्वराज, बहुत बड़ी सेना लेकर, अपनी तीनों कन्याओं सहित रामके पास गया।

हनुमानका लंकाको पत्नीरूपमें ग्रहण करना।

वीर हनुमान वहाँसे उड़ कर लंकाके पास पहुँचे। वहाँ कालरात्रिके समान भयंकर ‘ शालिका ’ नामकी विद्याको उन्होंने देखा। विद्या भी उन्हें देख कर बोली:—“ अरे! वानर तू कहाँ जाता है? अनायास ही तू मेरा भक्षण हो

गया है।" ऐसा कह, उस विद्याने अपना मुँह फाड़ा। हनुमान गदा लेकर तत्काल ही उसके मुखमें घुस गये और उसका पेट फाड़, वापिस बाहिर निकल आये; जैसे कि बादलोंमेंसे सूर्य निकल आता है। उसने लंकाके चारों तरफ एक कोट बना रक्खा था। हनुमानने अपनी विद्याके सामर्थ्यसे उसको तोड़ दिया; जैसे कि एक मिट्टीके बर्तनको तोड़ देते हैं। वज्रमुख नामा राक्षस उस कोटका रक्षक था; वह क्रुद्ध होकर लड़ने आया। हनुमानने उसको युद्धमें मार डाला।

उस राक्षसकी विद्याबलसे बलवान लंका सुंदरी नामा एक कन्या थी। अपने पिताको मरा देख, उसने हनुमानको युद्धके लिए ललकारा। वह बारबार हनुमान पर शस्त्रप्रहार करने लगी जैसे कि पर्वत पर बिजली गिरा करती है—और अपनी रण-पटुता दिखाने लगी। हनुमान अपने अस्त्रोंसे उसके अस्त्रोंका खंडन कर रहे थे। अन्तमें उन्होंने उसको निःशस्त्र बना दिया। वह निःशस्त्र ऐसी मालूम होने लगी, मानो तत्कालकी उगी हुई—बेपत्तों-वाली बेल है।

'यह वीर कौन है?' ऐसा आश्चर्य कर उसने ध्यान-पूर्वक हनुमानको देखा। देखते ही वह काम-शर-विद्ध होगई—कामदेवने उसको पीडित कर दिया। उसने हनुमानसे कहाः—"हे वीर! आपने मेरे पिताको मार डाला

इसी लिए क्रुद्ध होकर मैंने बेसोचे आपसे युद्ध करना प्रारंभ कर दिया था। मुझे पहिले एक साधुने कहा था कि–" जो तेरे पिताको मारेगा, वही तेरा पति होगा।" इस लिए हे नाथ! अब आपके वशमें आई हुई इस कन्याको स्वीकार करो। सारे संसारमें आपके समान कोई दूसरा वीर नहीं है; इस लिए मैं आपके समान पुरुषकी पत्नी बनकर स्त्रियोंमें साभिमान रहूँगी।"

इस प्रकार कह, सिर झुका, वह चुप हो रही। हर्षित होकर सानुराग हनुमानने उस विनय शीला कन्यासे गंधर्व–विवाह कर लिया।

रात्रिवर्णन।

उसी समय सूर्य पश्चिम समुद्रमें जाकर डूब गया; मानो आकाश-जंगलमें चलते हुए थककर उसने स्नान करनेके लिए समुद्रमें डुबकी लगाई है। पश्चिम दिशाका उपभोग करनेको जाते हुए सूर्यने संध्या–बादलके छलसे, उसके–पश्चिम दिशाके–वस्त्र खींच लिए हों, ऐसा मालूम होने लगा। पश्चिम दिशापर छाई हुई अरुण मेघोंकी परंपरा ऐसी जान पड़ने लगी–मानो अस्तकालमें सूर्यको छोड़कर तेज जुदा रह गया है। नवीन रागी सूर्य, अब नवीन रागवाली पश्चिम दिशाका, सेवन करने गया है; और मुझको छोड़ गया है; ऐसा सोच अपमानसे ग्लानि पा पूर्व दिशा म्लान होगई। क्रीडा स्थलोंका त्याग करनेकी

पीडाके कारण, कोलाहलके बहाने पक्षी आक्रंदन करने लगे। रजस्वला होनेपर ललनाएँ अपने प्यारे पतिसे दूर होनेके कारण जैसे दुखी होती हैं; वैसे ही बेचारी चक्रवाकी पति–वियोगसे दुःखी होने लगी। पति वियोगसे पतिव्रता स्त्री जैसे म्लान मुखी होजाती है, वैसे ही सूर्य-रूपी पतिके अस्त हो जानेसे पद्मिनी मुर्झा गई। वायव्य स्नानकी प्राप्तिसे हर्षित, ब्राह्मणों द्वारा वंदित गउएँ अपने बछड़ोंसे मिलनेके लिए उत्कंठित हो, वनमेंसे वस्तीकी ओर दौड़ने लगीं। सूर्यने अस्त होते समय अपना तेज अग्निको दे दिया; जैसे कि युवराजको राजा राज्य सौंप देता है। नगरकी स्त्रियोंने प्रत्येक स्थानमें दीपक जलाये; वे ऐसे मालूम होने लगे, मानो उन्होंने नक्षत्र श्रेणीकी शोभाको चुरा लिया है, या यह कहो कि, वह साक्षात नक्षत्र श्रेणी ही है। सूर्यके अस्त होजानेपर भी चंद्रमा उदय नहीं हुआ, इस लिए अवसर देखकर धीरे धीरे अन्धकार फैलने लगा।

" छलच्छेकाः खलाः खलु। "

(दुष्ट पुरुष छलमें चतुर होते हैं।) पृथ्वी और आकाश रूपी पात्र अंधकार पूर्ण दिखाई देनेलगा; मानो अंजनगिरिके चूर्णसे अथवा अंजनसे वह परि पूर्ण हो रहा है। उस समय, स्थल, जल, दिशा, आकाश या भूमि कुछ भी नहीं दिखता था। विशेष क्या कहें-अपना हाथ

भी दिखाई नहीं देता था। खड्गके समान श्याम अंधकार व्याप्त आकाशमें तारे ऐसे जानपड़ने लगे, मानो जूआ खेलनेके पट्ट पर कौड़ियाँ बिखरी हुई पड़ी हैं। कज्जलके समानश्याम और स्पष्ट नक्षत्रवाला आकाश, पुंडरीक कमल पूर्ण यमुना नदीके श्याम जलवाले ह्रदके समान मालूम होता था। जब अंधकारने चारों तरफ फिरकर एकाकार कर दिया तब प्रकाश–विहीन सारा विश्व पातालके समान दिखाई देने लगा। अंधकार बढ़ जानेपर कामीजनोंको प्राप्त करनेकी उत्सुकता रखनेवाली दूतियाँ निःशंक होकर स्वच्छंदता पूर्वक फिरने लगीं; जैसे कि सरोवरमें नदियाँ फिरा करती हैं। पैरोंमें, घुटने पर्यंत, जेवर पहिन, तमाल वृक्षके समान श्याम वस्त्र धारण कर कस्तूरीका लेप लगा अभिसारिकाएँ फिरने लगीं। उसी समय उदय गिरिपर किरणरूपी अंकुरका महाकंदभूत चंद्र उदित हुआ। वह ऐसा मालूम होता था, मानो किसी भव्य प्रासादके ऊपर स्वर्ण कलश लगा हुआ है। और उस समय अन्धकार ऐसा जान पड़ने लगा मानो वह स्वाभाविक शत्रुत्राके कारण कलंकके बहाने चन्द्रसे द्वंद्व युद्ध कर रहा है। विशाल गगनमें ताराओंके साथ चंद्रमा इच्छा पूर्वक क्रीडा करने लगा; जैसे कि, विशाल गोकुलमें वृषभ विचरण करता है। चंद्रके अंदर लगा हुआ कलंक ऐसा मालूम होता था, मानो रजत–पात्रमें कस्तूरीका रस भरा हुआ

है। चंद्र किरणें प्रसरित होती हुई ऐसी जान पड़ने लगीं, मानो आड़े हाथ करके विरही जनोंने कामदेवके बाण स्खलित किये हैं। चिर-भुक्ता परंच सूर्यास्तसे दुर्दशा-प्राप्ता कमलिनीको छोड़कर, भँवरे कुमुदको भजने लगे।

" धिगहो नीचसौहृदम्। "

(अहो! नीचकी मित्रताको धिक्कार है।) चंद्रमा अपनी किरणोंसे शेफालिकी—सुहाँजना—के फूलोंको गिराने लगा; मानो वह अपने मित्र कामदेवको बाण तैयार करके दे रहा है। चन्द्रकान्त मणियोंके जलसे नये सरोवरोंको निर्माण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ने लगा; मानो उन सरोवरोंके बहाने वह अपना यश स्थापन कर रहा है। और दिशाओंके मुखको निर्मल करती हुई चाँदनी, इधर उधर भटकती हुई कुलटाओंके मुखको पद्मिनीकी भाँति ही म्लान करने लगी।

प्रातःकाल वर्णन।

निःशंक होकर लंका सुंदरीके साथ क्रीडा करके, हनुमानने वह रात बिताई। प्रातःकाल ही इन्द्रकी प्रिय दिशा (पूर्व दिशा) को मंडित करता हुआ, स्वर्णसूत्रके समान किरणोंवाला सूर्य उदय हुआ। सूर्य-किरणोंने अव्याहत रीतिसे गिरकर विकसित कुमुदको मुर्झा दिया। जागृत हो रमणियोंने वेणियाँ खोलदीं; पुष्प पृथ्वी पर गिर गये। भँवरे उन पर गूँजने लगे; मानो पुष्प केश—पाशके वियोगसे,

भ्रमर नादके बहाने—रुदन कर रहे हैं। रात्रि-जागरणके प्रयाससे रक्त नेत्री बनी हुई गणिकाएँ कामीजनोंके स्थानोंसे निकलने लगीं; जैसे कि खंडिता[1] स्त्रीके मुखकमलमेंसे निःश्वास श्रेणी निकलने लगती है। उदित सूर्यके तेजने जिसका कान्ति वैभव लूट लिया है, ऐसा चंद्रमा, लता-तंतुओंके वस्त्र समान दिखाई देने लगा। जो अंधकार सारे ब्रह्मांडमें भी नहीं समाता था उसी अंधकारको सूर्यने उड़ा दिया; जैसे कि प्रचंड वायु मेघोंको उड़ा देता है। रात्रिकी भाँति निद्रा भी नष्ट हो गई। नगरवासी अपने अपने कार्य करनेमें लगे।

विभीषणसे हनुमानका मिलना।

प्रातःकाल होते ही पराक्रमी हनुमान लंका सुंदरीसे सुंदर-मधुर-वचन द्वारा अनुमति ले, लंका नगरीमें गया। प्रथम बल-धाम हनुमानने, शत्रु सुभटोंके लिए भयंकर विभीषणके घरमें प्रवेश किया। विभीषणने सत्कार करके हनुमानसे आनेका अभिप्राय पूछा। हनुमानने गंभीरता पूर्वक थोड़े ही शब्दोंमें कहाः—" रावण सीताको हरलाया है, तुम रावणके अनुज बन्धु हो। इसलिए शुभ परिणामोंका विचार कर, रामकी पत्नी सीताको उससे छुड़ाओ। यद्यपि रावण बलवान है, तथापि उसने रामकी पत्नीका हरण किया है, इस

१—अपने पतिको दूसरी स्त्रीके साथ रमण करता देख, ईर्ष्यासे—दुःखसे जो हृदयमें जलती है, उसको खंडिता कहते हैं।

लिए, परलोकमें ही नहीं बल्के इस लोकमें भी उसकी दुर्गति होगी।"

विभीषणने उत्तर दियाः—"हे हनुमान! तुम्हारा कथन सत्य है। मैं अपने ज्येष्ठ बन्धुको, सीताको छोड़ देनेके लिए पहिले भी कह चुका हूँ। और फिर दूसरी वार भी आग्रह पूर्वक अपने बन्धुसे प्रार्थना करूँगा। अच्छा हो कि, अबकी वार वे मेरे कहनेसे सीताको छोड़ दें।"

हनुमानकी देखी हुई सीताकी स्थिति।

तत्पश्चात हनुमान वहाँसे उड़कर आकाशमार्ग-द्वारा उस देवरमण उद्यानमें गया, जहाँ सीताजी थीं। हनुमानने उनको अशोक वृक्षके नीचे बैठे हुए देखा। देखा—उनके कपोल भागपर केश उड़ रहे हैं; उनकी आँखोंसे सतत गिरनेवाली अश्रु-जल-धाराने आसपासकी भूमिको गीला कर रक्खा है। हिम-पीडित कमलिनीकी भाँति उनका मुख-पंकज म्लान हो रहा है। द्वितीयाकी चंद्रकलाके समान उनका शरीर बहुत कृष हो रहा है। उष्ण निश्वासके दुःखसे उनके अधर-पल्लव व्याकुल हो रहे है। स्थिर योगिनीकी भाँति वे रामके ध्यानमें निमग्न हैं। वस्त्र मलिन हो गये हैं। अपने शरीरकी भी उनको-स्पृहा वांछा-नहीं है।

उनको देखते ही हनुमान सोचने लगेः—"अहो! येही सीता हैं। इनके दर्शन मात्रहीसे लोग पवित्र हो जाते हैं।

इस महा सतीका विरह रामको पीडित करता है, सो उचित ही है; क्योंकि ऐसी रूपवती, सुशीला और पवित्र पत्नी किसी भाग्यशालीको ही मिलती है। विचारा रंक रावण रामके तापसे और अपने अतुल पापसे शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।"

उसके बाद हनुमानने, विद्यावलसे अदृश्य होकर, अपने साथ लाई हुई रामकी अंगूठीको, सीताकी गोदमें डाल दिया। उसे देखकर सीता प्रसन्न हुई। उनको प्रसन्न देख त्रिजटा रावणके पास गई और कहने लगी:– "सीता अबतक दुखी रहती थी; परन्तु आज वह प्रसन्न है।"

रावणने मंदोदरीसे कहा:—"मैं समझता हूँ कि–सीता अब रामको भूल गई है, और मेरे साथ क्रीडा करनेकी इच्छा रखती है, इस लिए तू जाकर, उसको समझा।"

सुनकर मन्दोदरी पतिका दूतीपन करनेके और उसको लुभानेके लिए, फिरसे सीताके पास गई और अति विनीत होकर कहने लगी:—"रावण अतुल संपत्तिशाली और अद्वितीय सुंदर है। तुम भी रूप और लावण्यमें पूर्ण होनेसे उसके योग्य हो। यद्यपि मूर्ख विधाताने तुम्हारा योग्य पुरुषके साथ संयोग नहीं किया है; परन्तु अब योग्य संयोग हो जाना अच्छा है। हे जानकी! जो रावण पासमें जाकर सेवा करने योग्य है, वही उल्टा तुम्हारे पास आकर तुम्हारी

सेवा करनेको तत्पर है; फिर तुम उसे क्यों नहीं चाहती हो ? हे सुभ्रू ! यदि तुम रावणको चाहोगी, तो मैं और उसकी अन्य रानियाँ तुम्हारी आज्ञाधारिणी बनेंगी।"

सीता बोलीं:—"हे पतिका दूतिपन करनेवाली पापिनी ! रे दुर्मुखी ! तेरे पतिकी तरह ही तेरा मुख भी देखने योग्य नहीं है। रे दुष्टा ! खर आदि राक्षसोंके मारनेवालेको, तेरे पति और देवरोंको वध करनेके लिए अब आया ही समझ और मुझको रामके चरणोंमें गई ही समझ। उठ जा, पापिष्ठे ! अब यहाँसे उठ जा; मैं तुझसे बातचीत करना नहीं चाहती।" सीताद्वारा इस भाँति तिरस्कृत होकर, मंदोदरी कुछ क्रुद्ध बन वहाँसे चली गई।

हनुमानका सीतासे मिलना।

उसके जाते ही हनुमान प्रकट हुए और सीताके सामने हाथ जोड़, नमस्कार कर, बोले:—"हे देवी ! सद्भाग्यसे राम, लक्ष्मण सहित, आनंदमें हैं। रामकी आज्ञासे मैं तुम्हारी शोध करनेके लिए यहाँ आया हूँ। मेरे वापिस जाने पर राम शत्रुओंका संहार करनेके लिए यहाँ आवेंगे।"

सीता आँखोंमें जल भरकर बोलीं:—"हे वीर ! तुम कौन हो ? इस दुर्लंघ्य समुद्रको पारकर, तुम यहाँ कैसे आये हो ? मेरे प्राणनाथ लक्ष्मण सहित आनंदमें हैं न ? तुमने उनको कहाँ देखा था ? वे वहाँ अपना समय किस तरह बिताते हैं ?"

हनुमानने कहा:—" पवनंजयका मैं पुत्र हूँ । अंजनाने मुझको जन्म दिया है । हनुमान मेरा नाम है । आकाश-गामिनी विद्यासे मैंने समुद्रको लाँघा है । रामने सुग्रीवके शत्रुका संहार कर दिया, इसलिए वह उनका प्यादा बन रहा है । राम अपने अनुज लक्ष्मण सहित अभी किष्किंधामें रहे हुए हैं । दावानल जैसे गिरिको तपाता है वैसे ही राम, दूसरोंको तपाते हुए, तुम्हारे वियोगसे रातदिन परिताप पाते हैं । हे स्वामिनी! गायके विना बछड़ा जैसे व्याकुल होता है, वैसे ही लक्ष्मण तुम्हारे दुःखसे पीडित हो रहे हैं; वे निरन्तर शून्य दिशाओंको देखा करते हैं। उनको लेशमात्र भी सुख नहीं है । कभी शोकसे और कभी क्रोधसे, राम और लक्ष्मण हर समय दुखी रहते हैं। सुग्रीव उनको बहुत कुछ आश्वासन देता है; परन्तु उन्हें लेश भी शान्ति नहीं होती । भामंडल, महेंद्र, और विराध आदि खेचर रातदिन प्यादेकी भाँति उनकी सेवा करते हैं; जैसे कि देवता इन्द्रकी सेवा किया करते हैं । हे देवी! तुम्हारी शोधके लिए, मुझे सुग्रीवने उपयुक्त बताया इस लिए रामने अपना चिन्ह-अंगूठी-मुझको देकर, यहाँ भेजा है। तुम्हारे पाससे भी उन्होंने, तुम्हारा चूडामणि मँगवाया है । इसको देखकर उन्हें मेरे यहाँ आनेका विश्वास होगा।"

इस भाँति रामका वृत्तान्त जानकर, सीताको बहुत हर्ष हुआ । उन्होंने २१ दिनसे भोजन नहीं किया था । उस

दिन हृदयमें सन्तोष आनेसे और हनुमानके आग्रहसे उन्होंने भोजन किया। फिर सीता बोलीं:—" हे वत्स! मेरा चिन्हस्वरूप यह चूडामणि ले और यहाँसे शीघ्र ही चला जा। यहाँ विशेष समयतक रहनेसे तुझको कष्ट भोगना पड़ेगा। यदि क्रूर राक्षस तेरे आगमनकी बात जानेंगे तो वे तुझको मारनेके लिए अवश्यमेव यहाँ आवेंगे।"

सीताके ऐसे वचन सुन, हनुमान कुछ हँसे और हाथ जोड़ कर सविनय बोले:—" हे माता! वात्सल्यके कारण भीत होकर आप ऐसे वचन कह रही हैं। तीनों लोकके जीतनेवाले रामका मैं दूत हूँ। मेरे लिए बिचारा रावण और उसकी सेना कःपदार्थ हैं–तुच्छ हैं। हे स्वामिनी! यदि आज्ञा दो तो रावणको मार, उसकी सेनाको नष्ट कर, मैं आपको अपने कंधोंपर बिठा, अपने स्वामीके पास ले जाऊँ।"

सीताने हँसकर कहा:—" हे भद्र! तुम्हारे वचनोंसे प्रतीत होता है कि, तुम अपने स्वामी रामभद्रको लज्जित नहीं करोगे। तुम राम और लक्ष्मणके दूत हो; इस लिए तुममें सब प्रकारकी शक्तिका होना संभव है। परन्तु मैं लेशमात्र भी परपुरुषका स्पर्श नहीं चाहती। अतः तुम शीघ्र ही रामके पास जाओ। यहाँ जो कुछ तुम्हें करना था तुम कर चुके, अब तुम्हारे वहाँ पहुँचनेपर राम जो कुछ उचित होगा करेंगे।"

हनुमान बोलेः—“ हे माता ! अब मैं रामके पास जाऊँगा; परन्तु इन राक्षसोंको भी मैं थोड़ा बहुत अपना पराक्रम दिखाता जाऊँगा । यह रावण अपने आपको सर्वत्र-सर्वविजयी समझता है; वह दूसरोंके बलको नहीं मानता, इस लिए मैं बताना चाहता हूँ कि, राम तो क्या परन्तु उनके दूत भी कैसे पराक्रमी हैं । ”

पराक्रमकी बातें सुन ‘ बहुत अच्छा ’ कह सीताने उसको अपना चूडामणि दिया । चूडामणि ले, नमस्कार कर चरण-न्याससे पृथ्वीको धुजाते हुए हनुमान वहाँसे चले ।

हनुमानका रावणके उद्यानको नष्ट करना ।

तत्पश्चात् वनके हाथीकी तरह अपने भुजबलसे हनुमानने देवरमण उद्यानको नष्ट करना प्रारंभ किया । रक्त अशोक वृक्षोंमें निःशूक, वकुलवृक्षोंमें अनाकुल, आम्रवृक्षोंमें करुणाहीन, चंपकवृक्षोंमें निष्कंप, मंदारवृक्षोंमें अतिरोषी, कदलीवृक्षोंमें निर्दय और अन्यान्य रमणीय-वृक्षोंमें क्रूर होकर, हनुमान उनको नष्ट करनेकी लीला करने लगे ।

यह देखते ही उस उद्यानके चारों द्वारोंके द्वारपाल राक्षस हाथोंमें मुद्गर लेकर हनुमानको मारने दौड़े; और हनुमान पर, पास पहुँचकर, प्रहार करने लगे । किनारे परके पर्वतपर समुद्रके बड़े बड़े थपेड़े निष्फल जाते हैं, इसी तरह उनके हथियार हनुमानके ऊपर निष्फल गये ।

हनुमानने क्रोध करके उद्यानके वृक्षोंको उखाड़, उनसे राक्षसोंको मारना प्रारंभ किया।

"सर्वमस्त्रं बलीयसाम् ।"

(बलवानके लिए हरएक चीज शस्त्र है।) पवन तुल्य अस्खलित हनुमानने वृक्षोंकी भाँति ही उद्यानके रक्षक क्षुद्र राक्षसोंको मार डाला। कई राक्षस भाग कर रावणके पास गये। उन्होंने हनुमानका आना और उसका उद्यानको व उद्यानके रक्षकोंको नष्ट कर देना, सुनाया।

सुनकर रावणने, हनुमानको मारनेके लिए, शत्रुघातक अक्षकुमारको आज्ञा की। युद्ध करनेका उत्साह रखनेवाला अक्षकुमार उद्यानमें पहुँच, हनुमान को बुरा भला कहने लगा। हनुमानने उसको कहा:—"भोजनके पहिले फलकी भाँति तू युद्धके पहिले ही मुझको प्राप्त हुआ है।"

"रे कपि! वृथा गाल क्यों बजाता है?" ऐसा कह, तिरस्कार करते हुए रावणके पुत्र अक्षकुमारने, नेत्रके वेगको रोकनेवाले, तीक्ष्ण बाणोंकी हनुमानपर वर्षा की। हनुमानने भी बाणोंकी वृष्टि कर अक्षकुमारको ढक दिया; जैसे कि उद्वेल—मर्यादासे बाहिर निकला हुआ—समुद्रका जल द्वीपोंको ढक देता है। हनुमान बहुत देरतक उसके साथ शस्त्रयुद्ध करता रहा। फिर शीघ्र ही रण समाप्त करने की इच्छा होनेसे उसने पशुकी तरह अक्षकुमारको मार डाला।

हनुमान और इन्द्रजीतका युद्ध।

अपने भाईके वध होनेके समाचार सुन, इन्द्रजीत क्रुद्ध हो, रणमें आया; और "रे मारुती खड़ा रह खड़ा रह!" कहता हुआ, हनुमानपर प्रहार करने लगा। दोनों महाबाहु वीरोंका, कल्पान्तकालकी भाँति दारुण और जगतको क्षुब्ध कर देनेवाला भयंकर, युद्ध बहुत देरतक होता रहा। शस्त्रश्रेणीको बरसाते हुए, दोनों ऐसे प्रतीत होते थे, मानो आकाशसे पुष्करावर्त मेघ जल बरसा रहा है। लगातार दोनोंके अस्त्र परस्पर टकरा रहे थे, उससे थोड़ी ही देरमें आकाशमंडल, ढक गया, कष्टसे दिखने योग्य हो गया; जैसे कि जलजंतुओंसे समुद्र हो जाता है।

रावणके दुर्वार पुत्रने जितने शस्त्र चलाये, उन सबको मारुत-सुतने, अनेक गुणे अस्त्र चलाकर छेद डाला। राक्षस सुभट हनुमानके शस्त्रोंसे क्षत हुए; उनके शरीरसे लोहू बहने लगा। वे सब ऐसे दिखने लगे मानो जंगम पर्वतोंसे रक्त बह रहा है।

इन्द्रजीतने, अपने सैनिकोंको नष्ट और अपने अन्य अस्त्रोंको विफल होते देख, हनुमान पर नागपाश अस्त्र चलाया। उस दृढ़ नागपाशसे हनुमान सिरसे पैर तक बँध गया; जैसे कि चंदनका वृक्ष सर्पोंसे बँध जाता है। यद्यपि नागपाशको तोड़ डालनेका और शत्रुओंको जीत लेनेका हनुमानमें सामर्थ्य था तथापि, बँधनमें रहकर

कौतुक देखनेके लिए हनुमान उसमें बँधा रहा। इन्द्रजीत हर्षित होकर उसको रावणके पास ले गया। विजयेच्छु राक्षस उसको हर्षित होकर देखने लगे।

रावण और हनुमानका संवाद।

रावणने हनुमानसे कहाः—" हे दुर्मति! तूने यह क्या किया? बिचारे रामलक्ष्मण तो जन्मसे ही मेरे आश्रित हैं। वनवासी, फलाहारी, मलिन शरीरी और किरातके समान अपना जीवन बिताने वाले मलिन वस्त्र धारी, यदि तुझपर प्रसन्न हो जायँगे, तो भी तुझको क्या दे सकेंगे? हे मन्द बुद्धी! क्या देखकर, तू रामलक्ष्मणके कहनेसे यहाँ आया है कि-जिससे यहाँ पहुँचते ही तेरे प्राण संकटमें पड़गये हैं। भूचारी-पृथ्वीपर चलनेवाले-रामलक्ष्मण बहुत ही चतुर जान पड़ते हैं, कि जिन्होंने तुझसे ऐसा कार्य कराया है। मगर धूर्त लोग होते हैं वे दूसरोंके हाथोंसे ही अंगारे निकलवाते हैं। अरे! पहिले तो तू मेरा सेवक था और अब दूसरेका सेवक हो कर आया है इसी लिए अवध्य है। मगर तुझे तेरे कृतकी थोड़ीसी सजा देनेहीके लिए तेरी इतनी विटंबना की गई है।"

हनुमानने उत्तर दियाः—" रे रावण? मैं कब तेरा सेवक था और तू कब मेरा स्वामी था? ऐसा बोलते हुए तू कैसे लज्जित नहीं होता है! पहिलेकी बात है। तेरा सामंत खर अपने आपको बहुत बलवान समझता था,

उसको मेरे पिताने वरुणके जेलखानेमेंसे छुड़ाया था। उसके बाद तूने मुझको अपनी रक्षा करनेके लिए बुलाया था और मैंने वरुणके पुत्रोंके हाथोंसे तुझको बचाया था। मगर इस समय तू पापमें रत हो रहा है, इस लिए रक्षा करनेके योग्य नहीं है। इतना ही नहीं हे परस्त्री-हर्ता तेरे समान पुरुषोंसे बात करनेमें भी पाप लगता है। हे रावण! अकेले लक्ष्मणके हाथोंसे तेरी रक्षा करनेवाला कोई पुरुष तेरे परिवारमें नहीं है, फिर उनके ज्येष्ठ भ्राता रामसे बचानेवाले की तो बात ही क्या है?"

हनुमानकी बातें सुन, रावणको बहुत क्रोध आया। भ्रकुटिके चढ़नेसे उसका ल़िलाट भयंकर दिखाई देने लगा। ओष्ठ चबाता हुआ वह बोलाः—"रे वानर! एक तो तूने मेरे शत्रुका पक्ष लिया है; दूसरे मेरे सामने ऐसे कटु और उद्धत शब्द बोला है, इस लिए यही इच्छा होती है कि तू मार दिया जाय। मगर तुझे अपने जीवनसे ऐसा वैराग्य क्यों हो गया है? रे वानर! कुष्ट रोगसे जिसका शरीर विशीर्ण होगया हो, ऐसा व्यक्ति यदि मरना चाहता है, तो भी हत्याके भयसे कोई उसको नहीं मारता है; तो तुझ दूतको—जो अवध्य होता है—मारकर कौन हत्या ले? मगर रे अधम! सिरको मुँडा, गधेपर चढ़ा, तुझको सारे नगरमें, लंकाकी प्रत्येक गलीमें, तुझपर तिरस्कार करते हुए लोग समूहमें, अवश्यमेव फिरवाऊँगा।"

रावणके वचन सुन, क्रुद्ध हो हनुमानने तत्काल ही नागफाँसको तोड़ दिया । क्योंकि—

" बद्धो हि नलिनीनालैः कियत्तिष्ठति कुंजरः । "

(कमलकी डंडीसे बँधा हुआ हाथी कितनी देरतक बँधा रह सकता है ?) फिर हनुमानने, विद्युत् दंडकी भाँति, उछलकर राक्षसोंके स्वामी रावणका मुकुट जमीन-पर गिरा दिया और पदाघातसे उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये । रावण पुकाराः—" मारो पकड़ो इस नीचको जाने न दो । " मगर उसको कोई पकड़ न सका उसने पदाघातसे सारी लंकाको धुजा दिया ।

हनुमानका रामको सीताके समाचार देना ।

इस भाँति, गरुडकी तरह क्रीडा करके हनुमान वहाँसे उड़े और रामके पास किष्किंधामें पहुँचे । रामको नमस्कार करके सीताका चूडामणि उनके आगे रक्खा । उसको रामने तत्काल ही उठा लिया और साक्षात सीताकी भाँति उन्होंने वारंवार उसको हृदयसे लगाया ।

तत्पश्चात पुत्रकी भाँति स्नेहसे रामने हनुमानको हृद-यसे लगाया और वहां का वृत्तान्त पूछा । जिसके भुज-बलकी बातें सुननेको अन्य उत्सुक हो रहे थे ऐसे हनुमानने, लंकामें बीती हुई सब बातें—निजकृत रावणका अपमान और सीताकी यथार्थस्थिति—सुनाई ।

सातवाँ सर्ग ।

रावण वध ।

रामका लंका पर चढ़ाई करना ।

सीताके पूरे समाचार मिल गये, इससे रामलक्ष्मण, आकाशमार्गसे सुग्रीव सहित लंका जीतनेको चले । भामंडल, नल, नील, महेन्द्र, हनुमान, विराध, सुषेण, जामवान, अंगद और अन्य अनेक विद्याधर राजा अपनी फौजसे दिशाओंके मुखोंको ढकते हुए, रामके साथ चले । विद्याधर अनेक प्रकारके लड़ाईके बाजे बजाने लगे । उनके गंभीर नादसे आकाशमंडल गूँज उठा । अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करनेके लिए, अहंकार धरते हुए, खेचर विमानों, रथों, घोड़ों और हाथियों और दूसरे वाहनों पर सवार हो कर आकाशमार्ग द्वारा चले ।

समुद्र पर चलते हुए थोड़ी ही देरमें वे वेलंधरपुर नगरके पास पहुँचे । यह नगर वेलंधर पर्वत पर बसा हुआ है । इस नगरमें समुद्रके समान दुर्द्धर समुद्र और सेतुनामके दो राजा थे । वे उद्धता करके रामकी जो सेना आगे थी उसके साथ युद्ध करने लगे । अपने स्वामी-का कार्य करनेमें चतुर नल और नीलने समुद्र और

सेतु दोनोंको पकड़ कर रामके सामने पेश किया । कृपालु रामने उन्हें वापिस उनका राज्य सौंप दिया—

'रिपावपि पराभूते, महांतो हि कृपालवः ।'

(महान पुरुष हारे हुए शत्रु पर भी दया करते हैं ।) समुद्र राजाने अपनी तीन कन्याएँ लक्ष्मणको ब्याह दीं । वे बहुत सुंदर और स्त्रियोंमें रत्न समान थीं । उस दिन राम सेना सहित वहीं रहे । दूसरे दिन सवेरे ही समुद्र और सेतु राजाको साथ लेकर वहाँसे रवाना हुए, और सुवेलगिरिके पास जा पहुँचे । वहाँके राजा सुवेलको जीत कर उस दिन वहीं रहे । अगले दिन वहाँसे चले । तीसरे दिन राम हंसद्वीपमें पहुँचे । वह लंकाके पास ही था । वहाँके राजा हंसरथको जीतकर रामने उस दिन वहीं मुकाम किया । लंकापुरीके सब लोग, रामके नजदीक आनेसे, घबरा गये; जैसे कि मीनराशीमें शनिके आनेसे लोग घबरा जाते हैं । उनको शंका होने लगी मानो उनके चारों ओरसे प्रलयकाल आ रहा है ।

विभीषणका रामके शरणमें जाना ।

रामके निकट आ पहुँचनेके समाचार सुन हस्त, प्रहस्त, मारीच और सारण आदि रावणके हजारों सामंत युद्ध करनेको तैयार हुए । शत्रुओंको ताड़ना करनेमें होशियार रावणने क्रोडागमें सेवकोंके पाससे युद्धके महादारुण बाजे बजवाये ।

उस समय विभीषणने रावणके पास जाकर कहा:—

" हे बन्धु! क्षणवार शान्त होकर शुभ फल वाली मेरी बातोंका विचार करो। तुमने दोनों लोक-इस लोक और परलोक-का घात करनेवाली बुरी बात, की है। दूसरोंकी स्त्रीका हरण किया है। इस अविचारित कृत्यसे अपना कुल लज्जित हो रहा है। अब रामभद्र अपनी स्त्रीको लेनेके लिए यहाँ आये हैं। अतः सीता उनको सौंपदो और उनका आतिथ्य करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो राम दूसरी तरहसे सीताको ले जायँगे और तुम्हारे साथमें तुम्हारे सारे कुलको भी पकड़ लेंगे। साहसगति विद्याधर और खर राक्षसके अंतक-काल-रामलक्ष्मणकी बात तो जाने दो, मगर उनके दूत बनकर आये हुए हनुमानके बलको ही क्या तुमने नहीं देखा है? इन्द्रसे भी अधिक तुम्हारे पास संपत्ति है। यदि सीताको नहीं छोड़ोगे तो सीता भी जायगी, और संपत्ति भी जायगी। दोनों तरफसे तुमको भ्रष्ट होना पड़ेगा।

विभीषणके ऐसे वचन सुनकर इन्द्रजीत बोला:—

" अहो विभीषण काका! तुम तो जन्मे जबसे ही डरपोक हो। तुमने सारे कुलको दूषित किया है। तुम कदापि मेरे पिताके सहोदर नहीं हो सकते। अहो मूर्ख! इन्द्रको भी जीतनेवाले, सारी संपत्तिके नायक मेरे पिताके लिए तुम ऐसी शंका करते हो इससे जान पड़ता है कि, तुम

सच मुच ही मरना चाहते हो । पहिले भी झूठ बोलकर तुमने मेरे पिताको ठगा है; दशरथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर उसको नहीं मारा है । अब जब राम यहाँ आया है तब, निर्लज्ज होकर भूचारीका डर बताते हो और मेरे पितासे रामकी रक्षा करना चाहते हो । इससे मैं समझता हूँ कि तुम रामके ही पक्षके हो । उसने तुमको अपने वशमें कर रक्खा है । अब तुम विचार करनेमें भी सम्मिलित होनेके योग्य नहीं रहे हो; क्योंकि आप्त मंत्रियोंके साथ जो विचार किया जाता है, वही शुभ परिणामकारी होता है । ”

विभीषण बोलाः—“ मैं तो शत्रुके पक्षका नहीं हूँ; परन्तु जान पड़ता है कि, तू कुलमें शत्रु होकर उत्पन्न हुआ है । जन्मांधकी तरह तेरा पिता ऐश्वर्य और कामसे अंधा हो रहा है । रे मूर्ख ! दुधमुँहे बच्चे ! तू क्या समझता है ? हे रावण ! इस इन्द्रजीत पुत्रसे और अपने ऐसे आचरणसे थोड़े ही समयमें, निश्चयतया तेरा पतन होगा । अब मैं तेरे लिए व्यर्थ चिन्ता नहीं करूँगा । ”

विभीषणके ऐसे वचन सुनकर, भाग्य-दूषित रावणको अधिक क्रोध हो आया । वह भयंकर तलवार खींचकर बिभीषणको मारनेके लिए तैयार हुआ । भ्रुकुटि चढ़ा, चहरेको भयंकर बना, हाथीकी तरह एक स्तंभ उखाड़, विभीषण भी रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ।

यह देख कुंभकरण और इन्द्रजीतने बीचमें पड़कर उनको युद्ध करनेसे रोका । और जैसे महावत दो मस्त हाथियोंको उनके स्थानोंमें ले जाते हैं इसी तरह कुंभकरण और इन्द्रजीत उनको अपने अपने स्थानोंमें ले गये । जाते हुए रावणने कहाः—" हे ! विभीषण तू लंका छोड़ कर चला जा; क्योंकि तू अग्निकी भाँति अपने आश्रयका ही नाश करनेवाला है । "

रावणके वचन सुनकर विभीषण तत्काल ही लंकाको छोड़कर रामके पास चल दिया । उसके पीछे अन्यान्य राक्षसोंकी और विद्याधरोंकी तीस अक्षौहिणी सेना भी रावणको छोड़कर विभीषणके पीछे रवाना हो गई । विभीषणको सेना सहित आते देखकर सुग्रीव आदि क्षोभ पाये । क्योंकि—

'यथा तथा हि विश्वासः शाकिन्यामिव न द्विषि ।'

(डाकनकी तरह शत्रुओंपर भी तत्काल ही जैसे तैसे विश्वास नहीं हो जाता है) । विभीषणने पहिले एक दूत भेजकर, रामको अपने आनेके समाचार कहलाये । रामने अपने विश्वासपात्र सुग्रीवके मुँहकी ओर देखा ।

सुग्रीवने कहाः—" हे देव ! यद्यपि सारे राक्षस जन्मसे ही मायावी और क्षुद्र प्रकृतिवाले होते हैं; तथापि विभीषण यहाँ आना चाहता है, तो भले आवे । हम गुप्त रीतिसे उसका शुभाशुभ भाव जानलेंगे और पीछे उसके भावोंके अनुसार योग्य प्रबंध करेंगे । "

उस समय विभीषणको भली प्रकारसे जाननेवाला विशाल नामा खेचर बोल उठाः—" हे प्रभो ! विभीषण ही इन राक्षसोंमें एक धर्मात्मा और महात्मा है । इसने सीताको छोड़ देनेके लिए रावणको कहा था । रावणने कुपित होकर इसको निकाल दिया । इसीलिए यह आपके शरणमें आया है । इसमें लेशमात्र भी मिथ्या बात नहीं है । "

सुनकर रामने उसको अपने शिविरमें आनेकी आज्ञा दी । विभीषणने जाकर रामके चरणोंमें सिर रक्खा । रामने उसको उठा कर सीनेसे लगा लिया । विभीषण बोलाः—" हे प्रभो ! मैं अपने अन्यायी ज्येष्ठ बन्धुको छोड़कर आपके शरणमें आया हूँ । इसलिए मुझको भी सुग्रीवकी भाँति अपना आज्ञाकारी भक्त समझिए और सेवाकी आज्ञा दीजिए । "

रामने उस समय उसको आश्वासन देकर लंकाका राज्य देनेको कहा ।

' न मुधा भवति क्वापि, प्रणिपातो महात्मसु । '

(महात्माओंको जो प्रणाम किया जाता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता है ।)

रावणका युद्धके लिए लंकाके बाहिर आना ।

हंसद्वीपमें आठ दिनतक रहनेके बाद राम, कल्पान्तकालकी भाँति, सेना सहित, लंकाकी ओर चले । लंकाके

बाहिर बलके पर्वतरूप राम बीस योजन भूमिको अपनी विशाल सेनासे घेर, व्यूह रच, युद्धके लिए तैयार होगये। रामकी सेनाका कोलाहल, समुद्र-ध्वनिकी तरह सारी लंकाको बहरी बनाने लगा। वह कोलाहल ऐसा मालूम होता था, मानो ब्रह्मांड फट गया है।

असाधारण बलधारी प्रहस्तादि रावणके योद्धा, सेनापति जराबक्तर पहिन, हथियारोंसे सुसज्जित हो युद्धके लिए तैयार हो गये। कोई हाथी पर बैठकर, कोई घोड़े पर बैठकर, कोई सिंहपर बैठकर, कोई गधे पर बैठकर, कोई रथमें सवार होकर, कोई कुबेरकी तरह मनुष्य पर चढ़कर, कोई अग्निकी तरह मेष पर चढ़कर, कोई यमराजकी भाँति महिषको वाहन बनाकर, कोई देवंत कुमारकी तरह अश्वारूढ होकर और कोई देवकी तरह विमानमें बैठ कर; ऐसे एक एक करके असंख्य रणपटु वीर रावणके पास आकर जमा होगये।

रत्नश्रवाका ज्येष्ठ पुत्र रावण भी क्रोधसे लाल आँखें किये हुए, युद्धके लिए सज्ज होकर, विविध आयुधपूर्ण रथमें जा बैठा। द्वितीय यमके समान कुंभकरण हाथमें त्रिशूल लेकर, रावणके पास, पार्श्वरक्षक बन, आ उपस्थित हुआ। इंद्रजीत और मेघकुमार भी रावणके दोनों ओर आकर खड़े होगये; वे ऐसे मालूम होते थे, मानो रावणकी दोनों भुजाएँ हैं। उसके अन्य महापराक्रमी पुत्र, कोटिशः

सामंत, और शुक, सारण, मारीच, मय और सुंद आदि भी वहाँ आ उपस्थित हुए। रणकार्यमें चतुर, ऐसी असंख्य सहस्र अक्षौहिणी सेनासे दिशाओंको आच्छादित करता हुआ रावण लंकासे बाहिर निकला।

राम और रावणकी सेनाका युद्ध।

रावणकी सेनामें कोई सिंहकी ध्वजावाला था, कोई अष्टापदकी ध्वजावाला था, कोई चमूरु[1]की ध्वजावाला था, कोई हाथीकी ध्वजावाला था, कोई मयूरकी ध्वजावाला था, कोई सर्पकी ध्वजावाला था, कोई मार्जार[2]की ध्वजावाला था और कोई श्वानकी ध्वजावाला था।

किसीके हाथमें धनुष था, किसीके हाथमें खड्ग था, किसीके हाथमें भुशुंडी थी, किसीके हाथमें, मुद्गर था, किसीके हाथमें त्रिशूल था, किसीके हाथमें परिघ[3] था, किसीके हाथमें कुठार था और किसीके हाथमें पाश[4] था। वे अपने प्रतिपक्षीयोंको बारबार ललकारते थे और रणस्थलमें बड़ी चतुरताके साथ विचरण करते थे।

रावणकी विशाल सेना वैताढ्य गिरिके समान मालूम होती थी। उसकी सेनाने अपना पड़ाव डालनेके लिए पचास योजन भूमिको घेरा।

१—एक प्रकारका मृग; २—बिल्ली; ३—लोहेसे मढा हुआ लट्ठ; ४—फंदा।

दोनों ओरके सैनिक, अपने अपने नायकोंकी निंदा करते हुए, एक दूसरेपर आक्षेप करते हुए, परस्पर बढ़ा चढ़ीकी बातें करते हुए, ताल ठोकते हुए, शस्त्रोंकी झंकार करते हुए, काँसीके मजीरोंकी भाँति एक दूसरेसे मिल गये। वीर चिल्लाने लगे—“ खड़ा रह, खड़ा रह, भाग न जाना। आयुध ग्रहणकर नामर्दोंकी तरह क्या खड़ा है? अपनी भलाई चाहता है तो शस्त्र रख दे और शरणमें आजा आदि।”

तीर, शंकु, भाले, चक्र, गदाएँ और परिघ जंगलमें उड़ते हुए पक्षियोंकी भाँति उड़ने और दोनों ओर की सेनाओंमें आआ कर गिरने लगे। परस्परके प्रहारसे दोनों दलोंके वीर आहत होने लगे। उनके शिर कटकर उछलने लगे। उन उड़ते हुए मस्तकों और धड़ोंसे प्रतीत होने लगा, मानो सारे आकाश मंडलको राहु और केतुने ढक दिया है। मुद्गरोंके आधातसे हाथियोंको गिराने वाले योद्धा ऐसे मालूम होने लगे मानो, वे डोटा दड़ीखेल रहे हैं। कई पंचशाखा क्षत होजानेसे–दो, हाथ, दो पैर और मस्तकके कट जानेसे–ऐसे मालूम होते थे, मानो फल, फूल पत्ते, टहनी और शाखा विहीन वृक्षका ठूँठ खड़ा है। वीर सुभट शत्रुओंके मस्तकोंको काटकर, पृथ्वीपर फेंकने लगे; मानो वे क्षुधातुर यमराजको भोजन दे रहे हैं।

बड़ी देरतक युद्ध होता रहा । जयलक्ष्मीके साध्य होनेमें बहुत विलंब लगा; जैसे कि पैतृक संपत्तिका भाग मिलनेमें बहुत विलंब होता है। चिरकाल युद्ध करनेके बाद, बलवान वानर सेनाने, वनकी भाँति, राक्षस सेनाको भग्न कर दिया। राक्षस सेनाको परास्त होकर पीछे हटते देख, रावणकी जयके जामिन रूप, हस्त और प्रहस्त युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। उनसे युद्ध करनेके लिए, नल और नील नामक वीर सामने आये।

पहिले वक्र और अवक्र ग्रहोंकी भाँति, वे रथारूढ होकर, परस्परमें मिले। उन्होंने धनुषोंपर चिल्ले चढ़ाकर उनकी टंकार की; मानों उन्होंने एक दूसरेको युद्धके लिए ललकारा है। दोनों ओरसे बाणवर्षा होने लगी। परस्परकी बाणवर्षासे चारोंके रथ बिंध गये। क्षणवरमें, नल जयी दिखने लगता; दूसरे ही क्षण हस्त विजय मालूम होने लगता था। इस प्रकारके क्षण, क्षणमें परिवर्त्तन होनेवाले जय, पराजयसे निपुण पुरुष भी उनके बलका अंदाजा न लगा सके। अन्तमें बलवान नलको सभ्य होकर देखनेवाले वीरोंके आगे लाज आगई; साथ ही उसका क्रोध विशेष रूपसे भभक उठा। उसने तत्काल ही, अव्याकुल भावसे, क्षुरप्र बाणद्वारा हस्तका शिर काट दिया। ठीक उसी समय नीलने भी प्रहस्तको मार डाला। देवताओंने हर्षित होकर, आकाशसे नल और नील पर पुष्पवृष्टि की।

हस्त प्रहस्तकी मृत्युसे रावणके सुभट क्रुद्ध हुए। उनमेंसे मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, सारण, शुक्र, चंद्र, अर्क, उद्दाम, बीभत्स, कामाक्ष, मकर, ज्वर, गंभीर, सिंहरथ और अश्वरथ आदि सुभट युद्ध करनेको सामने आये। मंदनाकुमार, संताप, प्रथित, आक्रोश, नंदन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र विघ्न और प्रीतिकर आदि वानरवीर भिन्न २ एक एकके साथ युद्ध करने लगे। और ऊँचे उछल उछल कर, नीचे गिरने लगे; जैसे कि मुर्गे लड़ते लड़ते ऊँचे उड़ते हैं और नीचे गिरते हैं। इस तरह युद्ध चलते हुए, बहुत देर हुई। मारीच राक्षसने संताप वानरको, नंदन वानरने ज्वर राक्षसको, उद्दाम राक्षसने विघ्न वानरको, दुरित वानरने शुक राक्षसको और सिंहजघन राक्षसने प्रथित वानरको, कठोर प्रहार करके, घायल कर दिया। उसी समय सूर्य अस्त होगया, इससे राम और रावणकी सेना युद्धसे विमुख हुई सैनिक अपने अपने पक्षके मृत और घायल सुभटोंको शोधने लगे।

हनुमानकी युद्धक्रीडा।

रात बीतगई। सूरज उगगया। तब राक्षस योद्धा रामके योद्धाओंके सामने, युद्धार्थ आये; जैसे कि दानव देवोंके सामने युद्धार्थ जाते हैं। राक्षसोंकी सेनाके मध्यभागमें हाथीके रथमें बैठकर, रावण अपनी सेनाका संचालन कर रहा था। वह मेरुगिरिके समान प्रतीत होता था।

क्रोधके मारे उसकी आँखोंसे आग सदृश स्फुलिंग उड़ते हुए, दिखाई देते थे। मानो वह दिशाओंको भी भस्म कर देना चाहता है। विविध अस्त्रोंसे सज्जित रावण यमराजसे भी भयंकर दिखाई देने लगा। इन्द्रकी भाँति अपने प्रत्येक सेनापतिको देखता हुआ, और शत्रुओंको तृणके समान गिनता हुआ रावण युद्धभूमिमें आया। उसको देखते ही, रामके पराक्रमी सेनापति—जिनको देवता आकाशमेंसे देखने लग रहे थे—सेना सहित युद्ध करनेको आये।

युद्धप्रारंभ हो गया। थोड़ी ही देरमें युद्धस्थल कहींसे, उछलते हुए रक्तसे नदीके समान, कहींसे पड़े हुए हाथियोंसे पर्वतके समान; कहिंसे, रथमेंसे टूटकर गिरी हुई मकरमुख ध्वजासे, मगरोंके निवासस्थानके समान कहींसे अर्धमग्न बड़े बड़े रथोंसे समुद्रमेंसे निकले हुए दाँतोंके समान और कहींसे, नाचते हुए कबंधोंसे—धड़ोंसे—नृत्यस्थानके समान, दीखने लगा।

रावणकी हुँकारसे प्रेरित होकर राक्षसोंने पूर्ण बलके साथ वानरोंपर धावा किया, और वानरसेनाको पीछे हटा दिया। अपने सैन्यके पीछे हटनेसे सुग्रीवको क्रोध आया। वह धनुष चढ़ा, प्रबल सेना साथ ले, पृथ्वीको कंपित करता हुआ आगे बढ़ा। उसको जाते देख हनुमान उसको रोक स्वयं युद्धके लिए आगे आया। अगणित सेनानियोंसे रक्षित, दुर्मद राक्षसोंका व्यूह अत्यंत दुर्भेद्य था।

तो भी हनुमान, उसमें प्रविष्ट करगया। जैसे कि मंदराचल समुद्रमें प्रवेश कर जाता है ।

उस समय, हनुमानको सेनामें प्रवेश करता देख, अपने तीर तर्कशको सँभालता हुआ, दुर्जय माली नामा राक्षस, मेघकी भाँति गर्जना करता हुआ उसपर चढ़ गया। दोनों युद्ध करने लगे। धनुषकी टंकार करते हुए दोनों वीर ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो दो सिंह अपनी पूँछको फटकार रहे हैं। एक दूसरेपर प्रहार करता था; एक दूसरेके शस्त्रोंको काट देता था और गर्जना करता था। बहुत देर युद्ध करनेके बाद, हनुमानने मालीको शस्त्र-विहीन कर दिया; जैसे कि ग्रीष्म ऋतुका सूर्य छोटेसे सरोवरको सुखा देता है—जल विहीन करदेता है। फिर हनुमानने मालीसे कहाः—“रे वृद्ध राक्षस! यहाँसे चला जा! तुझे मारनेसे क्या लाभ है?”

हनुमानकी बात सुनकर, वज्रोदर राक्षस आगे आया और कहने लगाः—“रे पापी दुर्वचनी! क्यों तेरी मौत आई है? यहाँ आ। मेरेसे युद्ध कर। थोड़ी ही देरमें मैं तुझको यमधाम पहुँचा देता हूँ।”

वज्रोदरके वचन सुनकर, हनुमानने केसरी सिंहकी भाँति गर्जना की; और बाणवर्षाकर उसको ढक दिया। उन बाणोंको विच्छिन्न कर वज्रोदरने हनुमानको निज

बाणों द्वारा आच्छादित करदिया; जैसे कि बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं ।

आकाशस्थ रण देखनेवाले सभ्य, निरपेक्ष देवताओंने वाणी की:—" अहो ! वज्रोदर वीर हनुमानसे युद्ध करनेमें समर्थ है और हनुमान भी वज्रोदरके लिए उपयुक्त है ।" मानका पर्वतरूप हनुमान इस देववाणीको न सह सका । उसने क्रोधकर, उत्पात मेघकी तरह विचित्र शस्त्र बरसाकर, सब राक्षस वीरोंके देखते हुए वज्रोदरको मार डाला ।

वज्रोदरके वधसे क्रुद्ध होकर, रावणका पुत्र जंबूमाली, सामने आया और महावत जैसे हाथीको ललकारता है वैसे ही उसने तिरस्कारसे हनुमानको ललकारा । एक दूसरेको वध करनेकी इच्छा रखते हुए, वे परस्परमें बाण युद्ध करने लगे; मानो बाजीगर–सपेरा–और साँप खेल करने लग रहे हैं । एक दूसरेपर, अपनेपर आये हुए बाणोंसे दुगने, बाण छोड़ते थे । उस समयकी उनकी स्थिति लेनेवाले और देनेवाले कीसी होगई थी । फिर हनुमानने क्रोध करके, जंबूमालीको, रथ, घोड़े, और साराथि रहित बना दिया; फिर उसपर मुद्गरका कठोर प्रहार किया इससे जंबूमाली मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरगया ।

जंबूमालीको मूर्च्छित देखकर, महोदर नामा राक्षस क्रोधसे बाणवर्षा करता हुआ, युद्ध करनेके लिए हनुमा-

नके सामने आया । दूसरे राक्षसोंने भी, हनुमानको, मारनेकी इच्छा कर, चारों तरफसे घेर लिया; जैसे कि कुत्ते सूअरको घेर लेते हैं । हनुमानके तीक्ष्ण तीर शीघ्रतासे निकल निकल कर शत्रुओंको आहत करने लगे । कोई भुजामें, कोई मुँहमें, कोई चरणमें, कोई हृदयमें और कोई पेटमें प्रविष्ट होगया । उस समय हनुमान राक्षस सेनामें ऐसा सुशोभित होने लगा जैसे वनमें दावानल, और समुद्रमें वडवानल होता है । थोड़ी ही वारमें पराक्रमियोंके चूडामणि हनुमानने सारी राक्षस सेनाको नष्ट कर दिया; जैसे कि सूर्य अंधकारको नष्ट कर देता है ।

युद्धकर, कुंभकरणका मूर्च्छित होना ।

राक्षससेनाके इस भाँति नष्ट होने पर, कुंभकरण क्रुद्ध स्वयमेव युद्ध करनेको दौड़ाः वह ऐसा सुशोभित ने लगा, मानो ईशानेन्द्र भूमि पर आया है । चरण- मुष्टि प्रहारसे, कोनी प्रहारसे, थप्पड़से, मुद्गरके त्रिशूलसे और टक्करसे,—ऐसे अनेक प्रकारसे— वानर सेनाको नष्ट करने लगा ।

कल्पान्त कालके समुद्र समान रावणके तपस्वी बन्धु भकर्णको रणमें आया हुआ देख कर, सुग्रीव, भामंडल, धिमुख, महेंद्र, कुमुद, अंगद और अन्यान्य वीर वानर ग्निकी भाँति क्रोधसे प्रज्वलित होकर, रणभूमिमें दौड़ ाये । उन श्रेष्ठ वानरोंने विचित्र प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा

करते हुए आकर कुंभकर्णको घेर लिया; जैसे कि शिकारी-सिंहको घेर लेते हैं।

कुंभकर्णने तत्काल ही, कालरात्रिके समान; मुनिके वचन समान, प्रस्वापन नामा अमोघ अस्त्र उनपर चलाया इससे सारी वानरसेना निद्राके वशमें होगई; जैसेके दिनमें कुमुद हो जाता है। यह देखकर, सुग्रीवने उसी समय प्रबोधिनी नामा महाविद्याका स्मरण किया। उसके प्रभावसे सारी सेना वापिस जागृत होगई, और "कुंभकर्ण कहाँ है; मारो" आदि शब्दोच्चार करने लगी। उस समय उनका कोलाहल ऐसा मालूम हो रहा था, मानो प्रातःकाल होनेसे पक्षी उठकर कलरव करने लग रहे हैं।

सुग्रीव अधिष्ठित वानरयोद्धा कानोंतक बाणोंको खींच खींच कर चलाने लगे और कुंभकर्णको सताने लगे। इधर सुग्रीवने गदाका प्रहार कर, कुंभकर्णके सारथिको, रथको और घोड़ोंको मार डाला। कुंभकर्ण हाथमें गदा लिए भूमिपर खड़ा हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो शिखरवाला पहाड़ खड़ा हुआ है। कुंभकर्ण सुग्रीव पर झपटा। कुंभकर्णकी गतिके वेगसे जो वायु चला उससे कई वानर गिर गये; जैसे कि हाथीके स्पर्शसे वृक्ष गिर जाते हैं। स्थलमें नदी जैसे पत्थरोंकी बाधा न मान बेरोक दौड़ती हुई–बहती हुई–चली जाती है, वैसे ही, वानरोंकी बाधा न मान, कुंभकर्णने दौड़ते हुए जाकर, सुग्रीवके रथको

चूर्ण कर डाला। सुग्रीव आकाशमें उड़ गया। वहाँसे उसने कुंभकर्ण पर एक बहुत बड़ी शिला डाली, जैसे कि पर्वत-पर इन्द्र वज्र गिराता है। कुंभकर्णने उस शिलाको, गदा प्रहारसे चूर चूर कर दिया। शिलाके चूरेके कारण—जो कि कुंभकर्णके पाससे उड़ा था—कुंभकर्ण ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह वानरसेनाको ढक देनेके लिए रजो-वृष्टि कर रहा है। फिर वालीके अनुज बंधु सुग्रीवने उस पर तड़ तड़ करता हुआ, विद्युत् अस्त्र चलाया। उसको विफल करनेके लिए कुंभकर्णने कई अस्त्र चलाये; परन्तु कुछ फल न हुआ। उसने कल्पान्त कालकी भाँति कुंभ-कर्णपर गिर कर उसको, भूमिपर गिराया और मूर्च्छित कर दिया।

रावणके पुत्रों और सुग्रीवका युद्ध।

अपने भाई कुंभकर्णको मूर्च्छित देखकर, रावणको बड़ा भारी क्रोध आया। भ्रकुटीके चढ़नेसे उसका मुख भयंकर हो गया। वह रणभूमिकी ओर चलता हुआ ऐसा मालूम होने लगा; मानो साक्षात यमराज जा रहा है। उस समय इन्द्रजीतने आकर उसको कहा:—"हे पिता आपके सामने, रणस्थलमें खड़े रहनेकी, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रकी भी शक्ति नहीं थी तो फिर ये विचारे वानर तो कैसे रह सकते हैं? इस लिए हे देव! आप

इस समय न जाइए। मैं जाकर वानरोंको, मच्छरको थापसे मार देते हैं वैसे, मार डालूँगा।"

इस प्रकार कह, रावणको रोक, महामानी इन्द्रजीत बहुत बड़ा पराक्रम दिखाता हुआ, युद्धस्थलमें गया। उस पराक्रमी वीरके पहुँचते ही वानर रणस्थलको छोड़ छोड़ कर भागने लगे, जैसे कि सर्पके आ जानेसे मैंडक सरोवरको छोड़ देते हैं। वानरोंको भागते देख कर, इन्द्रजीत बोला:—"रे वानरो! ठहरो, ठहरो, वृथा भीत होकर मत भागो। मैं युद्ध नहीं करनेवालेको कभी नहीं मारूँगा। मैं रावणका पुत्र हूँ। हनुमान और सुग्रीव कहाँ हैं? उन्हें जाने दो, बताओ कि शत्रुभाव धारण करनेवाले राम और लक्ष्मण कहाँ हैं?"

इस प्रकार गर्वसे बोलनेवाले, क्रोधसे रक्तनेत्री बने हुए इन्द्रजीतको सुग्रीवने युद्ध करनेके लिए ललकारा। भामंडल भी इन्द्रजीतके अनुज मेघवाहनके साथ युद्ध करने लगा; जैसे कि अष्टापद अष्टापदके साथ करते हैं। परस्पर प्रहार करते हुए, तीन लोकके लिए भयंकर वे ऐसे मालूम होने लगे मानो वे चारों दिग्गजेंद्र हैं, या चार समुद्र हैं। उनके रथोंकी तीव्रगतिसे पृथ्वी काँप उठी, पर्वत हिल गये और महासागर क्षुब्धताको प्राप्त हुए। अति हस्तलाघववाले और अनाकुलतासे युद्ध करनेवाले, वे कितनी देरमें धनुषपर बाण चढ़ाते थे, और उसको छोड़ देते थे

सो कुछ भी मालूम नहीं होता था। उन्होंने लोहमय शस्त्रोंसे और देवताधिष्ठित अस्त्रोंसे बहुत देरतक युद्ध किया; परन्तु कोई किसीको न जीत सका।

अन्तमें बहुत खीजकर इन्द्रजीत और मेघवाहनने सुग्रीव और भामंडलपर नागपाश अस्त्र चलाया। उनसे वे बँध गये, और ऐसे मजबूत बँधे कि उनके श्वासोश्वास भी कठिनतासे आते जाते थे। उसी समय कुंभकर्णको भी चेत हो आया। उसने हनुमानके ऊपर गदाका प्रहार किया। हनुमान मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर गया। कुंभ-कर्ण, तक्षक नागके समान अपनी भुजासे हनुमानको उठा, बगलमें दबा, लंकाकी ओर चला। यह देखकर, विभी-षणने रामचंद्रसे कहा—" हे स्वामिन् ! सुग्रीव और भामं-डल आपकी सेनामें साररूप हैं, जैसे कि शरीरमें दो आँखें होती हैं। उन्हींको इन्द्रजीतने और मेघवाहनने नाग-पाश द्वारा बाँध लिया है। अतः वे इनको लेकर लंकामें जायँ इसके पहिले ही मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उनको छुड़ा लाऊँ। हे प्रभो ! सुग्रीव, भामंडल और हनुमानके विना अपना सारा सैन्य वीरता हीन है।"

विभीषण रामचंद्रको इस प्रकार कह रहा था उसी समय अंगद कुंभकर्ण पर झपटा और उसके साथ युद्ध करने लगा। क्रोधांध होकर कुंभकर्णने अपनी भुजा ऊँची की, इससे मारुती तत्काल ही उसके भुजपाशमेंसे

निकल कर उड़ गया; जैसे कि पिंजरा खुला पाकर पक्षी उड़ जाता है। मेघवाहन और इन्द्रजीतसे युद्ध कर, सुग्रीव और भामंडलको छुड़ानेके लिए, विभीषण रथमें बैठकर रवाना हुआ। विभीषणको आते देख, इन्द्रजीत सोचने लगा–विभीषण अपने पिताके अनुज बंधु होकर हमारे साथ युद्ध करनेको आ रहे हैं। ये अपने चचा हैं। चचाके साथ युद्ध कैसे करें? क्यों कि ये अपने पिताके समान हैं इस लिए हमें यहाँसे चला जाना चाहिए।

'न ह्रीःपूज्याद्धि बिभ्यताम्।'

(अपने बड़ों और पूज्योंके सामने पीछे हटजानेमें–चले जानेमें– कुछ लज्जा नहीं है।) इस नागपाशमें बँधे हुए शत्रु अवश्यमेव मर जायँगे। अतः हम इनको यहीं छोड़कर चले जावें, जिससे काका न अपने पास आवेंगे और न हमें उनसे युद्ध ही करना पड़ेगा। ऐसा सोच, मेघ-वाहन सहित इन्द्रजीत वहाँसे चला गया। विभीषण भामंडल और सुग्रीवको देखता हुआ वहीं खड़ा रह गया। राम और लक्ष्मण भी चिन्तासे म्लानमुखी बनकर वहीं चुप-चाप खड़े रहे; जैसे कि हिमसे आच्छादित सूर्य, चंद्रका शरीर होजाता है।

उस समय रामचंद्रने सुवर्ण निकायके देव महालोच-नका–जिसने रामको पहिले वरदान दिया था–स्मरण किया। वह देव अवधिज्ञानसे उसवृत्तान्तको जानकर वहाँ

आया। उसने रामको सिंहनिनादा नामा विद्या, मूसल रथ और हल * दिये। और लक्ष्मणको, गारुडी विद्या, रथ और रणमें शत्रुओंका नाश करनेवाली विद्युद्वदना नामकी गदा दी। इनके अतिरिक्त उसने आग्नेय व वायव्य आदि दूसरे दिव्य अस्त्र और छत्र भी उनको दिये। देव चला गया। लक्ष्मण भामंडल और सुग्रीवके निकट गये। उनके वाहन गरुडको देखते ही हनुमान और भामंडलके लिपटे हुए नागपाशके नाग तत्काल ही भाग गये। दोनों वीर मुक्त हुए। रामकी सेनामें चहुँ ओरसे जयनाद सुनाई देने लगा। राक्षसोंकी सेनामें सूर्यास्तकी भाँति अफसोसका अँधेरा छागया।

रावणका युद्धमें प्रवृत्त होना।

तीसरे दिन सवेरे ही राम और रावणकी सेना फिरसे, पूर्ण बलके साथ रणभूमिमें आई। भयंकर युद्ध आरंभ हुआ। चलते हुए अस्त्र ऐसे ज्ञात हो रहे थे; मानो यमराजके दाँत हिल रहे हैं। प्राण संहारकी लीलाको देखकर ऐसा जान पड़ता था; मानों अकालमें ही प्रलयकालका संवर्त मेघ बरसने लगा है। मध्यान्ह कालके तापसे तपे हुए वराहोंके द्वारा कुस्थिति प्राप्त सरसी--जलाशय--की भाँति क्रुद्ध राक्षसोंने वानर सेनाको घबरा दिया।

अपनी सारी सेनाको भग्नप्रायःहुई देखकर, सुग्रीवादि

* मूसल और हल बलदेवके मुख्य शस्त्र हैं।

वानरवीरोंने राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश किया; जैसे कि योगी दूसरे शरीरोंमें प्रवेश करते हैं। उन वीरोंसे सारे राक्षस आक्रांत होकर, पराभूत होगये—हारगये; जैसे कि गरुडसे सर्प और जलसे कच्चे घड़े हो जाते हैं।

राक्षस सेनाको नष्ट होती देख, क्रुद्ध हो, रावण स्वयमेव युद्ध करनेको चला। उसके सुदीर्घकाय रथके पहिये फिरते हुए, ऐसे मालूम होते थे; मानो वे पृथ्वीकी छातीको फाड़ देना चाहते हैं। दावानलकी भाँति अस्त्र प्रहार करते हुए उस वीरके सामने कोई भी वानर वीर न टिका। यह देख, राम स्वयं युद्ध स्थलमें जानेको प्रस्तुत हुए। विभीषणने उन्हें रोका और आप युद्धके लिए रावणके सामने आया। उसको देखकर, रावण बोलाः—"रे विभीषण! तूने किसका आश्रय लिया है, कि जिसने, क्रुद्ध होकर रणस्थलमें आये हुए मेरे मुखमें प्रथम ग्रास बनकर, गिरनेके लिए तुझको भेज दिया है। डुकरपर शिकारी जैसे कुत्तेको भेजता है, वैसे ही आत्मरक्षा करनेवाले रामने तुझे मेरे सामने भेजनेकी बहुत बुद्धिमत्ता की है। हे वत्स! अब भी तुझपर मेरा स्नेह है; इस लिए तू यहाँसे शीघ्र ही चला जा। आज मैं राम और लक्ष्मणको वानरसेना सहित मार डालूँगा। इसलिए मरनेवालोंकी संख्यामें तू अपनी एक संख्या न बढ़ा। तू खुशीसे अपने स्थानको चला जा। अब भी तेरी पीठपर मेरा हाथ है।"

रावणके वचन सुनकर विभीषणने कहाः—" रे अज्ञ! राम क्रोध करके यमराजकी भाँति तुझ पर आक्रमण करने आ रहे थे। मैंने ही उनको बहाना करके रोका है; मैं स्वयमेव युद्धके नामसे तुझे समझानेको आया हूँ। अतः अब भी मेरी बातको मानले और सीताको छोड़ दे। रे दशानन! मैं न तो रामके पास मौतके डरसे गया हूँ और न राज्यके लोभसे। मैं केवल अपवादके भयसे उनके पास गया हूँ। सो यदि तू सीताको छोड़कर अपवादको–कलंकको–दूर करदे तो मैं तत्काल ही रामको छोड़ कर तेरा आश्रय ग्रहण करलूँ। "

उसके ऐसे वचन सुन, रावण कोपकेसाथ बोलाः— "रे दुर्बुद्धी! रे कातर! क्या अब भी तू मुझको डराता है? मैंने तो केवल भ्रातृ-हत्याके डरसे ही तुझको ऐसा कहा था, अन्य कोई हेतु नहीं था।" फिर रावणने धनुषकी टंकार की।

"मैंने भी भ्रातृ-हत्याके भयसे ही ऐसा कहा था, और कोई हेतु नहीं था।" ऐसा कह, विभीषणने भी अपने धनुषकी टंकार की। तत्पश्चात नानाप्रकारसे शस्त्रास्त्र चलाते हुए दोनों बन्धु उद्धता पूर्वक युद्ध करने लगे।

रामका शत्रु योद्धाओंको बाँधना।

उस समय कुंभकर्ण, इन्द्रजीत और दूसरे राक्षस भी, यमराजके किंकरोंकी भाँति स्वामी-भक्तिसे प्रेरित होकर,

वहाँ दौड़ आये । इनको आये देख, राम लक्ष्मण आि भी युद्धमें आगये । कुंभकर्ण और राम, लक्ष्मण और इन् जीत, सिंहजघन और नील, घटोदर और दुर्मुख, दुर्मा और स्वयंभू, शंभु और नल, मय और अंगद, चंद्रन और स्कंद, विघ्न और चंद्रोदरपुत्र, केतु और भामंडल जंबूमाली और श्रीदत्त, कुंभ और हनुमान; सुमाली औ सुग्रीव, धूम्राक्ष और कुंद, और सारण और चंद्ररशि आदि अन्यान्य राक्षस, अन्यान्य वानरोंके साथ युद्ध कर लगे; जैसे समुद्रमें मगर दूसरे मगरोंके साथ युद्ध करते है

भयंकर युद्ध हो रहा था । इन्द्रजीतने क्रोधके सा लक्ष्मणके ऊपर तामस अस्त्र चलाया । शत्रुको ताप कर वाले लक्ष्मणने, पवनास्त्र द्वारा उसको निष्फल कर दिय गला दिया; जैसे कि अग्नि मोमके पिंडको गला देती है लक्ष्मणने इन्द्रजीत पर नागपाश-अस्त्र चलाया; वह उस ऐसे बँध गया जैसे हाथी जलके अंदर तंतुओंसे बँध जात है । नागपाशास्त्रसे बँधा हुआ, इन्द्रजीत भूमिपर गि मानो वह पृथ्वीको फाड़ देना चाहता है । लक्ष्मणकी आज्ञा विराधने उसको उठाकर रथमें डाला, और कैदीकी त वह उसे छावनीमें ले गया । रामने भी नागपाशसे कुं कर्णको बाँध लिया । रामकी आज्ञासे भामंडल उस उठाकर अपनी छावनीमें चला गया । दूसरे मेघवाह

आदि राक्षस वीरोंको बाँध बाँध कर रामके सुभट अपनी छावनीमें ले गये।

लक्ष्मणका मूर्च्छित होना।

इस हालतको देखकर रावण शोकके मारे व्याकुल हो उठा। उसने क्रोध करके जयलक्ष्मीके मूल समान त्रिशूलको विभीषणपर चलाया। उस त्रिशूलको लक्ष्मणने अपने बाणोंसे बीचहीमें कदली खंडकी भाँति नष्ट कर दिया। तब विजयार्थी रावणने धरणेन्द्रकी दी हुई अमोघ विजया नामा शक्तिको आकाशमें घुमाना प्रारंभ किया। धग, धग, और तड़, तड़ करती हुई वह शक्ति प्रलय-कालके अंदर चमकनेवाली बिजलीके समान दिखने लगी। उसे देखकर देवता आकाशमेंसे हटगये; सैनिकोंने आँखें मीचलीं। कोई भी स्वस्थ होकर वहाँ खड़ा न रह सका।

उसको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहाः—"अपना शरणागत विभीषण यदि इस शक्तिसे मारा जायगा तो अच्छा न होगा। हम आश्रितका घात करनेवाले, कह लायँगे और धिक्कारके पात्र होंगे।"

रामके वचन सुनकर मित्रवत्सल सौमित्री विभीषणके आगे जा खड़े हुए। गरुडपर चढ़े हुए लक्ष्मणको आगे आया हुआ देख, रावण बोलाः—"रे लक्ष्मण! यह शक्ति मैंने तुझको मारनेके लिए तैयार नहीं की है। इस लिए तू दूसरोंकी मौतके बीचमें आकर, स्वयं न मर

अथवा तू भी मर । क्योंकि तुझको भी तो मुझे मारना ही है । तेरा आश्रित यह विभीषण इस समय रंक होकर बिचारा मेरे सामने खड़ा है । ”

फिर उसने उत्पात वज्रतुल्य उस शक्तिका लक्ष्मणपर प्रहार किया । उस शक्तिको लक्ष्मणपर आती देख, सुग्रीव, हनुमान, भामंडल आदि वीरोंने, अपने नाना भाँतिके अस्त्रोंद्वारा, उसको रोकना–विफल करना–चाहा; परन्तु वह किसीकी बाधा न मान, सबकी अवज्ञा कर, जैसे कि उन्मत्त हाथी अंकुशकी बाधाः नहीं मानता है–समुद्रमें जैसे बडवानल लग जाती है, वैसे ही, वह लक्ष्मणके हृदयमें लग गई । उसके आघातसे लक्ष्मण पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित होगये । वानरसेनामें चहुँ ओर हाहाकार मच गया ।

राम क्रुद्ध हो, पंचानन रथमें बैठ रावणको मारनेकी इच्छाकर युद्ध करने लगे । क्षणवारमें उन्होंने रावणके रथको तोड़ दिया । रावण दूसरे रथमें बैठा । जगतमें अद्वितीय पराक्रमी रामने इसी भाँति पाँचवार रावणके रथको तोड़दिया । रावणने सोचा–राम स्वयमेव बन्धु विरहसे मर जायँगे फिर मैं वृथा क्यों युद्ध करूँ ? यह सोच, रावण लंकामें चला गया । शोकाकुल राम लक्ष्मण-की ओर चले । उसी समय सूर्य भी अस्त होगया; मानो वह भी रामके शोकसे आतुर हो, आकाशमंडलमें न ठहर सका ।

रामका शोक ।

लक्ष्मणको मूर्छित पड़ा देख, राम भी घबराकर पृथ्वीपर गिर पड़े और बेहोश हो गये । सुग्रीव आदिने आकर रामपर चंदन-जलका सिंचन किया । थोड़ी देरमें रामको होश आया । राम उठकर लक्ष्मणके पास बैठे और इस प्रकारसे विलाप करने लगेः—" हे वत्स ! बता तुझको क्या पीड़ा हो रही है ? तूने मौन कैसे धारण किया है ? यदि बोल नहीं सकता है तो संज्ञासे–इशारेसे–ही कुछ कह और अपने ज्येष्ठ बन्धुको प्रसन्न कर । हे प्रिय दर्शन वीर ! ये सुग्रीव आदि तेरे अनुचर तेरा मुख ताक रहे हैं । इनको वाणीसे या दृष्टिसे किसी भी तरहसे अनुग्रहीत क्यों नहीं करता है ? यदि तू इस लज्जासे नहीं बोलता है कि, रावण तेरे सामनेसे जीवित चला गया है, तो कह । मैं तेरे इस मनोरथको तत्काल ही पूर्ण कर दूँगा । रे दुष्ट रावण ! खड़ा रह, खड़ा रह भागकर कहाँ जाता है ? मैं थोड़े ही समयमें तुझको महामार्गका मुसाफिर बनाता हूँ । "

इतना कह, धनुष चढा, राम खड़े हो गये । उस समय सुग्रीवने सामने आकर विनय पूर्वक कहाः—" हे स्वामिन् ! इस समय रात्रि है ! रावण लंकामें चला गया है । हमारे स्वामी लक्ष्मण शक्तिके प्रहारसे अचेत हो रहे

हैं; इस लिए इस समय तो इन्हें सचेत करनेका प्रयत्न कीजिए । रावणको तो अब मरा ही समझिए । ”

राम फिर विलाप करने लगे—“ अहो ! स्त्रीका हरण हुआ । अनुज लक्ष्मण मर गया; परन्तु यह राम अबतक जीवित ही बैठा है । यह क्यों नहीं सैकड़ों स्थानोंसे विदीर्ण हो जाता है ? हे मित्र सुग्रीव ! हे हनुमान ! हे भामंडल ! हे नल ! हे अंगद ! हे विराध ! और हे अन्यान्य वीरो ! अब तुम अपने अपने स्थानको चले जाओ । हे मित्र बिभीषण ! मैंने तुमको कृतार्थ नहीं किया इसका मुझको सीताहरण और लक्ष्मणके मरणसे भी विशेष शोक है। इस लिए हे बन्धु ! कल सवेरे ही तुम अपने बन्धुरूपी शत्रु रावणको मेरे बन्धु लक्ष्मणका अनुगामी होता हुआ देखोगे । तुमको कृतार्थ करनेके बाद मैं भी अपने अनुजके पीछे जाऊँगा । क्योंकि विना लक्ष्मणके सीता और जीवन मेरे लिए किस प्रयोजनके हैं ? ”

विभीषणने कहाः—“ हे प्रभो ! आप ऐसे अधीर क्यों हो रहे हैं ? इस शक्तिसे मूर्च्छित बना हुआ एक रातभर जीता रहता है, इस लिए जब तक रात पूरी होकर, दिन न निकल जाय तब तक यंत्र मंत्र द्वारा लक्ष्मणके घातके प्रतिकारका प्रयत्न कीजिए । ”

रामने स्वीकार किया । तत्पश्चात सुग्रीव आदिने विद्याबलसे राम लक्ष्मणके चारों तरफ, चार चार द्वारवाले

सात दुर्ग बना दिये। पूर्व दिशाके द्वारों पर, अनुक्रमसे सुग्रीव, हनुमान, तरकुंद, दधिमुख, गवाक्ष और गवय रहे। उत्तर दिशाके द्वारपर अंगद, कूर्म, अंग, महेंद्र, विहंगम, सुषेण और चंद्रराश्मि अनुक्रमसे रहे। पश्चिम दिशाके द्वारपर, नील, समरशील, दुर्द्धर, मन्मथ, जय, विजय और संभव रहे। और दक्षिण दिशाके द्वार पर, भामंडल, विराध, गज, भुवनजित, नल, मैंद और विभीषण रहे। इस प्रकार राम और लक्ष्मणको घेरकर सुग्रीव आदि योगीकी भाँति जागृत रहे।

लक्ष्मणके लिए सीताका विलाप।

उस समय किसीने जाकर सीतासे कहाः—"रावणके शक्ति प्रहारसे लक्ष्मण मरा है और भाईके स्नेहसे दुःखी होकर राम भी कल सवेरे ही मर जायँगे।" वज्र निर्घोषके समान यह भयंकर खबर सुनकर, सीता मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं, जैसे कि पवनताडित लता गिर जाती है। विद्याधरियोंने मुँहपर जल छिड़का इससे वे वापिस सजग हुईं।

तत्पश्चात वे करुण आक्रंदन करने लगीं—"हा वत्स लक्ष्मण! तुम अपने ज्येष्ठ बन्धुको अकेला छोड़ कर, कहाँ चले गये? तुम्हारे बिना एक मुहूर्त भर रहना भी उनके लिए कठिन है। मुझ मंद भागिनीको धिक्कार है। हाय! मेरे ही लिए देवतुल्य राम और लक्ष्मण इस स्थितिको

प्राप्त हुए हैं । हे पृथ्वी ! मुझपर कृपा कर, अपने गर्भमें मुझको जगह दे । तू फट जा, जिससे मैं तुझमें समाजाऊँ । हे हृदय ! तू दो भागोंमें विभक्त हो जा; प्राणोंको निकलनेके लिए मार्ग दे दे । ”

सीताकी ऐसी स्थिति देख कर, एक विद्याधरीको दया आई । उसने अवलोकिनी विद्याद्वारा देख कर कहाः— “हे देवी ! कल सबेरे ही तुम्हारे देवर लक्ष्मण, अक्षतांग हो जायँगे–वे अच्छे हो जायँगे । फिर वे और राम यहाँ आकर तुमको आनंदित करेंगे । ” विद्याधरीकी बात सुनकर, सीताको कुछ संतोष हुआ । वे चक्रवाकीकी भाँति, निर्निमेषनेत्रसे सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगीं ।

रावणका अपने बन्धुओंके लिए विलाप ।

“आज मैंने लक्ष्मणको मारा है।” यह सोच कर, रावणको थोड़ी देरके लिए आनंद हुआ । परन्तु दूसरे ही क्षण उसका आनंद दुःखमें परिवर्तन हो गया । वह अपने भाई, पुत्रों और मित्रोंके बंधनका स्मरण कर रुदन करने लगा—“ हा वत्स ! कुंभकर्ण ! तू मेरी दूसरी आत्मा था; हा पुत्र इन्द्रजीत ! हा मेघवाहन ! तुम दोनों मेरे द्वितीय बाहुयुगल थे । हा जंबूमाली आदिवीरो ! मित्रो ! तुम मेरे रूपांतर थे । अरे तुम तो गजेन्द्रोंके समान अप्राप्त बंधन थे । तुम बंधनमें कैसे पड़ गये ! ” इस प्रकार रावण स्मरण कर रुदन करता हुआ बार बार पृथ्वीपर गिरता

था, मूर्च्छित होता था; फिर सचेत हो, विलाप करता था, और फिर मूर्च्छित हो जाता था।

प्रतिचंद्र विद्याधरका रामके पास आना।

रामकी सेनाके गिर्द बने हुए दुर्ग—कोट—के दक्षिण द्वारके रक्षक भामंडलके पास एक विद्याधर आया और कहने लगाः—" यदि तुम रामके हितु हो, तो मुझे तत्काल ही उनके पास ले चलो। मैं लक्ष्मणके जीनेका उपाय बताऊँगा; क्योंकि मैं तुम्हारा हितेच्छु हूँ।"

सुनकर, भामंडल उसको हाथ पकड़ कर, रामके पास ले गया। उसने प्रणाम करके रामसे कहाः—" हे स्वामी! मैं संगीतपुरके राजा शशिमंडलका पुत्र हूँ। मेरा नाम प्रति-चंद्र है। सुप्रभा नामा रानीकी कूखसे मेरा जन्म हुआ है। एक बार मैं विमानमें बैठ कर अपनी पत्नी सहित आकाश मार्गसे क्रीडा करनेको जा रहा था। सहस्रविजय नामा विद्याधरने मुझको देखा। मैथुनसंबंधी वैरके कारण उसने बहुत देरतक युद्ध किया। अन्तमें चंडरवा शक्तिका प्रहार कर उसने मुझको पृथ्वीपर गिरा दिया। मैं अयोध्याके माहेंद्रोदय नामा उद्यानमें गिरा। मुझको वहाँ लोटते हुए आपके बन्धु कृपालु भरतने देखा। उन्होंने कोई सुगंधित पानी मेरे आघात पर लगाया। उससे चंडरवा शक्ति बहार निकल गई, जैसे दूसरेके घरमेंसे चोर निकल जाता है। उसी समय शक्तिका घाव भी रुझ गया। मैंने आश्चर्यके साथ

आपके बंधुसे उस जलका माहात्म्य पूछा । उन्होंने कहाः—
" एक बार विंध्य नामा सार्थवाह-व्यापारी—गजपुरसे यहाँ आया था । उसके साथ एक भैंसा था । उसपर बहुत बोझा लदा हुआ था । बोझेको न सह सकनेके कारण वह मार्गमें गिर गया । उसमें उठनेकी भी शक्ति न रही । विंध्य उसको वहीं छोड़ कर अपने डेरे पर चला गया । नगरके लोग उसके सिर पर पैर रख कर जाने लगे । उपद्रवसे पीडित भैंसा अन्तमें मर गया । अकाम निर्जराके योगसे मर कर, वह श्वेतंकर नगरका राजा, पवनपुत्रक नामा वायुकुमार देव हुआ । अवधिज्ञान द्वारा उसने अपनी कष्ट-कारी मृत्युको देखा । उसको क्रोध आया । इससे उसने अयोध्यामें और अयोध्याके राज्यमें नानाप्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न कर दीं । सारे लोग व्याधियोंसे पीडित होने लगे। द्रोणमेघ नामा एक मेरे मामा थे । वे भी मेरे ही राज्यमें रहते थे; तो भी उनके अधिकारवाले प्रांतमें, या उनके घरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं हुई । मैंने उनसे व्याधि न होनेका कारण पूछा । उन्होंने उत्तर दियाः—

" मेरी प्रियंकरा नामा राणी पहिले अत्यंत रुग्ण रहती थी । कुछ कालबाद उसके गर्भ रहा । गर्भके प्रभावसे वह रोग—मुक्त होगई । दिन पूरे होनेपर उसने एक कन्याको जन्म दिया । उसका नाम विशल्या रक्खा गया । सारे देशकी तरह मेरे प्रान्तमें भी रोग उत्पन्न हुआ । विशल्या-

का स्नानजल मैंने लोगोंपर डाला। उससे लोग रोगमुक्त होगये। एक बार सत्यभूति नामा चारण मुनिको मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दियाः—" यह उसके पूर्व जन्मके तपका फल है। उसके स्नानजलसे घाव रुझ-जाते हैं; अस्त्र प्रहार और लगीहुई शक्ति-निकल जाते है; व व्याधि मिट जाती है। रामके अनुजबन्धु इस कन्या-के पति होंगे।"

" मुनिके वचनोंसे, सम्यक् ज्ञानसे और अनुभवसे मुझे यह निश्चय होगया है कि-मुनिका कथन सर्वथा सत्य है।' इतना कहकर, मेरे मामा द्रोणमेघने मुझे भी विशाल्यका स्नानजल दिया। सारे देशमें मैंने उसको छिड-कवा दिया, जिससे देशमेंसे रोग जाता रहा। उसी जलको मैंने तुम्हारे उपर डाला था। जिससे तुह्मारे शरीरमेंसे शक्ति निकल गई और तुम अच्छे होगये।"

इस तरह मुझे और भरतको भी जलप्रभावका निश्चय हो-गया है। अतः आप दिन निकलनेके पहिले विशल्याका स्नानजल आ जाय, ऐसा, तत्काल ही, प्रबंध कीजिए। प्रातःकाल होजानेसे फिर क्या कर सकेंगे क्योंकि शकटके नष्ट होजाने पर गणेश क्या कर सकता है?

विशल्याके स्नानजलसे लक्ष्मणका सचेत होना।

सुनकर, रामने विशल्याके स्नानका जल लानेके लिए, सुग्रीव भामंडल, हनुमान, और अंगदको तत्काल ही भरतके

पास जानेकी आज्ञा की । वे विमानमें बैठकर पवनवेगके साथ अयोध्या जा पहुँचे । महेलमें छतपर भरत सोरहे थे । उनको जगानेके लिए उन्होंने आकाशमें रहकर, गायन करना प्रारंभ किया ।

'राजकार्येऽपि राजान उत्थाप्यंते ह्युपायतः।'

(राजकार्यके लिए हर तरहसे राजाओंको उठाना चाहिए ।) गायनके स्वरसे भरत जागगये । भामंडल आदिने उनको जाकर, नमस्कार किया । भरतने उनको, अकस्मात रातमें आनेका कारण पूछा । उन्होंने सही सही सब बातें बतादीं ।

'नाप्तस्याप्ते प्ररोचना।'

(अपने आप्तके आगे कोई कार्य छिपाने योग्य नहीं होता है ।) भरतने थोड़ी देर सोचा । फिर वे, उनके साथ विमानमें बैठकर कौतुक मंगल नगरमें पहुँचे ।

भरतने द्रोणमेघके पाससे विशल्याको माँगा । द्रोणमेघने अन्य एक हजार कन्याओं सहित, लक्ष्मणके साथ ब्याह करनेके लिए, विशल्याको, उन्हें सौंप दिया । सुग्रीवादि भरतको वापिस अयोध्यामें छोड़कर, तत्काल ही विशल्या सहित लंका पहुँचे ।

ये लोग प्रज्वलित दीपकवाले विमानमें बैठकर गये थे इस लिए उसके प्रकाशसे वानरसेनामें क्षणवारके लिए,

दिन निकलनेके भयसे, क्षोभ उत्पन्न होगया; परन्तु उनके पहुँचते ही सारी सेनाका क्षोभ हर्षमें परिवर्तन होगया।

भामंडलने उसी समय विशल्याको लक्ष्मणके पास उतार दिया। उसने लक्ष्मणके शरीरको हाथ लगाया। उसके स्पर्शसे शक्ति तत्काल ही लक्ष्मणके शरीरमेंसे बाहिर निकल गई; जैसे कि यष्टिमेंसे सर्पिणी निकलकर भाग जाती है। शक्ति निकलकर आकाशमें जा रही थी, उसको हनुमानने तत्काल ही उछल कर पकड़ लिया; जैसे कि बाज पक्षी चिड़ियाको पकड़ लेता है।

शक्ति बोलीः—"मैं तो देवता रूप हूँ। मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं हैं। मैं प्रज्ञप्ति विद्याकी बहिन हूँ। धरणेन्द्रने मुझको रावणके हाथ दिया है। विशल्याके पूर्व भवके तप-तेजको सहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ, इसी लिए मैं चली जाती हूँ। मैं तो सेवककी भाँति निरपराधिनी हूँ। इस लिए मुझको छोड़ दो।"

शक्तिकी बातें सुन, वीर हनुमानने उसको छोड़ दिया। छोड़ते ही वह शक्ति तत्काल ही, लज्जित हुई हो वैसे अन्तर्ध्यान होगई। विशल्याने फिरसे लक्ष्मणके शरीर पर हाथ फेरा और धीरे धीरे उसपर गोशीर्षचंदनका लेप किया। व्रण रुझ गये। लक्ष्मण निद्रामेंसे जाग्रत मनुष्यकी भाँति

उठ बैठे। रामभद्रने हर्षाश्रु गिराते हुए अपने अनुजको गले लगाया।

तत्पश्चात रामने लक्ष्मणको विशल्याका सारा वृत्तान्त सुनाया और अपने व दूसरोंके घायल सैनिकों पर उसके स्नानजलका सिंचन किया।

फिर रामकी आज्ञासे विशल्याके साथ, एक हजार अन्य कन्याओं सहित लक्ष्मणने विधिपूर्वक व्याह किया। विद्याधरोंने, लक्ष्मणके नवीन जीवनका, जगतको आश्चर्य-में डालनेवाला बड़ा भारी उत्सव किया।

लक्ष्मणके जी उठनेसे पीडित रावणकी मंत्रणा।

लक्ष्मणके जी जानेकी बात सुनकर, रावणने अपने उत्तम मंत्रियोंको बुलाया और कहाः—"मेरा ऐसा खयाल था कि शक्तिके प्रहारसे सवेरे ही लक्ष्मणके साथ ही, स्नेहवश, राम भी मर जायगा। दोनोंके मर जानेसे वानर भाग कर अपने अपने स्थानोंको चले जायँगे और बन्धु कुंभकर्ण, व पुत्र इन्द्रजीत आदि छूटकर स्वयमेव मेरे पास चले आयँगे; परन्तु दैवकी विचित्रतासे लक्ष्मण तो जी उठा; इस लिए बताओ कि—अब कुंभकर्ण, इन्द्रजीत, आदि कैसे छुड़ाये जायँ ?"

मंत्रियोंने उत्तर दियाः—"सीताको छोड़े विना कुंभ-कर्ण आदिका छुटकारा होना कठिन है; बल्के किसी भया-नक आपत्तिके आनेकी संभावना है। हे स्वामी ! इतने

वीर गये सो गये, अब बाकी अपने कुलमें जो कुछ बचे हैं उन्हींकी रक्षा कीजिए। और उनकी रक्षाके लिए रामसे प्रार्थना करना ही एक मात्र उपाय है।"

मंत्रियोंकी ये बातें रावणको अच्छी नहीं लगीं। इस लिए उसने उनकी, अवज्ञा कर सामंत नामके दूतको यह कहकर रामके पास भेजा कि—तू साम, दाम और दंड नीतिका आश्रय लेकर किसी भी तरहसे उनको समझा।

दूत रामकी छावनीमें गया। द्वारपालने उसके आनेकी, रामको खबर दी। रामने उसको बुला भेजा। उसने सुग्रीवादि वीरोंके मध्यमें बैठे हुए रामको नमस्कार कर गंभीरता पूर्वक कहाः—"महाराज! रावणने कहलाया है, कि मेरे बन्धुवर्गको छोड़ दो। सीता मुझको देनेके लिए सम्मत होओ, और मेरा आधा राज्य तुम ग्रहण करो। मैं तुमको तीन हजार कन्याएँ भेट दूँगा। यदि इतने पर भी तुम सब्र नहीं करोगे तो फिर तुम्हारा जीवन और तुम्हारी सेना, कुछ भी न बचेंगे।"

रामने उत्तर दियाः—"मुझे न राज्य संपत्तिकी इच्छा है, न अन्य स्त्रियोंकी चाह है और न नाना भाँतिके भोगों ही की लालसा है। यदि रावण अपने बन्धु बांधवोंको छुड़ाना चाहता है, तो उसे उचित है कि, वह सीताको, उसका पूजन कर, मेरे पास भेज देवे। अन्यथा कुंभकर्णादिक मुक्त न होंगे।"

सामंत बोलाः—" हे राम! ऐसा करना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है। मात्र एक स्त्रीके लिए तुम अपने प्राणोंको क्यों संशयमें डालते हो? रावणके प्रहारसे लक्ष्मण एक-वार जी गये हैं; परन्तु अबकी वार यह आशा न रखना। अकेला रावण सारे विश्वको जीतनेमें समर्थ है। अतः उसकी बातको मान लो। अन्यथा उसका परिणाम, तुम्हारे, लक्ष्मणके और इस वानर सेनाके जीवनका अन्त होगा।"

इन बातोंसे लक्ष्मणको क्रोध हो आया। वे बोलेः— "रे अधम दूत! क्या अबतक रावण अपनी और दूस-रेकी शक्तिको नहीं समझा है? उसका सारा परिवार मारा गया और कैद हो गया है। स्त्रियाँ ही अवशेष रह गई हैं, तो भी अबतक वह अपने ही मुँहसे अपनी बड़ाई करता है। यह उसकी कैसी धृष्टता है? जैसे वटवृक्षका, सारी शाखाओं और डालियोंके कट जानेपर, केवल ठूँठ मात्र रह जाता है, वैसे ही रावण भी परिवार रूपी शाखा विहीन अकेला रह गया है। वह अब कब तक जी सकेगा?

सामंत उसका कुछ उत्तर देना चाहता था; परन्तु वानरवीरोंने गर्दनिया देकर उसको वहाँसे निकाल दिया। सामंतने राम लक्ष्मणने जो बातें कहीं थी वे राव-णको सुना दीं। सुनकर, रावणने मंत्रियोंसे पूछा कि— क्या करना चाहिए?

मंत्रियोंने पूर्ववत ही सलाह दी कि–"अब सीताको रामके सिपुर्द कर देना ही उचित है। आपने रामसे प्रतिकूल चलनेका फल तो देख ही लिया है, अब अनुकूल चलकर उसका भी परिणाम देखिए। व्यतिरेक–प्रतिकूल और अन्वय–अनुकूलसे सब कार्योंकी परीक्षा होती है, इस लिए हे राजन्! आप केवल व्यतिरेकके पीछे ही क्यों लगे हुए हैं? अब भी आपके बहुतसे बन्धु, बांधव और पुत्र जीवित हैं इस लिए, सीता रामको सौंपकर, उनकी रक्षा करिए और उन सहित राज्यसंपदा भोगिए।"

सीताको अर्पण करदेनेकी, मंत्रियोंकी, बातने रावणके मर्मपर आघात किया। वह बहुत देरतक चुपचाप बैठा हुआ विचार करता रहा। पश्चात उसने बहुरूपिणी विद्याको साधनेका निश्चयकर, मंत्रियोंको रवाना करदिया। रावण भी वहाँसे उठकर शान्तिनाथ भगवानके चैत्यमें गया। भक्ति–भावसे रावणका मुख खिल गया। उसने इन्द्रकी भाँति जल कलशोंसे शांतिनाथकी मूर्तिको स्नान कराया। गोशीर्ष चंदनका उसपर लेप किया और दिव्य पुष्पोंसे उनकी पूजा की फिर उसने शांतिनाथ प्रभुसे स्तुति करना प्रारंभ किया।

शान्तिनाथ प्रभुकी स्तुति।

'देवाधिदेवाय जगत्–तायिने परमात्मने।
श्रीमते शांतिनाथाय, षोडशायार्हते नमः॥

श्री शांतिनाथ भगवन्, भवांभोनिधि तारण।
सर्वार्थसिद्ध मंत्राय, त्वन्नाम्नेऽपि नमोनमः ॥
ये तवाष्टविधां पूजां, कुर्वंति परमेश्वर ।
अष्टापि सिद्धयस्तेषां, करस्था अणिमाद्यः ॥
धन्यान्यक्षीणि यानि त्वां, पश्यंति प्रतिवासरम् ।
ते भ्योऽपि धन्यं हृदयं, तद्दृष्टो येन धार्यसे ॥
देव त्वत्पाद संस्पर्शा–दपि स्यान्निर्मलो जनः ।
अयोऽपि हेमो भवति, स्पर्शवेधिरसान्नकिम् ॥
त्वत्पादाब्ज प्रणामेन, नित्यं भूलुंठनैः प्रभो।
श्रृंगार तिलकी भूयान्–ममभाले किणावलिः ॥
पदार्थैः पुष्पगंधाद्यै–रुपहारीकृतैस्तव ।
प्रभो भवतु मद्राज्य–संपद्वल्लेः सदा फलम् ॥
भूयो भूयः प्रार्थये त्वा–मिदमेव जगद्विभो ।
भगवन् भूयसि भूयात्–त्वयि भक्तिर्भवे भवे ॥'

भावार्थः—देवाधिदेव जगतके त्राता परमात्मास्वरूप सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ प्रभुको मेरा नमस्कार हो। संसार सागरसे तारनेवाले हे शान्तिनाथ भगवान! सर्व अर्थोंकी सिद्धिके लिए–सारी इच्छाओंकी पूर्तिके लिए–मंत्र समान आपके नामको भी नमस्कार है। हे प्रभो! जो आपकी अष्टप्रकारी पूजा करते हैं, उनको 'अणिमा'–दि

१–अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, महिमा, ईशिता, और कामावसायिता ये आठ प्रकार सिद्धियाँ होती हैं।

आठ सिद्धियाँ मिलती हैं। उन नेत्रोंको धन्य है, कि जो प्रतिदिन आपके दर्शन करते हैं। नेत्रोंसे भी उन हृदयोंको धन्य है, जो आपको हृदयमें धारण करके रखते हैं। हे देव! आपके चरण–स्पर्श मात्रहीसे प्राणी निर्मल होजाते हैं। क्या स्पर्शवेधि रससे लोहा भी स्वर्ण नहीं हो जाता है? हे प्रभो! तुम्हारे चरणकमलमें नमस्कार करनेसे और तुम्हारे सामने नित्य प्रति भूमिपर लोटनेसे मेरे लिलाटपर आपकी किरण–पंक्ति शृंगारातिलक रूप होओ। हे प्रभो! आपको भेट किये हुए पुष्पगंधादिक पदार्थोंसे मेरी राज्य-संपत्तिरूप बेलका फल मुझको प्राप्त होओ। हे जगत्पति! आपको मेरी बारबार यही प्रार्थना है कि–भवभवमें मुझको आपकी अत्यंत भक्ति–परा भक्ति–प्राप्त होवे।

रावणका बहुरूपिणी विद्या साधना।

भगवानकी स्तुति करनेके बाद, हाथमें अक्षमाला ले, रत्नशिलापर बैठ, रावणने विद्या साधना प्रारंभ किया। मंदोदरीने यमदंड नामा द्वारपालको बुलाकर कहाः— "लंकापुरीमें ढिंढोरा पिटवादे कि–आठ दिनतक सब नर नारी जैन धर्मका पालन करें, जो नहीं करेगा उसको प्राण दंड दिया जायगा।"

आदेशानुसार द्वारपालने ढिंढोरा पिटवा दिया। जासूसोंने सुग्रीवको जाकर यह खबर दी। सुग्रीवने रामसे

निवेदन कियाः—“हे प्रभो ! रावण जबतक बहुरूपिणी विद्याको सिद्ध नहीं कर लेता है, तब तक उसको साध्य करलेना चाहिए–उसको विवशकर पराजितकर देना चाहिए–विद्याके सिद्ध होजानेपर उसको जीतना असाध्य हो जायगा। ”

रामने हँसकर उत्तर दियाः—“शान्त होकर ध्यान करनेके लिए बैठे हुए रावणपर मैं कैसे आक्रमण करूँ ? मैं उसके समान छली नहीं हूँ।”

रामके वचन सुनकर अंगदादि कपि वीर लंकापति रावणकी साधना भ्रष्ट करनेके लिए शान्तिनाथके मंदिरमें गये। वे उद्धता पूर्वक रावणको नाना भाँतिके कष्ट देने लगे; परन्तु रावण तिलमात्र भी अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुआ। अंगदने मंदोदरीकी चोटी पकड़कर रावणको कहाः—“रे रावण ! शरण विहीन हो, भयभीत बन, तूने यह क्या पाखंड रचा है ? तूने तो हमारे स्वामीकी अनुपस्थितिमें सति सीताका हरण किया था; परन्तु देख, देख, हम तेरी आँखोंके सामने ही तेरी स्त्रीका हरण करते हैं।” रावण कुछ न बोला। अंगदका क्रोध भभक उठा। उसने मंदोदरीको घसीटा। वह बिचारी अनाथ टींटोड़ीकी भाँति करुण स्वरमें रुदन करने लगी। तथापि ध्यान लीन रावण अपने ध्यानसे चलायमान न हुआ।

उसी समय आकाशमंडलको प्रकाशित करती हुई बहु रूपिणी विद्या प्रकट हुई । विद्या बोली:—"हे रावण, मैं तुझे सिद्ध हुई हूँ । बता मैं क्या कार्य करूँ ? मैं सारे संसारको तेरे आधीन कर सकती हूँ । फिर राम और लक्ष्मण तो हैं ही कौन चीज ?"

रावणने कहा:—"हे विद्या ! यह ठीक है कि, तेरे लिए सब कुछ साध्य है; परन्तु इस समय मुझको तेरी आवश्यकता नहीं है । इस समय तू जा । जिस समय तुझे बुलाऊँ तब आना ।" रावणकी बात सुनकर विद्या अन्तर्धान होगई । सारे वानर भी पवनकी तरह उड़कर अपनी छावनीमें चले गये ।

रावणका वध ।

रावणने मंदोदरीकी दुर्दशाका हाल सुना । उसने क्रोधसे दाँत पीसे । फिर स्नान भोजनसे निवृत्त होकर वह देवरमण उद्यानमें सीताके पास गया और बोला:—"हे सुन्दरी ! मैं बहुत दिनोंतक तुझसे अनुनय विनय करता रहा; परन्तु तूने उपेक्षा की । अब मैं नियमभंगका भय छोड़, राम और लक्ष्मणको मार, तेरे साथ जबर्दस्तीसे क्रीडा करूँगा ।"

रावणकी विषमय बातें सुन, रावणकी आशाकी तरह ही जानकी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर गई । थोड़ी वारमें

उनको चेत हुआ । उस समय उन्होंने नियम लिया कि–जिस समय मुझे राम और लक्ष्मणके मृत्यु-समाचार मिलें उसी समयसे मेरे ‘ अनशन ’ व्रत होवे ।

सीताका नियम सुनकर रावण चमका । वह सोचने लगा—“ रामके साथ इसका स्वाभाविक प्रेम है अतः इसके साथ अनुराग करनेकी इच्छा रखना । सूखी भूमिमें कमल उगानेकी इच्छाके समान व्यर्थ है । मैंने यह अच्छा नहीं किया कि–विभीषणके कथनकी अवज्ञा की । अफसोस! मैंने अपने कुलको कलंकित किया और नेक सलाह देने-वाले मंत्रियोंका अपमान किया । मगर अब क्या करूँ ? इस समय सीताको छोड़ देनेसे तो अपयश होगा । लोग कहेंगे कि–रामसे डरकर रावणने सीताको छोड़ दिया है । बहतर यह होगा कि–राम और लक्ष्मणको यहाँ पर पकड़ लाऊँ और फिर सीताको उनके सिपुर्द कर उन्हें छोड़ दूँ । इससे संसारमें मेरा यश होगा और मैं धर्मात्मा समझा जाऊँगा । ” इस भाँति सोचता हुआ रावण अपने महलमें गया । नाना भाँतिके विचारोंमें उसने रात बिताई ।

प्रातःकाल होते ही रावण युद्ध करनेके लिए रवाना हुआ । चलते समय उसको अनेक अपशकुन हुए; परन्तु उसने किसीकी भी परवाह नहीं की । राम और रावणकी सेनाके बीचमें फिरसे युद्ध आरंभ हुआ । सुभटोंकी हुंकारसे, और उनके ताल ठोकनेसे दिग्गज काँप उठे ।

रूईको जिस तरह वायु उड़ा देता है, उसी तरह राक्षस वीरोंको मार्गमेंसे हटाकर लक्ष्मण रावणपर बाणवर्षा करने लगे। लक्ष्मणका पराक्रम देखकर, रावणको अपनी विजयमें शंका होने लगी। इससे उसने, जगतके लिए भयंकर बहुरूपिणी विद्याको स्मरण किया। स्मरण करते ही विद्या आ उपस्थित हुई। उसके द्वारा रावणने अनेक भयंकर रूप बनाये। लक्ष्मणने, भूमिपर, आकाशमें, बगलोंमें और आगे पीछे शस्त्र वर्षा करते हुए अनेक रावण देखे। लक्ष्मण एक ही थे तो भी गरुडपर बैठकर शीघ्रता पूर्वक बाण चलाते हुए, वे ऐसे जान पड़ते थे कि—रावणके जितने ही लक्ष्मण भी हैं। वे अनेक रावणोंका संहार करने लगे। वासुदेव लक्ष्मणके बाणोंसे रावण घबरा गया। उसने अर्द्धचक्रीके चिन्ह स्वरूप जाज्वल्यमान चक्रका स्मरण किया। चक्रके प्रकट होते ही। क्रोधारक्त नेत्री रावणने अपने चक्ररूपी अन्तिम शस्त्रको आकाशमें घुमाकर लक्ष्मणके ऊपर छोड़ा। वह चक्र लक्ष्मणके प्रदक्षिणा देकर उनके दाहिने हाथमें आगया; जैसे कि उदयगिरिके शिखरपर सूर्य आ जाता है।

इस दशाको देखकर रावण दुःखी हो, विचार करने लगा, मुनिका वचन सत्य हुआ। विभीषण आदिका निर्णय भी ठीक निकला। रावणको दुखी देखकर, विभीषणनें कहाः—"हे भ्राता! यदि जीवनकी इच्छा हो तो

अब भी सीताको छोड़ दो। " रावणने क्रोधसे कहाः— "मुझे उस चक्रकी क्या आवश्यकता है ? मैं सिर्फ एक मुक्के से शत्रुओंको और चक्रको चूर चूर कर दूँगा। "

इस भाँति गर्व युक्त बोलते हुए रावणकी छातीमें लक्ष्मणने चक्रका प्रहार किया। चक्रने कूष्माण्ड—पेठेकी भाँति रावणके हृदयको चीर दिया। उस दिन ज्येष्ठ कृष्ण एकादशीका दिन था। रावण हृदय फट जानेसे मरकर, चौथे नरकमें गया। देवताओंने आकाशसे, जय जयकार करते हुए, लक्ष्मणपर फूलोंकी वर्षा की। वानरसेना हर्षोन्मत्त होकर नृत्य करने लगी। उनकी किलकारियोंके शब्दसे पृथ्वी और आकाश भर गये।

आठवाँ सर्ग।

सीताको रामचन्द्रका त्यागना।

कुंभकर्ण और इन्द्रजीतका बंधनमुक्त होना।

रावण मारागया। सारे राक्षस घबरा गये और विचारने लगे कि—"अब भागकर कहाँ जायँ" विभीषण अपने ज्ञाति भाइयोंके स्नेहसे उनके पास गया और उनके भयभीत हृदयोंको उसने इस प्रकारसे आश्वासन दिया:—"हे राक्षस वीरो! ये राम और लक्ष्मण (पद्म और नारायण) आठवें बलदेव और वासुदेव हैं। ये शरण्य हैं—शरण दाता हैं। इस लिए निःशंक होकर इनकी शरणमें आओ।"

विभीषणके वचन सुनकर, सारे राक्षसवीर रामके शरणमें आये। राम और लक्ष्मणने उनको उदार आश्रय दिया।

'........ वीरा हि, प्रजासु समदृष्टयः।'

(वीर पुरुष प्रजाके ऊपर समान दृष्टि रखनेवाले होते हैं।) विभीषणको अपने भ्राता रावणकी मृत्युसे अत्यंत शोक हुआ। "हा भ्रात! हा बन्धु!" ऐसे कहता हुआ वह उच्च और करुण स्वरमें रुदन करने लगा। मंदोदरी आदि भी वहीं बैठी रुदनकर रही थीं। बन्धु वियोगके

जीवनसे मृत्युको अच्छा समझ, मरनेका संकल्पकर, विभीषणने कमरसे कटार निकालकर पेटमें घौंसना चाहा। रामने तत्काल ही उसको पकड़ लिया और समझाया:—"हे वीभीषण! वीरोचित रणस्थलमें वीरगतिको पाये हुए अपने बन्धु रावणके लिए वृथा चिन्ता न करो। जिस वीरसे युद्ध करनेमें देवता भी शंका करते थे, वह वीर आज अपनी वीरता दिखा, अपनी कीर्ति स्थापनकर, वीर गतिको पाया है। ऐसे बन्धुके लिए शोक किस कामका है? अतः अब रोना छोड़ो और रावणकी मृत्युाक्रियाएँ करो।"

तत्पश्चात महात्मा पद्मनाभने–रामने–कुंभकर्ण, इन्द्रजीत और मेघवाहन आदि, कैदमें, पड़े हुए राक्षस वीरोंको छोड़ दिया।

फिर कुंभकरण, विभीषण, इन्द्रजीत मेघवाहन, मंदोदरी आदि संबंधियोंने एकत्रित होकर, अश्रुपात करते हुए गोशीर्ष चंदनकी, रावणके लिए, चिता तैयार की, और कपूर व अगरु मिश्रित प्रज्वलित अग्निसे रावणके शरीरका अग्निसंस्कार किया।

रामने भी पद्मसरोवरमें जाकर स्नान किया और अपने उष्ण जलद्वारा रावणको जलांजुली समर्पण की।

राम और लक्ष्मणने मधुर शब्दोंद्वारा–जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो अमृत बरस रहा है–कुंभकर्णादिको कहा:—

" हे वीरो ! पूर्वकी भाँति ही तुम अपना राज्य करो। तुम्हारी लक्ष्मीकी हमें इच्छा नहीं है । हम तुम्हारा कल्याण चाहते हैं । "

राम, लक्ष्मणके वचन सुन, शोक और विस्मयसे गद्गद कंठ हो कुंभकर्णादिने कहाः—" हे महा भुज ! हे वीर ! हमें इस विशाल पार्थिव राज्यकी कुछ जरूरत नहीं है। हम तो अब मोक्षका साम्राज्य दिलानेवाली दीक्षाको ग्रहण करेंगे । "

इन्द्रजीत और मेघवाहनका पूर्व भव ।

उन दिनों कुसुमायुध उद्यानमें चार ज्ञानके धारी अप्रमेयबल नामा मुनि आये हुए थे । उनको उसी जगह रावणकी मृत्युवाली रात्रिको केवलज्ञान हुआ था । देवताओंने आकर उनका केवलज्ञान महोत्सव किया । सवेरे ही राम, लक्ष्मण, कुंभकर्ण, इन्द्रजीत आदि मुनिको वंदना करने गये। वंदना करके उन्होंने धर्मोपदेश सुना। देशना—व्याख्यान—सुनकर, इन्द्रजीत और मेघवाहनको परम वैराग्य उत्पन्न हो गया । उन्होंने अन्तमें विनय पूर्वक मुनिसे अपने पूर्व भव पूछे ।

मुनिने कहाः—" इसी भरत क्षेत्रमें कोशांबी नामा नगर है । उसमें तुम एक गरीबके घर, बन्धुरूपसे जन्मे थे । तुम्हारा नाम, प्रथम और पश्चिम था । एकवार तुमने भवदत्त मुनिके पाससे धर्मसुनकर, व्रत ग्रहण किया ।

शांत कषायी बनकर, तुम विचरण करने लगे। कुछ काल बाद तुम दोनों-मुनि-फिरते हुए पुनः कोशांबीमें आये। वहाँ उन्होंने वसंतोत्सवमें नंदिघोष राजाको अपनी रानी इन्दुमतीके साथ क्रीडा करते देखा। उन्हें देखकर, पश्चिम मुनिने नियाणा किया—'मेरी तपस्याका यह फल होकि मैं इस प्रकारसे क्रीडा करनेवाले राजाके घर जन्म लेऊँ।' दूसरे साधुने बहुत कुछ समझाया मगर पश्चिम मुनिने उनकी बात नहीं मानी।

समयपर मरकर, पश्चिम मुनि इन्दुमतीके गर्भसे पुत्र-रूपमें पैदा हुए। उनका नाम रतिवर्द्धन हुआ। अनुक्रमसे युवक होनेपर रतिवर्द्धनको राज्यासन मिला। वह अनेक रमणियोंसे वेष्टित होकर अपने पिताहीकी भाँति विविध प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगा।

प्रथम नामके मुनि विविध भाँतिके तपकर, नियाणा रहित मर, पाँचवें कल्पमें परमर्द्धिक देव हुए। अवधि-ज्ञानसे उन्होंने अपने भाई पश्चिमको कोशांबी नगरीमें राज्य और क्रीडा करते जाना, इस लिए उसको उपदेश देनेके लिए वे मुनिका रूप धरकर, वहाँ गये। रतिवर्द्धन राजाने उन्हें आसन दिया। उन्होंने बन्धु स्नेहके वशमें होकर, उसका और अपना पूर्व भव कह सुनाया। सुनकर रति-वर्द्धनको जातिस्मरण ज्ञान हो आया; उसने संसारसे विरक्त होकर दीक्षा ले ली। मरकर वह भी ब्रह्मलोकमें देवता

हुआ। वहाँसे चवकर तुम दोनों भाई रूपसे ही, महा विदेह क्षेत्रमें विबुध नगरमें राजाके घर जन्मे। वहाँसे दीक्षा ले, तपकर, मृत्यु पा, अच्युत देवलोकमें गये। वहाँसे चवकर, प्रति वासुदेव रावणके तुम दोनों, इन्द्रजीत और मेघवाहन नामा दो पुत्र हुए हो। रतिवर्द्धनकी माता इन्दुमती भव भ्रमण करके, तुम दोनोंकी माता यह मंदोदरी हुई है।"

इस प्रकार वृत्तान्त सुनकर, कुंभकर्ण, इन्द्रजीत, मेघवाहन और मंदोदरी आदिने व्रत ग्रहणकर लिया।

सीता और रामका मिलन।

तत्पश्चात रामने मुनिको नमस्कार कर, बड़ी धूमधामके साथ इन्द्रकी तरह लक्ष्मण और सुग्रीव सहित लंकामें प्रवेश किया। उस समय विभीषण छड़ीदारकी तरह आगे चलता हुआ रामको मार्ग दिखाता जा रहा था। विद्याधरियोंकी स्त्रियाँ रामकी मंगल-वंदना करती थीं। अनुक्रमसे वे पुष्पगिरिके शिखरस्थ उद्यानमें पहुँचे। वहाँपर रामने सीताको उसी स्थितिमें देखा, जिसका कि हनुमानने वर्णन किया था।

उस समयमें ही रामने समझा कि उनका आत्मा अब-तक जीवित है। रामने सीताको, अपने द्वितीयजीवनकी तरह, अपनी गोदमें बिठा लिया। देवताओं और गंधर्वोंने

आकाशमेंसे आनन्दित होकर, हर्षनाद किया–'महासती सीताकी जय हो' हर्षाश्रु जलसे सीताके चरणको धोते हुए लक्ष्मणने उनके चरणोंमें नमस्कार किया। सीताने लक्ष्मणका मस्तक सूँघा और आशीर्वाद दियाः—"चिर-जीवी होओ, चिरानंदी बनो और सदा विजयी रहो।" फिर भामंडलने उनको नमस्कार किया। उसको भी उन्होंने मुनिवाक्यकी भाँति अनिष्फल आशीर्वाद देकर संतुष्ट किया। उसके बाद सुग्रीव, विभीषण अंगद आदि अपने नाम बता बताकर सीताको क्रमशः नमस्कार करने लगे।

चिरकालके बाद चंद्रप्रकाश पाकर विकसी हुई कम-लिनीकी भाँति सीता रामके उत्संगमें सुशोभित होने लगी।

राम सीता सहित भुवनालंकार हाथीपर बैठ कर राव-णके महलोंमें गये। सुग्रीवादि वानर वीर और विभीषणादि राक्षस वीर भी उनके हाथीके साथ ही थे। रामने हजारों मणि स्तंभवाले श्री शांतिनाथ प्रभुके चैत्यमें, वंदना कर-नेकी इच्छासे, प्रवेश किया। विभीषणने पुष्पादि सामग्री दी। उससे रामने सीता और लक्ष्मण सहित भगवानकी पूजा की।

रामका विभीषणको राज्य देना।

विभीषणके प्रार्थना करनेपर राम, सीता लक्ष्मण और सुग्रीवादि वानर वीरों सहित विभीषणके घर गये। विभी-

षणका मान रखनेके लिए वहाँ उन्होंने सारे परिवार सहित देवार्चन, स्नान और भोजन किया।

तत्पश्चात विभीषणने रामको सिंहासन पर बिठा, दो वस्त्र पहिन, हाथ जोड़, कहाः—"हे स्वामिन्! ये रत्न-स्वर्णादिके भंडार, यह चतुरंगिणी सेना और यह राक्षस द्वीप आप ग्रहण कीजिए। मैं आपका एक सेवक हूँ। आपकी आज्ञासे हम आपको राज्याभिषेक करना चाहते हैं। इस लिए हमें आज्ञा देकर, लंकापुरीको पवित्र और हमें अनुगृहीत कीजिए।"

रामने उत्तर दियाः—"हे महात्मा! लंकाका राज्य मैंने तुमको पहिलेहीसे दे दिया है। अब भक्तिके वशमें होकर, वह बात कैसे भूल गये हो?" इस तरह विभीषणकी प्रार्थनाको अमान्य कर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवाले रामने उसी समय प्रसन्नतापूर्वक, विभीषणका लंकाकी राज्य गद्दीपर अभिषेक किया। तत्पश्चात इन्द्र-जैसे सुधर्मा सभामें आता है वैसे ही राम सीता, लक्ष्मण और सुग्रीवादि सहित रावणके महलमें गये।

× × × ×

तत्पश्चात राम और लक्ष्मणने पहिले सिंहोदर आदिकी जिन कन्याओंके साथ ब्याह करना स्वीकार किया था, उनको विद्याधरोंके द्वारा लंकामें बुलाया और अपनी अपनी प्रति-

ज्ञाके अनुसार दोनोंने भिन्न भिन्न कन्याओंका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया । खेचरियोंने मंगल गीत गाये । सुग्रीव विभीषणादि सेवित राम लक्ष्मणने छः बरस आनंदके साथ लंकामें, सुखोपभोग करते हुए निकाले । उस समय विंध्यस्थलीपर इन्द्रजीत और मेघवाहन सिद्धिपद पाये, इसलिए वहाँ पर मेघरथ नामका तीर्थ हुआ, और नर्मदा-नदीमें कुंभकर्ण सिद्धिपद पाये इसलिए वहाँ पृष्ठरक्षित नामा तीर्थ हुआ ।

राम, लक्ष्मणका अयोध्या आगमन ।

उधर राम, लक्ष्मणकी माताओंको अपने पुत्रोंके कुछ भी समाचार नहीं मिले इसलिए वे सदा चिन्ता-पीडित-हृदय होकर रहती थीं । एक वार धातकी खंडमेंसे नारद मुनि वहाँ जा पहुँचे । रानियोंने भक्तिपूर्वक उनका आदर सत्कार किया । नारदने उनको, चिन्तित देख कर, चिन्ताका कारण पूछा । अपराजिताने उत्तर दियाः—"मेरे पुत्र राम और लक्ष्मण पुत्रवधू सीता सहित, पिताकी आज्ञासे वनमें गये । वहाँसे रावण सीताको हर कर ले गया । इस-लिए राम लक्ष्मण लंकामें गये वहाँपर युद्धमें लक्ष्मणके शक्ति लगी । लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये । शक्तिके शल्यको दूर करनेके लिए, रामके योद्धा विशल्याको लंकामें ले गये । आगे क्या हुआ सो हमें मालूम नहीं है । न जाने लक्ष्मण जीवित हुआ या नहीं ?"

इतना कह अपराजिता हा वत्स! हा वत्स! कर, करुण स्वरमें रुदन करने लगी। सुमित्रा भी रोने लगी। नारदने उनको ढारस बँधाते हुए कहाः—"दुखी मत होओ। मैं रामके पास जाकर उनको यहाँ पर ले आऊँगा।"

इस तरह उनको ढारस बँधाकर, नारद आकाशमार्गसे लंकामें रामके पास गये। रामने सत्कारपूर्वक उनको आसन देकर आगमनका कारण पूछा। नारदने उनकी माताओंका सारा दुःख कह सुनाया। सुनकर राम भी दुखी हुए। फिर उन्होंने विभीषणको कहाः—"हम तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर बहुत दिनोंतक तुम्हारे अतिथि रहे। मगर अब तुम हमें विदा करो ताकी हम अपनी पुत्र वियोगाकुलमाताओंके पास उनके प्राणपखेरु उड़ जायँ इसके पहिले ही जाकर, उनकी पद धूलि अपने मस्तकपर चढ़ावें और उनके व्याकुल हृदयोंको शान्त करें।"

विभीषणने सविनय उत्तर दियाः—"हे स्वामिन्! पन्द्रह दिनतक आप और यहीं रहिए, ताकी इस अवधीमें मैं अयोध्याको, अपने यहाँके कारीगरोंको भेजकर, रमणीय बनवा दूँ।" रामने यह बात स्वीकार की। विभीषणने अपने विद्याधर कारीगरोंको भेज कर, अयोध्याको स्वर्गपुरीके समान सुंदर बना दिया। नारद उसी समय रामसे विदा होकर अयोध्यामें गये और कौशल्या आदिको रामके शीघ्र ही आनेके समाचार सुनाये।

तत्पश्चात सोलहँवें दिन राम, लक्ष्मण अपने अन्तःपुर सहित पुष्पक विमानमें बैठकर अयोध्याकी ओर चले। विमानमें बैठकर जाते हुए, राम और लक्ष्मण ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो शक्रेंद्र और ईशानेंद्र एकत्रित होकर जा रहे हैं।

विभीषण, सुग्रीव, भामंडल आदि राजाओंसे वेष्टित राम थोड़े ही समयमें अयोध्याके निकट पहुँच गये। अपने ज्येष्ठ बन्धुओंको पुष्पक विमानमें बैठकर आते देख, भरत शत्रुघ्न सहित गजेंद्र पर बैठकर, उनका स्वागत करनेके लिए सामने गया। भरतको निकट आये देखकर रामकी आज्ञासे पुष्पक विमान पृथ्वीपर आगया, जैसे कि इन्द्रकी आज्ञासे पालक विमान आया करता है। भरत, शत्रुघ्न हाथीपरसे उतरकर, पाप्यादे रामके पास जाने लगे। अनुजोंसे मिलनेके उत्सुक राम, लक्ष्मण भी विमानमेंसे उतर पड़े।

भरत और शत्रुघ्न जाकर रामके चरणोंमें गिरपड़े। दोनोंने साष्टांग नमस्कार किया। प्रेमाश्रुसे उनके नेत्र भर गये। रामने उनको उठाया, गले लगाया, उनके सिरको चूमा और उनके देहकी धूलिको झाड़ा। फिर दोनोंने लक्ष्मणके चरणोंमें नमस्कार किया। लक्ष्मणने भुजाएँ प्रसारकर उनको आलिंगन दिया।

तत्पश्चात राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न पुष्पक विमान में बैठे। रामने पुष्पक विमानको शीघ्रता पूर्वक अयोध्यामें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा सुनकर पुष्पक विमान रामको बन्धुओं सहित अयोध्यामें ले चला। आकाशमें और पृथ्वीमें बाजे बजने लगे। मेघको मयूर देखता है, वैसे अनिमिष नयनसे पुरवासी राम, लक्ष्मणको देखने लगे और उनकी स्तुति करने लगे। प्रसन्न वदन राम लक्ष्मणको लोग सूर्यकी भाँति अर्घ्य अर्पण करते थे। वे उनका स्वीकार करते हुए क्रमशः महलके पास पहुँचे।

सुहृदजनोंके हृदयोंको सुख देनेवाले राम, लक्ष्मण सहित पुष्पक विमानमेंसे उतरकर माताओंके महलमें गये। दोनों भाइयोंने देवी अपराजिताको और अन्य माताओंको प्रणाम किया। माताओंने उनको आशीर्वाद दिया। फिर सीता विशल्या आदिने अपनी सासुओंको, चरणोंमें शिर रखकर, नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद दियाः— "हमारा आशीर्वाद है कि–तुम भी हमारी ही भाँति वीर पुत्रोंको जन्म देनेवाली बनो।"

अपराजिता देवी बारबार लक्ष्मणके सिरपर हाथ फेरती हुई बोलीः—"हे वत्स! मुझे सद्भाग्यसे तुम्हारे दर्शन हुए हैं। मैं तो यह समझती हूँ कि तुमने इसी समय पुनर्जन्म लिया है; क्यों कि–तुम विदेश गमनकर, मृत्यु-मुखमें जा, फिर विजय करके यहाँ आये हो। राम और

सीता तुम्हारी सेवाके कारण ही वनमें उस भाँतिके कष्टोंको सहन कर सके थे।"

लक्ष्मण सविनय बोलेः—"हे माता! वनमें आर्यबन्धु राम पिताके समान और सीता आपकी तरह मेरा लालन पालन करते थे, इस लिए मैं तो वनमें भी बड़े सुखसे दिन निकालता था। मगर मेरी स्वेच्छाचारी दुर्ललित–दुर्चेष्टाओंसे ही आर्यबन्धु रामकी लोगोंसे शत्रुता हुई, और उसीसे देवी सीताका हरण हुआ। उसके लिए मैं अब विशेष क्या कहूँ? (राम और सीताके ऊपर इतनी आपत्तियाँ आईं उन सबका कारण मैं ही हूँ।) परन्तु हे माता! आपके आशीर्वादसे भद्र राम अब शत्रु सागरको लाँघ कर, परिवारके साथ सकुशल यहाँ आ पहुचे हैं।"

तत्पश्चात एक प्यादेकी तरह रामके पास रहनेकी इच्छा रखनेवाले भरतने शहरमें बड़ा भारी उत्सव कराया।

भरतके हृदयमें दीक्षाकी प्रबल इच्छा होना।

एक दिन भरतने रामको प्रणाम करके कहाः—"हे आर्य! आपकी आज्ञासे मैंने इतने समय तक राज्य किया; अब आप इसको ग्रहण कीजिए। इस राज्य करनेके लिए यदि आपकी आज्ञासे मैं विवश न होगया होता तो, मैं उसी समय पिताजीके साथ दीक्षा ले लेता। मेरा हृदय संसारसे बहुत ही उद्विग्न हो रहा है। अतः अब

आप आ ही गये हैं, इस लिए इस राज्यको ग्रहण कीजिए। मेरा मन अब इस राज्यको नहीं चाहता है।"

रामने साश्रुनयन उत्तर दियाः—"हे वत्स ! तुम यह क्या कह रहे हो ? हम यहाँ तुम्हारे बुलानेसे आये हैं। तुम जैसे अब तक राज्य करते आये हो, उसी तरह राज्य करो। राज्य सहित हमें छोड़कर विना कारण विरह-व्यथा क्यों पहुँचाते हो ? प्रथमकी भाँति ही मेरी आज्ञाका पालन करो और राज्य चलाओ।" रामको इस भाँति आग्रह करते हुए देख, भरत वहाँसे उठकर जाने लगे। लक्ष्मणने उनको फिरसे, हाथ पकड़कर, बिठा लिया। भरतको व्रतका निश्चय करके आया हुआ जान, सीता विशल्या आदि ससंभ्रम हो वहाँ आई और उन्होंने भरतसे व्रतका आग्रह भुलानेके हेतु—जलक्रीडा करनेके लिए चलनेका अनुरोध किया। भरतको, उनका अत्यंत आग्रह देखकर, अनुरोध स्वीकार करना पड़ा।

रामके हाथी भुवनालंकार और भरतका पूर्वभव।

इच्छा न रहने पर भी भरत, अपने अन्तःपुर सहित जलक्रीडा करनेको गये। विरक्त हृदयके साथ उन्होंने एक मुहूर्त पर्यन्त क्रीडा की। फिर राजहंसकी भाँति निकल कर, भरत सरोवरके तीरपर आये। उसी समय, स्तंभको उखाड़कर, भुवनालंकार नामा हाथी भी वहाँ आया। मदांध होने पर भी वह भरतको देखते ही मद

रहित—शान्त हो गया और भरत भी उसको देख कर, बहुत संतुष्ट हुए ।

उपद्रवकारी हाथीका छूटना सुनकर, राम, लक्ष्मण भी अपने सामन्तों सहित उसको पकड़नेके लिए तत्काल ही वहाँ गये । हाथी पकड़ा गया । रामकी आज्ञासे महावत लोग उसको वापिस अपने ठिकाने पर बाँधनेके लिए ले गये । उसी समय देशभूषण, और कुलभूषण नामके दो केवली मुनियोंके आकर उद्यानमें समोसरनेके समाचार उनको मिले । राम, लक्ष्मण और भरत सपरिवार उनको वंदना करनेके लिए गये ।

वंदना करके बैठने बाद रामने पूछाः—" हे महात्मा ! मेरा भुवनालंकार नामा हाथी भरतको देखते ही मद रहित कैसे हो गया ? "

देशभूषण केवली बोलेः—" पहिले ऋषभदेव भगवानके साथ चार हजार राजाओंने दीक्षा ली थी । पीछे प्रभु जब मौनपूर्वक निराहार ही (शुद्ध आहार पानी न मिलनेसे) रहने लगे और विहार करने लगे, तब वे सब ही खेदित होकर, वनवासी तापस होगये । उनमें प्रहलादन और सुप्रभ राजाके चन्द्रोदय और सुरोदय नामा दो पुत्र भी थे । उन्होंने चिरकाल तक भवभ्रमण किया । अनुक्रमसे चन्द्रोदय गजपुरमें हरिमती राजाकी रानी चंद्र-

लेखाकी कूखसे कुलंकर नामका पुत्र हुआ। सुरोदय भी उसी नगरमें विश्वभूति ब्राह्मणकी स्त्री अग्निकुंडाके गर्भसे जन्मा और श्रुतिरति नामसे प्रसिद्ध हुआ।

कुलंकर राजा हुआ। एक दिन वह तापसके आश्रममें जा रहा था; उसको अभिनंदन नामके अवधिज्ञानी मुनिने कहाः—" हे राजा! तू जिसके पास जा रहा है, वह तापस पंचाग्नि तप करता है। तप करनेके लिये लाये हुए लक्कड़ोंमें एक सर्प है। वह सर्प पूर्वभवमें क्षेमकर नामा तेरा पितामह था; इस लिए काष्ठको बड़ी सावधानीसे फड़वाकर, उस सर्पकी रक्षा कर।"

मुनिके वचन सुनकर, राजा व्याकुल हो गया। तत्काल उसने वहाँ जाकर लक्कड़ फड़वाया। मुनिके कथनानुसार उसमें सर्पको देखकर, उसे बहुत विस्मय हुआ। कुलंकर राजाको दीक्षा लेनेकी इच्छा हो आई। उसी समय श्रुतिरति ब्राह्मण वहाँ आया और कहने लगाः—" यह तुम्हारा धर्म आम्नाय रहित नहीं है; तो भी यदि तुम्हारी दीक्षा लेने ही की इच्छा हो, तो अपनी अन्तिम आयुमें लेना। इस समय किस लिए दुखी होते हो?"

श्रुतिरतिकी बात सुनकर, राजाका, दीक्षा लेनेका, उत्साह भग्न हो गया। वह किंकर्तव्य विमूढकी भाँति विचार करता हुआ संसारहीमें रहा। उसके श्रीदामा नामकी एक

रानी थी । वह श्रुतिरति पुरोहित पर आसक्त थी । एक बार उस दुर्मति रानीको शंका हुई कि–राजाको मेरा और श्रुतिरतिका संबंध ज्ञात होगया है । इस शंकाको उसने सत्य समझा । उसने सोचा–राजा नाराज होकर, हमें मार डालेगा; इस लिए वह हमें मारे उसके पहिले ही उसको मार देना उत्तम है । फिर श्रीदामाने श्रुतिरतिकी सलाह लेकर, अपने पति कुलंकरको मार डाला । कुछ काल बाद श्रुतिरति भी मर गया । चिरकालतक नाना भाँतिकी योनियोंमें गिरकर, दोनों संसारमें भ्रमण करते रहे ।

कितना ही काल बीत गया । फिर वे दोनों राजगृह नगरमें कपिल नामा ब्राह्मणकी स्त्री सावित्री की कूखसे युग्म सन्तान–पुत्र-रूपसे उत्पन्न हुए । उनका नाम विनोद और रमण हुआ । रमण वेदाध्ययन करनेके लिए देशान्तरमें गया । कुछ कालके बाद वह वेदाध्ययन करके वापिस आया । जब वह राजगृह नगरमें प्रवेश करना चाहता था, उस समय रात बहुत चली गई थी । इसलिए उसको, अकालमें आया समझ, दर्बानने शहरमें नहीं घुसने दिया । अतः सर्वसाधारणके काममें आने योग्य, वहाँ एक यक्षका मंदिर था उसमें जाकर, वह रात्रि निर्गमन करनेके लिए, रहा ।

उसी समय विनोदकी स्त्री शाखा, दत्तके साथ जार कर्म करनेका संकेत कर, उसी मंदिरमें आई । दत्त नहीं आया

था। उसने रमणको ही दत्त समझा और उसको जगा कर उसके साथ संभोग किया। उसके पीछे ही शाखाका पति विनोद भी आया। उसने रमणको मार डाला। शाखाने रमणकी छुरीसे विनोदको भी मार डाला।

वे दोनों फिरसे चिरकालतक भवभ्रमण करते रहे। फिर, विनोद एक धनाढ्य वणिकका धन नामा पुत्र हुआ। रमण भी उसी धन नामा सेठकी स्त्री लक्ष्मीकी कूखसे भूषण नामा पुत्र हुआ। उसको बत्तीस श्रेष्ठी–कन्याएँ ब्याही गईं। वह उनके साथ आनंदसे सुखोपभोग करने लगा। एक दिन रात्रिके चौथे प्रहरमें वह अपने मकानकी छतपर बैठा हुआ था; उसी समय श्रीधर नामा मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवताओंने मुनिका केवलज्ञान महोत्सव प्रारंभ किया। उसने महोत्सवको देखा। उसको देखकर, भूषणके हृदयमें धर्मभाव जागृत हो आये। वह उसी समय उतरकर, मुनिको वंदना करनेके लिए गया। मार्गमें जाते हुए, सर्पने काट खाया। शुभ परिणामों सहित उसकी मृत्यु हुई। चिरकालतक शुभ गतियोंमें भ्रमण करता रहा। फिर वह जंबूद्वीपके अपर विदेह क्षेत्रके रत्नपुर नगरमें अचल नामा चक्रवर्तीकी स्त्री हरिणीके गर्भसे पुत्र होकर जन्मा। प्रियदर्शन उसका नाम हुआ। धर्ममें उसकी बहुत अभिरुचि थी। बचपनहीसे वह दीक्षा लेना चाहता था, मगर पिताके आग्रहसे तीन हजार कन्याओंके साथ उसने

ब्याह किया। सुखोपभोग करता हुआ भी वह संवेग भावोंमें रहता था। वह गृहवासहीमें चौसठ हजार वर्ष पर्यंत धर्माचरण कर मरा और ब्रह्मलोकमें जाकर देवता हुआ।

'धन' संसारमें भ्रमणकर, पोतनपुरमें अग्निमुख नामा ब्राह्मणकी भार्या शकुन्तके गर्भसे मृदुमति नामा पुत्र हुआ। बहुत अविनीत था इस लिए पिताने उसको घरसे निकाल दिया। वह इधर उधर भटकने लगा, और अवसर आनेपर कलाएँ भी सीखने लगा। इस तरह वह सब कलाओंमें पूर्ण और पक्का धूर्त होकर वापिस अपने घर लौटा। देवद्यूत खेलनेमें वह कभी किसीसे नहीं हारता था; इस लिए उसने द्यूतमें बहुतसा धन जमा कर लिया। वसंतसेना वेश्याके साथमें भोग विलास कर. वह अन्तमें दीक्षित हुआ; और मरकर वह भी ब्रह्मलोकमें देवता हुआ। वहाँसे चवकर, पूर्वभवके कपट दोषके कारण वह वैताढ्य गिरिपर हाथी हुआ। वही यह भुवनालंकार है। प्रियदर्शनका जीव ब्रह्मलोकसे चवकर, यह तुम्हारा भाई पराक्रमी भरत हुआ। भरतके दर्शनसे भुवनालंकारको जातिस्मरण हो आया इसलिए वह तत्काल ही मदरहित हो गया। क्योंकि—

"विवेके हि न रौद्रता।"

(विवेक उत्पन्न होनेपर रौद्रता—उग्रता—नहीं रहती है।)"

इस भाँति अपना पूर्वभव सुनकर भरतके हृदयमें अधिक वैराग्य उत्पन्न होगया। उन्होंने एक हजार राजाओंके साथमें दीक्षा लेली और तपकर मोक्षमें गये। दूसरे राजा भी चिरकाल तक व्रतका पालन कर, नाना प्रकारकी लब्धियाँ पा, अन्तमें भरतके समान पद पर पहुँचे—मोक्षमें गये। भुवनालंकार हाथी भी वैराग्य पूर्वक विविध प्रकारके तप कर, अन्तमें अनशन धारण कर, मरा और ब्रह्मलोकमें जाकर देवता हुआ। भरतकी माता कैकेयी भी व्रत ग्रहण कर, उसको निष्कलंक रीतिसे पाल, मोक्षमें गई।

भरतने दीक्षा ले ली, तब अनेक राजाओंने, खेचरोंने और प्रजाने भक्तिपूर्वक रामसे राज्यासन ग्रहण करनेके लिए कहा। रामने कहा:—"लक्ष्मण वासुदेव है, इस लिए इसको राज्याभिषेक करो।" ऐसा ही किया गया। राम पर भी बलदेवपनका अभिषेक किया गया। आठवें बलदेव और वासुदेव तीन खंड भरतका राज्य करने लगे।

रामने विभीषणको राक्षस द्वीप, सुग्रीवको कपिद्वीप, हनुमानको श्रीपुर विराधको पाताललंका, नीलको ऋक्षपुर प्रतिसूर्यको हनुपुर, रत्नजटीको देवोपगीत नगर और भामंडलको वैताढ्य गिरिपरका रथनुपुर नगर, जहाँ उनकी क्रमागत राजधानी थी दिये। दूसरोंको भी भिन्न भिन्न राज्य दिये।

शत्रुघ्नका मथुराको जाना।

तत्पश्चात रामने शत्रुघ्नसे कहाः—"हे वत्स ! जो देश तुझको पसंद हो, वह स्वीकार कर।" शत्रुघ्नने कहाः—"हे आर्य ! मुझको मथुराका राज्य दीजिए।" रामने उत्तर दियाः—"हे वत्स। मथुराका राज्य लेना दुस्साध्य है; क्योंकि वहाँ मधु नामा राजा राज्य करता है। उसको चमरेन्द्रने पहिले एक त्रिशूल दिया था। उसमें यह गुण है कि वह दूरसे ही शत्रुओंका संहारकर वापिस मधुके हाथमें आ जाता है।"

शत्रुघ्नने कहाः—"हे देव ! जब आप राक्षस कुल नाश कर सकते हैं, तब मैं आपका छोटा भाई होकर क्या मधुको भी परास्त न कर सकूँगा ? करसकूँगा। अतः आप मुझे मथुराका राज्य दीजिए। मैं स्वयमेव मधुराजाका उपाय करलूँगा; जैसे कि—एक उत्तम वैद्य व्याधिका उपाय कर लेता है।"

रामने शत्रुघ्नका बहुत आग्रह देखकर, उनको मथुरा जानेकी अनुमति दी और कहाः—"बन्धु ! जब मधु त्रिशूल रहित होकर, प्रमादमें पड़ा हुआ हो, उस समय उसके साथ युद्ध करना।" फिर रामने शत्रुघ्नको अक्षय बाणवाले दो तरकस दिये और कृतान्तवदन नामा सेनापतिको भी साथमें दिया। परम विजयकी आशा रखनेवाले लक्ष्मणने भी अग्निमुख बाण और अपना अर्णवावर्त धनुष दिया।

शत्रुघ्न रवाना होकर, कुछ दिनकी सफरके बाद, मथुराके पास पहुँचे। नदीके किनारे अपने डेरे डाले। खबर करनेके लिए उन्होंने गुप्तचरोंको भेजा। उन्होंने वापिस आकर, कहाः—"मथुराके पूर्वमें एक कुबेरोद्यान नामा उद्यान है। मधु राजा इस समय वहाँ गया हुआ है; और अपनी जयंती रानीके साथ क्रीडा कर रहा है। उसका त्रिशूल इस समय शस्त्रागारमें है। इस लिए उसके साथ युद्ध करनेका यही समय अच्छा है।

मथुरापति मधुकी मृत्यु।

तत्पश्चात छलके जाननेवाले शत्रुघ्नने, रात्रिको मथुरामें प्रवेश किया और उद्यानमेंसे लौटते हुए मधुका, अपनी सेनाद्वारा, मार्ग रोका। रण आरंभ हुआ। राम रावणके युद्धमें लक्ष्मणने जैसे पहिले खरको मारा था उसी तरह, शत्रुघ्नने मधुके पुत्र लवणको मार डाला। महारथी-श्रेष्ठ मधु पुत्रके वधसे क्रोधित होकर धनुषका आस्फालन करता हुआ शत्रुघ्नसे युद्ध करनेको आगे बढ़ा। युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों शस्त्र चलाते थे और परस्परमें शस्त्रोंको काट देते थे। दोनोंमें, देव और दैत्यकी भाँति बहुत समय तक शस्त्रयुद्ध होता रहा। दशरथके चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्नने लक्ष्मणके दिये हुए, समुद्रावर्त धनुषका और अग्निमुख बाणोंका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे उनको प्राप्त होगये। धनुष चढ़ाकर, अग्निमुख बाणोंद्वारा शत्रुघ्न शत्रुपर

प्रहार करने लगा। जैसे कि शिकारी सिंहपर करता है। बाणोंके आघातसे व्याकुल होकर, मधु विचार करने लगाः—"इस समय त्रिशूल मेरे हाथमें न आया इससे मैं शत्रुको न मार सका। न मैंने श्रीजिनेन्द्रकी पूजा ही की, न चैत्य ही बनवाये और न दान पुण्य ही किया, इससे मेरा जन्म वृथा ही चला गया।" इस प्रकार विचार करता हुआ मधु-भावचारित्र अंगीकार कर, नवकारमंत्रका स्मरण करता हुआ-मृत्यु पाया और सनत्कुमार देवलोकमें जाकर, महर्द्धिक देवता हुआ। उस समय मधुके शरीरपर उसके विमानवासी देवोंने पुष्प-वृष्टि कर 'मधुदेव जय पाओ' का जयघोष किया।

शत्रुघ्नका पूर्वभव।

देवतारूपी त्रिशूल चमरेंद्रके पास गया और मधुको शत्रुघ्नने छलसे मारा है, यह हाल कह सुनाया। अपने मित्रवधके समाचार सुनकर, चमरेंद्र शत्रुको मारनेके लिए चला। वेणुदारी नामा गरुडपतिने उससे पूछाः—"तुम कहाँ जाते हो?" उसने उत्तर दियाः—"मेरे मित्रको मारनेवाले शत्रुघ्नको-जो इस समय मथुरामें रहा हुआ है-मारनेके लिए जाता हूँ।"

वेणुदारी इन्द्र बोलाः—"रावणको धरणेंद्रके पाससे अमोघ विजय शक्ति मिली थी; उस शक्तिको भी उत्कृष्ट पुण्यशाली वासुदेव लक्ष्मणने जीत लिया है; और रावणको

मार डाला है, तो उसके सामने रावणका सेवक मधु तो बिचारा है। उसी लक्ष्मणकी आज्ञासे शत्रुघ्नने रणमें मधुको मारा है।"

चमरेंद्र बोलाः—"अमोघशक्तिको लक्ष्मणने विशल्याके प्रभावसे जीता था; परन्तु विशल्या अब विवाहिता होगई है, इसलिए उसका प्रभाव जाता रहा है। अब वह कुछ नहीं कर सकता है। इसलिए मैं अवश्यमेव जाकर मित्र-हन्ताको मारूँगा।"

इस प्रकार उत्तर देकर, चमरेंद्र क्रोधके साथ शत्रुघ्नके देश मथुरामें गया। उसने शत्रुघ्नके सुशासनमें सबको स्वस्थ देखा। चमरेंद्रने—यह सोचकर कि, स्वस्थ प्रजामें नाना भाँतिके उपद्रव मचाकर, शत्रुको घबरा देना ही उत्तम है—मथुराकी प्रजामें अनेक प्रकारकी व्याधियाँ फैला दीं। कुलदेवताने आकर, शत्रुघ्नको व्याधियाँ फैलनेका कारण बताया। इसलिए शत्रुघ्न राम, लक्ष्मणके पास गया।

उसी समय देशभूषण और कुलभूषण नामा मुनि विहार करते हुए अयोध्यामें आये। राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नने उनके पास जाकर चरण वंदना की। फिर रामने मुनिसे पूछाः—"शत्रुघ्नने मथुरा लेनेका आग्रह क्यों किया?"

देशभूषण मुनि बोलेः—"शत्रुघ्नका जीव अनेक बार मथुरामें उत्पन्न हुआ है। एकवार वह श्रीधर नामा ब्राह्मण

प्रहार करने लगा। जैसे कि शिकारी सिंहपर करता है। बाणोंके आघातसे व्याकुल होकर, मधु विचार करने लगाः—"इस समय त्रिशूल मेरे हाथमें न आया इससे मैं शत्रुको न मार सका। न मैंने श्रीजिनेन्द्रकी पूजा ही की, न चैत्य ही बनवाये और न दान पुण्य ही किया, इससे मेरा जन्म वृथा ही चला गया।" इस प्रकार विचार करता हुआ मधु–भावचारित्र अंगीकार कर, नवकारमंत्रका स्मरण करता हुआ–मृत्यु पाया और सनत्कुमार देवलोकमें जाकर, महर्द्धिक देवता हुआ। उस समय मधुके शरीरपर उसके विमानवासी देवोंने पुष्प–वृष्टि कर 'मधुदेव जय पाओ' का जयघोष किया।

शत्रुघ्नका पूर्वभव।

देवतारूपी त्रिशूल चमरेंद्रके पास गया और मधुको शत्रुघ्नने छलसे मारा है, यह हाल कह सुनाया। अपने मित्रवधके समाचार सुनकर, चमरेंद्र शत्रुको मारनेके लिए चला। वेणुदारी नामा गरुडपतिने उससे पूछाः—"तुम कहाँ जाते हो?" उसने उत्तर दियाः—"मेरे मित्रको मारनेवाले शत्रुघ्नको–जो इस समय मथुरामें रहा हुआ है–मारनेके लिए जाता हूँ।"

वेणुदारी इन्द्र बोलाः—"रावणको धरणेंद्रके पाससे अमोघ विजय शक्ति मिली थी; उस शक्तिको भी उत्कृष्ट पुण्यशाली वासुदेव लक्ष्मणने जीत लिया है; और रावणको

मार डाला है, तो उसके सामने रावणका सेवक मधु तो बिचारा है । उसी लक्ष्मणकी आज्ञासे शत्रुघ्नने रणमें मधुको मारा है ।"

चमरेंद्र बोलाः—"अमोघशक्तिको लक्ष्मणने विशल्याके प्रभावसे जीता था; परन्तु विशल्या अब विवाहिता होगई है, इसलिए उसका प्रभाव जाता रहा है । अब वह कुछ नहीं कर सकता है । इसलिए मैं अवश्यमेव जाकर मित्र-हन्ताको मारूँगा ।"

इस प्रकार उत्तर देकर, चमरेंद्र क्रोधके साथ शत्रुघ्नके देश मथुरामें गया । उसने शत्रुघ्नके सुशासनमें सबको स्वस्थ देखा । चमरेंद्रने—यह सोचकर कि, स्वस्थ प्रजामें नाना भाँतिके उपद्रव मचाकर, शत्रुको घबरा देना ही उत्तम है—मथुराकी प्रजामें अनेक प्रकारकी व्याधियाँ फैला दीं । कुलदेवताने आकर, शत्रुघ्नको व्याधियाँ फैलनेका कारण बताया । इसलिए शत्रुघ्न राम, लक्ष्मणके पास गया ।

उसी समय देशभूषण और कुलभूषण नामा मुनि विहार करते हुए अयोध्यामें आये । राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नने उनके पास जाकर चरण वंदना की । फिर रामने मुनिसे पूछाः—"शत्रुघ्नने मथुरा लेनेका आग्रह क्यों किया ?"

देशभूषण मुनि बोलेः—"शत्रुघ्नका जीव अनेक बार मथुरामें उत्पन्न हुआ है । एकबार वह श्रीधर नामा ब्राह्मण

हुआ था। वह रूपवान और साधुओंका सेवक था। एक समय वह मार्गमें चला जा रहा था। उस समय राजाकी मुख्य रानी ललिताने उसको देखा। उसके हृदयमें विकार उत्पन्न होगया। इसलिए उसने उसको कामकेलिके लिए बुलाया। उसी समय अचानक राजा वहाँ आगया। उसको देखकर, ललिता क्षणवार क्षुब्ध होगई। फिर 'चोर-चोर,' करके पुकार उठी। राजाने श्रीधरको पकड़कर, सेवकों द्वारा वध स्थानपर भेज दिया। उस समय उसने व्रत लेनेकी प्रतिज्ञा की, इसलिए कल्याण नामा मुनिने उसको छुड़ा दिया। मुक्त होकर उसने दीक्षा ली, और तपकरके वह देवलोकमें गया। वहाँसे चवकर, मथुरामें वह चंद्रप्रभ राजाकी रानी कांचनप्रभाकी कुक्षीसे अचल नामा पुत्र हुआ। राजा चंद्रप्रभ उससे बहुत प्यार करने लगा। उसके भानुप्रभ आदि सपत्न आठ ज्येष्ठ बन्धु थे। उन्होंने यह सोचकर, उसको मार देनेका यत्न करना प्रारंभ किया कि-पिताको यही सबसे ज्यादा प्यारा है, इसलिए राज्य इसीको मिलेगा। मंत्रियोंको उनके प्रयत्नका हाल ज्ञात होगया। उन्होंने अचलको खबर दी। अचल वहाँसे भाग गया। वनमें भटकते हुए एक बहुत बड़ा काँटा उसके पैरमें चुभ गया। उसकी पीड़ासे अचल रोने चिल्लाने लगा।

उसी समय श्रावस्ती नगरीका रहनेवाला अंक नामा एक पुरुष–जिसको उसके बापने घरसे निकाल दिया था–सिरपर लकड़ियोंका गट्ठा रक्खे हुए उधरसे निकला। उसने अचलको देखा। दया आनेसे गट्ठा नीचे उतार उसने अचलके पैरमेंसे काँटा निकाल दिया। अचल हर्षित हो, उसके हाथमें काँटा दे, बोलाः—"हे भद्र! तुमने बहुत उत्तम कार्य किया है। तुम मेरे परम उपकारी हो। तुम जब सुनो कि मथुरामें अचल राजा हुआ है, तब मथुरामें आना।"

तत्पश्चात अचल वहाँसे कोशांबी नगरीमें गया। वहाँ उसने राजा इन्द्रदत्तको सिंह गुरुके पास धनुपका अभ्यास करते देखा। उसने भी सिंहाचार्य और इन्द्रको अपना धनुष-संचालन–चातुर्य दिखाया। उससे हर्पित होकर इन्द्रने उसको अपनी पुत्री दत्ताका पाणि ग्रहण करा दिया। कुछ भूमि भी उसको दी। सैन्य बल मिलनेपर अचलने अंग आदि कई देश जीत लिए।

एक बार वह सेना लेकर, मथुरापर चढ़ गया। वहाँ उसने अपने सापत्न बन्धु भानुप्रभ आदिको–युद्ध करके, बाँध लिया। राजा चंद्रप्रभने उनको छुड़ानेके लिए मंत्रियोंको भेजा। अचलने मंत्रियोंके सामने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मंत्रियोंने वापिस जाकर, राजाको कहा।

सुनकर चंद्रप्रभ बहुत हर्षित हुआ । उसने बड़े उत्सव और धूमधामके साथ अचलको नगरमें प्रवेश कराया।

फिर चंद्रप्रभने, अचलको–छोटा होनेपर भी–राज्य गद्दी दी और भानुप्रभ आदिको अपने देशसे निकाल देना चाहा । अचलने आग्रह पूर्वक पिताको ऐसा करनेसे रोका और उन्हें अपने अदृष्ट सेवक बनाया ।

एकवार नाट्यशालामें अचलने अंकको देखा । देखा-प्रतिहारी उसको धक्के मारकर बाहिर निकाल रहे हैं। राजाने उसी समय उसको अपने पास बुलाया और उसकी जन्मभूमि श्रावस्ती नगरीका उसको राजा बनाया। अद्वितीय मैत्रीवाले वे दोनों साथ रहकर राज्य करने लगे । अन्तमें उन्होंने समुद्राचार्यके पाससे दीक्षा ली और कालयोगसे मृत्यु पाकर दोनों ब्रह्मलोकमें देवता हुए। वहाँसे चवकर अचलका जीव यह शत्रुघ्न तुह्मारा अनुज-बन्धु हुआ है। पूर्वजन्मके मोहसे उसने मथुराके लिए आग्रह किया था। अंकका जीव वहाँसे चवकर तुम्हारा सेनापति कृतान्तबदन हुआ है। इतना कहनेके पश्चात मुनि वहाँसे विहार कर गये। रामचंद्र आदि अयोध्यामें आये ।

सुरनंदादि महर्षियोंका प्रभाव।

प्रभापुरके राजा श्रीनंदकी रानी धमणीके गर्भसे क्रमशः सात पुत्र हुए। उनके सुरनंद. श्रीनंद. श्रीतिलक. सर्व-

सुंदर, जयंत, चामर और जयमित्र ऐसे नाम रक्खे गये। उनके बाद आठवाँ पुत्र हुआ। वह जब एक मासका हुआ तब श्रीनंदने उसको राज्यपर बिठाकर, अपने सातों पुत्रों सहित प्रीतिकर मुनिके पाससे दीक्षा लेली। श्रीनंद तप करके मोक्षमें गया और सुरनंदादि सातों मुनियोंको जंघाचारणकी लब्धि मिली। वे महर्षि एक वार विहार करते हुए, मथुरामें आये। उस समय वर्षा ऋतु आगई थी, इस लिए वे वहीं एक पर्वतकी गुफामें चातुर्मास करनेके लिए रहे। छट्ठ, अट्ठम आदि अनेक प्रकारकी तपस्या करने लगे; वहाँसे उड़ कर किसी दूर देशमें पारणा करनेको जाते थे। पारणा करके वे पुनः चौमासा निर्गमन करनेके लिए जो स्थान नियत किया था, वहाँ आजाते थे। उनके प्रभावसे चमरेंद्रने जो व्याधियाँ मथुरामें उत्पन्न की थीं, वे भी सब नष्ट हो गईं।

एक वार वे मुनि पारणा करनेके लिए अयोध्यामें गये। वहाँ अर्हद्दत्त सेठके घर भिक्षाके लिए गये। सेठने अवज्ञाके साथ उनको वंदना की और मनमें सोचा—" ये कैसे साधु हैं, जो वर्षा ऋतुमें भी विहार करते हैं। मैं इनसे कारण पूछूँ ? नहीं। ऐसे पाखंडियोंसे बात करना वृथा है।"

सेठकी स्त्रीने उनको आहारपानी दिया। वे आहारपानी लेकर द्युतिनामा आचार्यके उपाश्रयमें गये। आचार्यने सन्मानके साथ उनको वंदना की; मगर उनके साधुओंने

उनको अकाल विहारी समझकर वंदना नहीं की। द्युति आचार्यने उनको आसन दिया। उसी पर बैठ कर, उन्होंने पारणा किया। फिर उन्होंने कहाः—" हम मथुरासे आये हैं और वापिस वहीं जायँगे।" वे उड़कर अपने स्थानको चले गये। उनके जाने बाद द्युति आचार्यने उन जंघाचारण मुनियोंके गुणोंकी स्तुति की। सुनकर, उनके साधुओंको—उन्होंने उनकी अवज्ञा की थी इस लिए—पश्चत्ताप हुआ। यह बात सुनकर अर्हद्दत सेठको भी पश्चात्ताप हुआ। फिर सेठ कार्तिक महीनेकी शुक्ला सप्तमीको मथुरामें गया। वहाँ चैत्य पूजा करके गुफामें मुनियोंके पास गया। उसने उनकी जो अवज्ञा की थी, उसके लिए—उसको उनके सामने प्रकट कर—उसने उनसे क्षमा याचना की।

यह खबर सुनकर कि, सप्तर्षियोंके प्रतापसे मथुरासे रोग नष्ट होगया है। शत्रुघ्न भी कार्तिककी पूर्णिमाको मथुरामें आया। उसने मुनियोंसे जाकर वंदना की और निवेदन किया कि—" हे महात्मा! आप मेरे घर पधारकर आहारपानी ग्रहण कीजिए।" उन्होंने उत्तर दियाः— " साधुओंको राज्य-पिंड नहीं कल्पता है।"

शत्रुघ्ननें फिर निवेदन कियाः—" हे स्वामी! आपने मुझपर अत्यंत उपकार किया है। आपहीके प्रभावसे मेरे राज्यमें जो दैविक रोग उत्पन्न हुआ था, वह शांत हो गया है। अतः मुझ पर और सारी प्रजापर अनुग्रह करके

थोड़े समय और यहाँ पर निवास कीजिए। क्योंकि आपकी सारी प्रवृत्तियाँ परोपकारके लिए ही होती हैं।"

मुनियोंने उत्तर दिया:—"वर्षाकाल बीत गया है; इस लिए अब हम यहाँसे विहार करके तीर्थयात्रा करेंगे; क्योंकि मुनि एक स्थानपर कभी नहीं रहते हैं। तुम इस नगरीमें घर घर अर्हतबिंब स्थापन करवाओ जिससे फिर कभी कोई व्याधि नहीं होगी।"

तत्पश्चात सप्तर्षि वहाँसे उड़कर अन्यत्र गये। शत्रुघ्नने हरेक घरमें जिनबिंब स्थापित करवाये। जिससे सारे घर रोगमुक्त होगये। मथुरापुरीकी चारों दिशाओंमें सप्तर्षियों की रत्नमय प्रतिमाएँ भी बनवाकर स्थापन करवाई गई।

उस समय वैताढ्य गिरिकी दक्षिण श्रेणीके आभूषणरूप रत्नपुर नामके नगरमें रत्नरथ नामा राजा था। उसके चंद्रमुखी नामा एक रानी थी। उसकी कूखसे मनोरमा नामा एक कन्या हुई। रूप भी उसका नामानुसार बहुत ही मनोरम-सुंदर—था। वह कन्या क्रमशः जवान हुई। एक दिन राजा सोच रहा था कि इस कन्याको किसे देना चाहिए, उसी समय अकस्मात वहाँपर नारद आगये। उन्होंने कहा कि कन्या लक्ष्मणके योग्य है। यह सुनकर, गोत्रवैरके कारण रत्नरथके पुत्रोंको क्रोध हो आया। इसलिए उन्होंने आँखके इशारेसे अपने सेवकोंको, नारदको मारनेकी आज्ञा दी। बुद्धिमान नारद उठते हुए सेव-

उनको अकाल विहारी समझकर वंदना नहीं की। द्युति आचार्यने उनको आसन दिया। उसी पर बैठ कर, उन्होंने पारणा किया। फिर उन्होंने कहाः—" हम मथुरासे आये हैं और वापिस वहीं जायँगे।" वे उड़कर अपने स्थानको चले गये। उनके जाने बाद द्युति आचार्यने उन जंघाचारण मुनियोंके गुणोंकी स्तुति की। सुनकर, उनके साधुओंको— उन्होंने उनकी अवज्ञा की थी इस लिए—पश्चत्ताप हुआ। यह बात सुनकर अर्हद्दत्त सेठको भी पश्चात्ताप हुआ। फिर सेठ कार्तिक महीनेकी शुक्ला सप्तमीको मथुरामें गया। वहाँ चैत्य पूजा करके गुफामें मुनियोंके पास गया। उसने उनकी जो अवज्ञा की थी, उसके लिए—उसको उनके सामने प्रकट कर—उसने उनसे क्षमा याचना की।

यह खबर सुनकर कि, सप्तर्षियोंके प्रतापसे मथुरासे रोग नष्ट होगया है। शत्रुघ्न भी कार्तिककी पूर्णिमाको मथुरामें आया। उसने मुनियोंसे जाकर वंदना की और निवेदन किया कि—" हे महात्मा! आप मेरे घर पधारकर आहारपानी ग्रहण कीजिए।" उन्होंने उत्तर दियाः— " साधुओंको राज्य-पिंड नहीं कल्पता है।"

शत्रुघ्नने फिर निवेदन कियाः—" हे स्वामी! आपने मुझपर अत्यंत उपकार किया है। आपहीके प्रभावसे मेरे राज्यमें जो दैविक रोग उत्पन्न हुआ था, वह शांत हो गया है। अतः मुझ पर और सारी प्रजापर अनुग्रह करके

थोड़े समय और यहाँ पर निवास कीजिए। क्योंकि आपकी सारी प्रवृत्तियाँ परोपकारके लिए ही होती हैं। "

मुनियोंने उत्तर दिया:—"वर्षाकाल बीत गया है; इस लिए अब हम यहाँसे विहार करके तीर्थयात्रा करेंगे; क्योंकि मुनि एक स्थानपर कभी नहीं रहते हैं। तुम इस नगरीमें घर घर अर्हतबिंब स्थापन करवाओ जिससे फिर कभी कोई व्याधि नहीं होगी।"

तत्पश्चात सप्तर्षि वहाँसे उड़कर अन्यत्र गये। शत्रुघ्नने हरेक घरमें जिनबिंब स्थापित करवाये। जिससे सारे घर रोगमुक्त होगये। मथुरापुरीकी चारों दिशाओंमें सप्तर्षियों की रत्नमय प्रतिमाएँ भी बनवाकर स्थापन करवाई गई।

उस समय वैताढ्य गिरिकी दक्षिण श्रेणीके आभूषणरूप रत्नपुर नामके नगरमें रत्नरथ नामा राजा था। उसके चंद्रमुखी नामा एक रानी थी। उसकी कूखसे मनोरमा नामा एक कन्या हुई। रूप भी उसका नामानुसार बहुत ही मनोरम-सुंदर-था। वह कन्या क्रमशः जवान हुई। एक दिन राजा सोच रहा था कि इस कन्याको किसे देना चाहिए, उसी समय अकस्मात वहाँपर नारद आगये। उन्होंने कहा कि कन्या लक्ष्मणके योग्य है। यह सुनकर, गोत्रवैरके कारण रत्नरथके पुत्रोंको क्रोध हो आया। इसलिए उन्होंने आँखके इशारेसे अपने सेवकोंको, नारदको मारनेकी आज्ञा दी। बुद्धिमान नारद उठते हुए सेव-

कोंका अभिप्राय समझकर तत्काल ही वहाँसे पक्षीकी तरह उड़कर लक्ष्मणके पास गये। उस कन्याका रूप एक पट-पर चित्रित करके उन्होंने लक्ष्मणको बताया और अपना सारा वृत्तान्त भी उन्हें सुनाया। कन्याका रूप देखकर लक्ष्मण उसपर अनुरक्त होगये। इसलिए वे राम और अपनी राक्षस और वानर सेना सहित तत्काल ही रत्नपु-रमें पहुँचे। लक्ष्मणने थोड़ी ही देरमें रत्नरथको जीत लिया। इस लिए उसने रामको श्रीदामा और लक्ष्मणको मनोरमा नामा अपनी कन्याएँ दे दीं।

तत्पश्चात राम, लक्ष्मण वैताढ्यगिरीकी सारी दक्षिण श्रेणीको जीतकर अयोध्यामें आये और सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

सीतासे, उसकी सौतोंका ईर्ष्या करना।

लक्ष्मणके सब मिलाकर सोलह हजार स्त्रियाँ और ढाई सौ पुत्र हुए। उनमेंसे विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रत्नमाला, जितपद्मा, अभयवती और मनो-रमा आठ पट्टरानियाँ हुईं। इनके पुत्र मुख्य थे। उनके नाम ये हैं—विशल्याका श्रीधर, रूपवतीका पृथ्वी तिलक, वनमालाका अर्जुन, जितपद्माका श्रीकेशी, कल्याणमालाका मंगल मनोरमाका सुपार्श्वकीर्ति, रतिमालाका विमल और अभयवतीका सत्यकार्तिक।

रामके चार रानियाँ थीं। उनके नाम सीता, प्रभावती, रतिनिभा, और श्रीदामा थे।

एक वार सीता ऋतुस्नान करके सो रही थीं। रात्रिके अन्तभागमें उनको स्वप्न आया। उन्होंने दो अष्टापद प्राणियोंको विमानमेंसे चवकर अपने मुँहमें उतरते हुए देखा। उन्होंने अपना यह स्वप्न रामको कहा। रामने कहाः—"हे देवी! तुम्हारे दो वीर पुत्र होंगे; परन्तु मुझे यह सुनकर हर्ष नहीं होता है कि–विमानमेंसे उतरकर दो अष्टापद प्राणियोंने तुम्हारे मुखमें प्रवेश किया है।"

जानकीने कहाः—"हे नाथ! धर्मके प्रभावसे और आपके प्रभावसे सब कुछ अच्छा ही होगा।" उसी दिनसे देवी सीताने गर्भधारण किया। सीता रामको पहिलेहीसे बहुत प्रिय थीं और गर्भधारण करने पर तो राम उनसे और ज्यादा प्रेम रखने लगे। वे रामकी आँखोंको चंद्रि-काके समान तृप्त करनेवाली हो गईं।

सीताको सगर्भा जानकर उसकी सौतोंके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। इसलिए उन कपटी स्त्रियोंने छल करके सीतासे कहाः—"रावणका कैसा स्वरूप था सो हमें लिख-कर बताओ।" सीताने कहाः—"मैंने उसका सारा शरीर नहीं देखा, केवल पैर देखे थे, इसलिए उसका सारा शरीर लिखकर, कैसे बता सकती हूँ?" सौतोंने कहाः—

" अच्छा उसके पैर ही लिखकर बताओ । हमें उनको देखनेकी बहुत इच्छा हो रही है।"

सौतोंके आग्रहसे सरल प्रकृति सीताने रावणके चरण चित्रित किये । अकस्मात उसी समय राम वहाँ आगये । उनको देखते ही सौतें झट कह उठीं:—" स्वामी ! देखो आपकी प्रिया सीता अब भी रावणका स्मरण कर रही है। नाथ ! देखो सीताने रावणके दोनों चरण चित्रित किये हैं । सीता अब भी रावणहीकी इच्छा करती है । यह बात आप ध्यानमें रखिए ।" राम कुछ न बोले । गंभीरता धारण कर चुपचाप-सीताको ज्ञात भी नहीं हुआ-वे वापिस चले गये । सीताकी इस बातको सदोष बताकर, सौतोंने अपनी दासियोंके द्वारा लोगोंमें यह बात प्रकाशित की । इससे प्रायः लोग भी सीताको सकलंका बताने लगे ।"

सीताको अशुभकी शंका होना ।

वसंत ऋतु आई । राम सीताके पास गये और कहने लगे:—" हे भद्रे ! तुम गर्भसे खेदित हो रही हो, इसलिए तुम्हारे विनोदार्थ यह वसंत ऋतु लक्ष्मी आई है । बकुल आदि वृक्ष स्त्रियोंके दोहदसे ही विकसित होते हैं; इसलिए चलो, हम महेंद्रोद्यानमें क्रीडा करने जायँगे ।" सीताने उत्तर दिया:—" नाथ ! मुझको देवार्चन करनेका दोहद हुआ है । इसलिए उस उद्यानके विविध भाँतिके सुगंधित पुष्पों द्वारा मेरा दोहद पूर्ण करो ।"

रामने अति श्रेष्ठ प्रकारसे देवार्चन कराया । फिर वे सीताको लेकर सपरिवार महेन्द्रोद्यानमें गये । वहाँपर बैठ कर आनंदके साथ रामने वसंतोत्सवको देखा । जिसमें अनेक नगरवासी क्रीडा कर रहे थे और जो अर्हतकी पूजासे व्याप्त हो रहा था । उसी समय सीताका दाहिना नेत्र फड़का । उसने सशंक चित्त होकर रामसे नेत्र फड़कनेकी बात कही । रामने इस फड़कनेको अशुभ बताया । इसलिए सीता बोलीं:—" क्या मुझे राक्षस द्वीपमें रखकर भी दैवको अभीतक संतोष नहीं हुआ है ? क्या फिर निर्दय दैव आपके वियोगसे भी कोई अधिक दुःख देना चाहता है ? यदि ऐसा नहीं है तो फिर ऐसे अशुभ दर्शक-संकेत क्यों हो रहे हैं ? "

रामने उत्तर दिया:—" हे देवी दुःख न करो क्यों कि—

" अवश्यमेव भोक्तव्ये, कर्माधीने सुखासुखे । "

(सुख और दुःख कर्माधीन हैं । ये प्राणियोंको अवश्य भोगने ही पड़ते हैं ।) इसलिए अपने मंदिरमें चलो । देवताओंकी पूजा करो । और सत्पात्रोंको दान दो । क्यों कि—

" धर्मः शरणमापदि । "

(आपत्तिमें धर्म ही एक शरण है ।) सीता निज महलमें गई । और प्रभुपूजन करनेमें और सत्पात्रको दान देनेमें रत होगई ।

सीतापर कलंक ।

विजय, सुरदेव, मधुमान, पिंगल, शूलधर, काश्यप, काल और क्षेमनामा राजधानीके बड़े बड़े अधिकारी नगरीके यथार्थ वृत्तान्त जाननेके लिए नियत थे। वे एक दिन रामके पास आये और वृक्षकी भाँति थर थर काँपने लगे। वे रामको कोई बात नहीं कह सके। क्योंकि राज-तेज बड़ा दुःसह होता है। रामने कहाः—"हे नगरीके महान अधिकारियो! तुम्हें जो कुछ कहना हो वह कहो। तुम एकान्त हितवादी हो, इसलिए अभय हो।"

रामके अभय वचन सुनकर, वे कुछ स्थिर हुए। उनमेंसे विजय नामका अधिकारी सबका प्रधान था वह बड़ी सावधानीके साथ इस तरह कहने लगाः—"हे स्वामी! एक बात है; जिसका कहना बहुत ही आवश्यकीय है। यदि मैं न कहूँगा तो स्वामीको ठगनेवाला कहलाऊँगा। मगर वह है बहुत ही दुःश्रव। हे देव! देवी सीतापर एक अप-वाद आया है। वह दुर्घट है तो भी लोग उसको सीतापर घटित करते हैं। नीतिका वचन है कि—जो बात युक्ति पूर्वक घटित होती हो, उसपर विद्वानोंको विश्वास करना चाहिए। लोग कहते हैं कि—रतिक्रीडाकी इच्छासे रावणने सीताका हरण किया। उनको अकेले अपने घरमें रक्खा। सीता बहुत समयतक उसके घरमें रहीं। सीता चाहे रावणसे रक्त रही हो, या विरक्त इससे क्या होता जाता है?

सीतापर कलंक।

विजय, सुरदेव, मधुमान, पिंगल, शूलधर, काश्यप, काल और क्षेमनामा राजधानीके बड़े बड़े अधिकारी नगरीके यथार्थ वृत्तान्त जाननेके लिए नियत थे। वे एक दिन रामके पास आये और वृक्षकी भाँति थर थर काँपने लगे। वे रामको कोई बात नहीं कह सके। क्योंकि राजतेज बड़ा दुःसह होता है। रामने कहाः—"हे नगरीके महान अधिकारियो! तुम्हें जो कुछ कहना हो वह कहो। तुम एकान्त हितवादी हो, इसलिए अभय हो।"

रामके अभय वचन सुनकर, वे कुछ स्थिर हुए। उनमेंसे विजय नामका अधिकारी सबका प्रधान था वह बड़ी सावधानीके साथ इस तरह कहने लगाः—"हे स्वामी! एक बात है; जिसका कहना बहुत ही आवश्यकीय है। यदि मैं न कहूँगा तो स्वामीको ठगनेवाला कहलाऊँगा। मगर वह है बहुत ही दुःश्रव। हे देव! देवी सीतापर एक अपवाद आया है। वह दुर्घट है तो भी लोग उसको सीतापर घटित करते हैं। नीतिका वचन है कि—जो बात युक्ति पूर्वक घटित होती हो, उसपर विद्वानोंको विश्वास करना चाहिए। लोग कहते हैं कि—रतिक्रीडाकी इच्छासे रावणने सीताका हरण किया। उनको अकेले अपने घरमें रक्खा। सीता बहुत समयतक उसके घरमें रहीं। सीता चाहे रावणसे रक्त रही हो, या विरक्त इससे क्या होता जाता है?

रावण पक्का स्त्रीलंपट था, इसलिए वह सीताके साथ भोग किये विना न रहा होगा। भोग चाहे उसने सीताको समझाकर किया हो और चाहे जबर्दस्तीसे किया हो। लोग जो कुछ कहते हैं, वही हमने आपके सामने निवेदन किया है। हे राम! इस युक्ति पुरःसर अपवादको आप सहन न कीजिए। हे देव! आपने जन्मसे ही अपने कुलके समान कीर्ति उपार्जन की है। अब ऐसे मलिन अपवादको सहकर अपने यशको मलिन न होने दीजिए।"

राम कुछ न बोले। उन्होंने मन ही मन सोचा कि सीता कलंककी अतिथि होगई हैं।" प्रेम छोड़ना प्रायः अत्यंत कठिन कार्य है। कुछ देर बाद रामने बड़े धैर्यके साथ कहाः—"हे महापुरुषो! तुमने अच्छा किया कि मुझको चेता दिया। राजभक्त पुरुष कभी किसी बातकी अपेक्षा नहीं करते हैं। मात्र स्त्रीके लिए मैं ऐसा अपयश नहीं सहूँगा।"

रामने अधिकारियोंको बिदा किया। उस रातको राम गुप्त रीतिसे अकेले महलके बाहिर निकले। शहरमें फिरते हुए उन्होंने स्थान स्थानपर लोगोंको इस प्रकार बातें करते सुना—"रावण सीताको ले गया। सीता चिर-कालतक रावणके घरमें रही; तो भी राम उसको वापिस ले आये। और अब भी उसको सती समझते हैं। यह कैसे हो सकता है कि, स्त्रीलंपट रावणने सीताको, ले

जाकर, भोग किये बिना रहने दिया होगा? रामने तो इतना भी नहीं सोचा। मगर सच है—

'न रक्तो दोषमीक्षते।'

(रागी मनुष्य दोष नहीं देखते हैं।) इस प्रकार सीताके विषयमें कलंककी बातें सुनकर, राम पुनः महलमें लौट गये। दूसरे दिन फिरसे उन्होंने गुप्तचरोंको भेजा।

सीताका परित्याग।

राम सोचने लगेः—"जिस सीताके लिए मैंने राक्षस कुलका भयंकर रीतिसे नाश किया उसी सीताके ऊपर यह कैसा कलंक आया है? मैं जानता हूँ कि, सीता महासती है; रावण स्त्रीलोलुप था और मेरा कुल निष्कलंक है। अब मुझको क्या करना चाहिए?"

रामके पास लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण आदि बैठे हुए थे। उसी समय गुप्तचर आये। उन्होंने वे सब बातें कह सुनाई जो बातें लोग सीताके विषयमें कहते थे। सुनकर लक्ष्मणको बहुत क्रोध आया। वे भ्रकुटी चढ़ाकर बोलेः—"जो मिथ्या कारणोंसे दोषकी कल्पना करके सती सीताकी निंदा करते हैं उनका मैं काल हूँ।"

रामने कहाः—"बन्धु! शान्त होओ। हमने शहरके समाचार लाकर सुनानेके लिए जो लोग नियत किये थे;

स्वयं मैंने भी ये बातें सुनी हैं और ये लोग भी मेरे कहनेसे सब समाचार लेकर आये हैं। इसलिए सीताका जैसे मैंने स्वीकार किया है, वैसे ही उसका त्याग कर दूँगा तो फिर लोग हमें कलंकित नहीं करेंगे।"

लक्ष्मण बोले:—"आर्य! लोगोंके कहनेसे सीताका त्याग न करना। क्योंकि लोग तो जीमें आता है, वैसे ही बोलते हैं। कोई उनका मुँह बंद नहीं कर सकता है। लोग राज्यमें सुव्यवस्था होनेपर भी राजाको दोषी बताया ही करते हैं। इसलिए राजाको चाहिए कि, या तो वह ऐसे लोगोंको दण्ड दे या उनकी उपेक्षा करे।"

रामने कहा:—"यह ठीक है कि, लोग ऐसे होते हैं; परन्तु जो बात सब लोगोंके विरुद्ध हो—सब लोग जिस बातको नापसंद करते हों, उसका यशस्वी पुरुषोंको त्याग कर देना चाहिए।"

तत्पश्चात रामने कृतान्तवदन नामा सेनापतिसे कहा:—"यद्यपि सीता सगर्भा है, तथापि उसको लेजाकर अरण्यमें छोड़ आ।" यह सुनकर लक्ष्मण रो पड़े और रामके चरण पकड़कर, कहने लगे:—"हे आर्य! महासती सीताका त्याग करना योग्य नहीं है।" रामने कहा:—"इस विषयमें अब तुम मुझसे कुछ न कहो।" यह सुनकर लक्ष्मण वस्त्रसे मुख ढँक रोते हुए अपने महलमें चले गये। रामने कृतान्तवदनसे कहा:—"समेतशिखर

की यात्राके बहाने सीताको वनमें ले जा । सीताकी ऐसी इच्छा भी है ।"

कृतान्तवदनने समेतशिखर लेजानेकी बात जाकर सीताको कही । सीता राजी होगई । कृतान्तवदन उनको रथमें बिठाकर ले चला ।

चलते समय सीताको अनेक अपशकुन हुए । तो भी सरलताके कारण वे शान्त होकर बैठी रहीं । वे बहुत दूर निकल गई । चलते हुए वे गंगासागर उतर कर, सिंह निनाद नामा वनमें पहुँचे । रथको वहीं खड़ा करके कृतान्तवदन कुछ विचार करने लगा। विचारते विचारते उसका मुख म्लान होगया, उसके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे ।

यह देखकर, सीता बोलीं:—"हे सेनापति! हृदयमें बड़ा भारी शोकाघात हुआ हो, वैसे दुखी होकर तुम क्यों स्थिर हो रहे हो ?"

कृतान्तवदनने उत्तर दिया:—"हे माता ! मैं दुर्वचन कैसे बोलूँ ? मैं सेवकपनसे दूषित हूँ। इसीलिए मुझको यह अकृत्य करना पड़ा है । देवी ! आप राक्षसके घरमें रहीं । लोग आप पर अपवाद लगाते हैं । रामने इस अपवादसे डरकर, आपको इस भयानक वनमें छोड़नेकी आज्ञा दी है । गुप्तचरोंने रामको आकर, आपके विषयमें लोग अपवादकी जो बातें कहते हैं वे बातें सुनाई । सुनकर राम आपका त्याग करनेको तैयार हुए । लक्ष्मणको लोगोंपर

अत्यन्त क्रोध आया। उन्होंने रामको भी ऐसा करनेसे बहुत रोका; परन्तु रामने आज्ञा देकर उन्हें आग्रह करनेसे रोक दिया। इसलिए लक्ष्मण रोते हुए वहाँसे चले गये। फिर रामने मुझको यह कार्य करनेकी आज्ञा दी। हे देवी! मैं बहुत पापी हूँ। इसीलिए हिंसक प्राणियोंसे भरे हुए मृत्युके गृहरूप इस अरण्यमें मैं आपका छोड़कर जाता हूँ। आप केवल अपने ही प्रभावसे इस अरण्यमें जीवित रह सकेंगी।"

सेनापतिके वचन सुनकर, सीता मूर्छित होकर रथमेंसे पृथ्वीपर जा गिरीं। सेनापति उनको मरी समझ, अपने को अत्यन्त पापी मान करुणाक्रंदन करने लगा।

थोड़ी देर बाद वनके शीतल वायुसे सीताको कुछ चेत आया। मगर वे फिरसे मूर्छित होगईं। इस तरह बहुत देरतक वे मूर्छित सचेत होती रहीं, फिर स्वस्थ होकर बोलीं:—" यहाँसे अयोध्या कितनी दूर है? राम कहाँ हैं?"

सेनापतिने कहा:—" हे देवी! अयोध्या नगरी यहाँसे बहुत दूर है। उसके लिए आप क्या पूछती हैं? और उग्र आज्ञा करनेवाले रामकी तो बात ही क्यों करती हैं?"

उसके ऐसे वचन सुनकर, राम-भक्त सीताने कहा:- " हे भद्र! तू रामसे जाकर, मेरा इतना संदेश कहना कि-"जो आप लोकापवादसे डरे थे तो फिर आपने मेरी

परीक्षा क्यों नहीं करली थी? लोग जब शंका होती है, तब दिव्यादिसे परीक्षा करते हैं। मैं मंद भाग्या हूँ, सो मैं तो इस वनमें भी अपने कर्म भोगूँगी; परन्तु आपने जो कार्य किया है वह आपके विवेक और कुलके सर्वथा अयोग्य है। हे स्वामी! जैसे दुर्जन लोगोंकी बातोंसे आपने मेरा त्याग कर दिया, वैसे ही दुष्टोंकी बातोंसे कहीं जिन-भाषित धर्मको मत छोड़ देना।'

इतना कहकर, सीता फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। फिर सावधान होकर बोलीं:—"अरे! राम मेरे विना जीवित कैसे रहेंगे? हा हन्त! मैं मारी गई। हे वत्स! कृतान्त! रामको कल्याण और लक्ष्मणको आशिष कहना। तेरा मार्ग निरुपद्रव पूरा हो। अब तू शीघ्र ही लौटकर, रामके पास जा।"

सेनापति कृतान्त बड़ी कठिनतासे अपने मनको समझा सीताको वनमें छोड़, वापिस अयोध्याकी तरफ चला। जाते हुए सोचने लगा—"रामकी वृत्ति सीतासे अत्यन्त विपरीत हो रही है, तो भी सीता रामपर इतनी भक्ति रखती हैं। सीता सती शिरोमणि हैं; महासति हैं।"

सर्ग नवाँ ।

सीताकी शुद्धि और व्रतग्रहण ।

सीताका पुंडरीकपुरमें जाना ।

सीता भयके मारे पागलोंकी तरह इधर उधर फिरने लगीं; और पूर्व कर्मसे दूषित बने हुए अपने आत्माकी निंदा करने लगीं। बार बार, डुबक डुबककर वे रोती थीं। गिर जाती थीं। फिर उठती थीं, चलती थीं, फिर गिर जाती थीं। इस भाँति वे एक ओर चली जा रही थीं। उस समय उन्होंने सामनेसे एक सैन्यको आते हुए देखा। उसको देख, वे वहीं खड़ी हो गईं और स्थिर चित्त होकर नवकार मंत्रका जाप करने लगीं।

सैनिकोंने सीताको देखा। वे उनसे डरगये। वे सोचने लगेः—"यह अपूर्व दिव्य रूपावली कौन सुंदरी है? जो इस तरह पृथ्वीमें विचरण कर रही है?"

सीता थोड़ी देर स्थिर रहीं। फिरसे उन्हें अपनी हालतको यादकर रोना आगया। उनका करुण रुदन उस सैन्यके राजाने सुना। उनके मनस्ताप और रुदनसे राजाने सोचा। कि यह कोई गर्भिणी और सती स्त्री जान पड़ती है।

वह कृपालु राजा सीताके पास आया। राजाको देख उन्हें शंका हुई। उन्होंने अपने वस्त्रालंकार उतार कर राजाके सामने रख दिये।

राजाने कहाः—“ हे बहिन! तुमको कुछ डर नहीं है। ये वस्त्रालंकार तुह्मारे ही हैं। तुह्मीं इनको धारण करो। तुह्मारा स्वामी कौन निर्दय शिरोमणि है कि, जिसने तुह्मारा ऐसी स्थितिमें परित्याग कर दिया है? जो बात हो सो स्पष्ट कहो। मनमें किसी प्रकारकी शंका न करो। मुझे तुह्मारा कष्ट देखकर दुःख हो रहा है।”

राजाका मंत्री सुमति कहने लगाः—“ ये पुंडरीकपुरके स्वामी वज्रजंघ राजा हैं। इनके पिताका नाम गजवाहन है। बन्धुदेवी रानीकी कूखसे इन्होंने जन्म लिया है। ये महा सत्वधारी हैं; परनारी सहोदर हैं; परम श्रावक हैं। ये इस वनमें हाथी पकड़नेको आये थे। अपना कार्य करके वापिस जा रहे थे, इतनेहीमें इन्होंने तुम्हारा आर्त-नाद सुना। इन्हें दुःख हुआ। इसलिए ये तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हें जो कुछ दुःख हो कहो।”

सीताने उनके कथनपर विश्वास किया और रोते हुए अपना सारा कष्ट कह सुनाया। सुनकर राजा और मंत्री भी रो पड़े। फिर राजाने निष्कपट भावसे कहाः—“तुम मेरी धर्म बहिन हो; क्योंकि एक धर्मवाले परस्पर बन्धु ही

UNIVERSITY ... JAN 28 1924 ... ALLAHABAD

होते हैं। तुम मुझे अपने भाई भामंडलके समान समझो और मेरे घर चलो।

'स्त्रीणां पतिगृहादन्यत् स्थानं भ्रातृनिकेतनम्।'

(पतिके घरके सिवा दूसरा स्थान स्त्रियोंके लिए भाईका घर होता है।) रामने लोकापवादसे तुम्हारा त्याग किया है। अपनी इच्छासे नहीं। इसलिए मैं समझता हूँ कि वे अपनी इस कृति पर पश्चात्ताप करते हुए तुम्हारे समान ही दुखी होंगे। विरहातुर दशरथ कुमार चक्रवाक पक्षीकी भाँति व्याकुल होकर थोड़े ही समयमें तुम्हें खोजनेके लिए निकलेंगे।"

सीताने वज्रजंघके साथ पुंडरीकपुरमें जाना स्वीकार किया। उस निर्विकारी राजाने पालकी मँगवाई। सीता उसमें सवार होकर, मिथिलापुरीमें ही जाती हों उस तरह पुंडरीकपुरमें गईं। वज्रजंघने उनको रहनेके लिए एक घर बता दिया। वे उसमें रह कर धर्मध्यानमें अपने दिन निकालने लगीं।

रामका सीताको लेने जाना।

सेनापति कृतान्तवदन वापिस अयोध्यामें गया। उसने रामके पास जाकर कहाः—" मैं सीताको सिंहनिनाद नामा वनमें छोड़ आया हूँ। वहाँ सीता बारबार मूर्च्छित होती थीं; बार बार सचेत होती थीं और करुण-रुदन करती थीं। अन्तमें थोड़ा बहुत धैर्य धारण कर उन्होंने

आपको यह संदेश कहलाया है कि—" किसी नीतिशास्त्रमें, किसी कानूनमें या किसी देशमें क्या एक पक्षके कहनेहीसे दूसरे पक्षवालेको–जाँच किये विना ही–अपराधी समझकर, दण्ड देनेका दस्तूर है ? आप सदैव विचार पूर्वक कार्य करनेवाले हैं; तथापि यह कार्य आपने विना विचारे ही किया है। मगर मेरे प्रति जो अविचार हुआ है, उसका कारण मैं अपने भाग्यको समझती हूँ। आप तो सदा निर्दोष ही हैं। तो भी हे प्रभो ! एक बात है। मैं निर्दोष हूँ। तो भी आपने लोगोंके कहनेसे मेरा त्याग कर दिया है। इसी भाँति कहीं मिथ्यादृष्टि लोगोंके कहनेसे जैन धर्मका त्याग मत कर देना।" इतना कहकर सीता फिर मूर्च्छित हो गई। थोड़ी देरके बाद उन्हें चेत हुआ। वे फिर कहने लगीं—" अरे ! राम मेरे विना जीवित कैसे रहेंगे ? हाय ! मैं मारी गई ! "

सीताकी कहलाई हुई बातें कृतान्तवदनके मुखसे सुनकर, राम मूर्छित होगये। तत्काल ही लक्ष्मणने ससंभ्रम वहाँ आकर उनपर चंदनका जल छिड़का। राम सचेत हुए और कहने लगे:—" वह महा सती सीता कहाँ है ? जिसको मैंने लोगोंके कहनेसे वनमें छोड़ दिया है ? "

लक्ष्मण बोले:—" हे स्वामी ! अबतक महा सती सीता अपने प्रभावसे, जन्तुओंके हाथोंसे, बची हुई होंगी।

अतः वे आपके विरहदुःखसे मर जायँ इसके पहिले ही आप जाइए और उनको खोजकर ले आइए।"

लक्ष्मणके वचन सुन, राम कृतान्तवदन सेनापति और कुछ अन्यान्य खेचरोंको लेकर विमानमें बैठे और उस अरण्यमें पहुँचे जहाँ कृतान्तवदन सीताको छोड़ आया था। वहाँ रामने प्रत्येक जलाशय, प्रत्येक पर्वत प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक लताको देखा; मगर उन्हें कहीं सीताका पता न मिला। इससे रामको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा—"जान पड़ता है कि कोई सिंह या हिंसक प्राणी उसको खागया है।" बहुत ढूँढने पर भी सीताका कहीं पता नहीं चला, तब निराश होकर राम वापिस अयोध्यामें लौट गये। सारे शहरमें यह बात फैल गई। नगरवासी बार बार सीताके गुणोंकी प्रशंसा और रामकी निंदा करने लगे। रामने साश्रुनयन हो, सीताकी मृत्यु-क्रिया की। रामको सारा संसार सीतामय भासित होने लगा। उनके हृदयमें, उनकी आँखोंमें और उनकी वाणीमें सीताके सिवा और कुछ नहीं था। सीता किसी स्थान पर थीं; परन्तु उस समय रामको ज्ञात नहीं हुआ।

सीताका पुत्रयुगलको जन्म देना।

वज्रजंघ राजाके यहाँ सीताने पुत्रयुगलका प्रसव किया। अनंगलवण और मदनांकुश उनका नाम रक्खा। महद् हृदयी राजा वज्रजंघने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी

खुशीसे भी विशेष खुशी मनाई। उसने .उनके जन्म और नामकरणके महोत्सव किये। धाएँ उनका लालन पालन करने लगीं। लीलासे दुर्ललित–दुष्टचेष्टित–दोनों भ्राता भूचारी अश्विनीकुमारोंकी भाँति दिनबदिन बड़े होने लगे। थोड़े बरसों बाद ये दोनों बालक बाल–कला ग्रहण करने और हाथीके बच्चेकी तरह शिक्षा करनेके योग्य होकर, राजा वज्रजंघकी आँखोंको महोत्सवके समान आनंदित करने लगे।

उस समय सिद्धार्थ नामा एक अणुव्रतधारी सिद्धपुत्र–जो विद्याबलकी समृद्धिसे सम्पूर्ण और कलाओंमें व शास्त्रोंमें विचक्षण थे और आकाशगामी होनेसे त्रिकाल मेरुगिरि ऊपरके चैत्योंकी यात्रा करते थे–भिक्षाके लिए सीताके घर आये। सीताने आहार पानीसे श्रद्धा पूर्वक उनका सत्कार किया और उनसे उनके सुखविहार पूछे उन्होंने कहा और फिर सीतासे उनका वृत्तान्त पूछा। सीताने उनको, भाईके समान समझ, प्रारंभसे पुत्रोत्पत्ति पर्यन्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर, अष्टांगनिमित्तको जाननेवाले दयानिधि सिद्धार्थने उत्तर दियाः—

“ तुम क्यों वृथा चिन्ता करती हो ? क्योंकि लवण और अंकुशके समान तुम्हारे दो पुत्र हैं। श्रेष्ठ लक्षणवाले वे दूसरे राम, लक्ष्मण हैं। वे तुम्हारे सारे मनोरथोंको पूर्ण करेंगे।” इस भाँति उन्होंने सीताको आश्वासन दिया।

तत्पश्चात सीताने उनको, साग्रह प्रार्थना करके अपने पुत्रोंको पढ़ानेके लिए रख लिया। सिद्धार्थने लव और अंकुशको सारी कलाएँ ऐसी कुशलतासे सिखाई कि, वे देवताओंके लिए भी दुर्जय होगये। सारी कलाएँ सीखे उस समयतक वे पूर्ण युवावस्थामें पहुँच गये। उस समय दोनों भ्राता ऐसे शोभते थे मानो वे वसंत और कामदेवही थे।

वज्रजंघ और पृथुराजाका युद्ध।

वज्रजंघने अपनी, लक्ष्मीवती रानीके उदरसे जन्मी हुई, शशिचूला नामा कन्या और अन्यान्य बत्तीस कन्याएँ लवणको ब्याहीं। फिर उसने पृथ्वीपुरके राजा पृथुसे उसकी, अमृतवती रानीसे जन्मी हुई कनकमाला नामकी कन्या अंकुशके लिए माँगी। पराक्रमी पृथुने उत्तर दिया:— " जिसके वंशका कुछ ठिकाना नहीं है, उसको कन्या कैसे दी जा सकती है ? "

सुनकर, वज्रजंघ बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने पृथुपर चढ़ाई की। युद्ध हुआ। युद्धमें वज्रजंघने पृथुके मित्र व्याघ्ररथको बाँध लिया। इस लिए पृथुराजाने अपने मित्र पोतनपुरके पतिको अपनी सहायताके लिए बुलाया। क्योंकि—

'विधुरेषु हि मित्राणि स्मरणीयानि मंत्रवत्।'

(विपत्तिमें मंत्रकी भाँति मित्रोंको भी याद करना

चाहिए।) वज्रजंघने भी मनुष्य भेजकर, अपने पुत्रोंको बुलाया। लवण और अंकुश भी—बहुत निवारण करनेपर भी—उनके साथ युद्धमें गये।

दूसरे दिन दोनों सेनाओंमें बहुत बड़ा युद्ध हुआ। उस युद्धमें बलवान शत्रुओंने वज्रजंघकी सेनाको परास्त कर दिया। अपने मामाकी सेनाकी दुःस्थिति देखकर लवण और अंकुशको क्रोध आया। तत्काल ही वे निरंकुश हाथीकी तरह अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर दौड़े। वर्षाऋतुके पूरको जैसे वृक्ष नहीं सह सकते हैं, वैसे ही शत्रु उन बलवान वीरोंके प्रहारको न सह सके। पृथुराजा सेना सहित पीछा हटने लगा—युद्ध छोड़ भागने लगा। यह देख रामके पुत्रोंने हँसते हुए, उसको कहाः—"तुम प्रख्यात—जाने हुए—वंशवाले होकर भी हम अज्ञात कुलवालोंके सामने रणमें पीठ दिखाकर कैसे भागे जा रहे हो?"

उनके ऐसे वचन सुनकर, पृथु राजा पीछा फिरा और नम्रता पूर्वक बोलाः—"मैंने, तुम्हारा पराक्रम देखकर, अब तुम्हारा कुल जान लिया है। वज्रजंघ राजाने अंकुशके लिए मेरी कन्याको माँगा, यह मेरे ही हितकी बात है। क्योंकि ऐसा बलवान वर खोजनेपर भी मुश्किलसे मिल सकता है।" इतना कह, पृथुने उसी समय अपनी कन्या अंशको देनेका अभिवचन दिया। अपनी कनक-

माला नामा कन्याका वर अंकुश ही होवे ऐसी इच्छा रखने वाले पृथुराजाने, सारे राजाओंके सामने, वज्रजंघसे संधी कर ली । राजा वज्रजंघ वहींपर, छावनी डालकर, कई दिनतक रहा ।

लवण और अंकुशका पृथ्वीपुरसे प्रस्थान ।

एक दिन वहाँ नारद मुनि आये । वज्रजंघ राजाने उनका भली प्रकारसे सत्कार किया । फिर उसने सारे राजाओंके सामने नारदको कहाः—" हे मुनि ! यह पृथु राजा अंकुशको अपनी कन्या देना चाहते हैं । मगर इनके दिलमें लवण और अंकुशके कुलके विषयमें संदेह है, इस लिए इनका क्या कुल है, सो आप पृथुको सुनाइए; ताकी इनका संदेह मिट जाय और ये सन्तुष्ट हों । "

नारद हँसे और बोलेः—" इन कुमारोंके वंशको कौन नहीं जानता है ? जिस कुलकी उत्पत्तिके प्रथम अंकुर भगवान श्री ऋषभदेव हैं; जिसकुलमें कथाप्रसिद्ध भरतादि चक्रवर्ती राजा होगये हैं; और इस समय जिस कुलके रामलक्ष्मण राज्य कर रहे हैं; उस कुलको कौन नहीं जानता है ? ये कुमार जिस समय गर्भमें थे, उस समय अयोध्याके लोगोंने अपवाद लगाया था इसी लिए रामने भयभीत होकर, सीताका परित्याग कर दिया था । "

अंकुशने हँसीके साथ कहाः—" हे महा मुनि ! रामने सीताको वनमें छोड़ा यह अच्छा नहीं किया, कई तरहसे

अपवाद मिटाया जा सकता था। रामने विद्वान होकर, न जाने ऐसा कार्य कैसे किया?" लवणने पूछाः— "वह अयोध्या यहाँसे कितनी दूर है? कि जहाँपर हमारे पिता सपरिवार निवास करते है?"

नारदने उत्तर दियाः—"विश्वभरमें निर्मल चरित्रवाले तुम्हारे पिता राम जहाँ रहते हैं, वह अयोध्या यहाँसे एक सौ साठ योजन दूर है।"

लवणने नम्रता पूर्वक वज्रजंघ राजासे कहाः—"हम वहाँ जाकर राम, लक्ष्मणको देखना चाहते हैं।"

वज्रजंघने उनकी बात स्वीकार कर ली। वहाँसे अयोध्याको जाना निश्चित होगया, इस लिए पृथुराजाने अपनी कन्या कनकमालाका बड़े ठाटसे अंकुशके साथ ब्याह कर दिया।

लवण और अंकुश वज्रजंघ और पृथु सहित वहाँसे रवाना हुए। मार्गमें कई देशोंको जीतते हुए वे लोकपुर नामा नगरके पास पहुँचे। वहाँ उस समय धैर्य और शौर्यसे सुशोभित कुबेरकान्त नामा अभिमानी राजा राज्य करता था। उन्होंने इसको रणभूमिमें जीत लिया। वहाँसे चलकर, उन्होंने विजयस्थलीमें भ्रातृशत नामा राजाको जीता। वहाँसे गंगानदीको पारकरके वे कैलाशपर्वतकी उत्तर दिशाकी ओर चले। उधर उन्होंने नंदन, चारू राजाके देशोंको जीता। फिर रूष, कुंतल, कालांबु, नंदि-

नंदन, सिंहल, शलभ, अनल, शूल, भीम और भूतरव, आदि देशके राजाओंको जीतते हुए, वे सिंधु नदीके किनारे जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने आर्य और अनार्य अनेक राजाओंको जीत लिया ।

इस भाँति वे अनेक देशोंके राजाओंको जीतकर वापिस पुंडरीकपुरमें आये। नगरजन वज्रजंघको धन्यवाद देते थे कि अहो राजा वज्रजंघको धन्य है कि, जिसके ऐसे पराक्रमी भानजे हैं । नगरमेंसे इनकी सवारी निकली । वीर राजा लवण और अंकुशके चारों तरफ थे । बीचमें दोनों जा रहे थे । पुरजन हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे उनको देख रहे थे ।

दोनोंने अपने भुवनमें पहुँच कर, अपनी माता–विश्व पावनी सीताके चरणोंमें नमस्कार किया । सीताने हर्षाश्रुओंसे स्नान कराते हुए उनका मस्तक चूमा, और आशीर्वाद दिया कि–" दोनों रामलक्ष्मणके समान होओ । "

लवण और अंकुशका अयोध्यामें जाना ।

तत्पश्चात लवण और अंकुशने वज्रजंघसे कहाः—" हे मामा, आपने हमें पहिले अयोध्या जानेकी सम्मति दी थी, उसको अब कार्यमें परिणत कीजिए । लंपाक, रुष, कालांबु, कुंतल, शलभ, अनल, शूल और अन्यान्य देशोंके राजाओंको आज्ञा दीजिए । प्रयाणके बाजे बजवाइए । और सेनासे दिशाओंको ढक दीजिए । ताकी हम लोग

जाकर, हमारी माताका त्याग करनेवाले रामका पराक्रम देखें।"

यह सुन सीता आँखोंमें पानीभर, गद्गद कंठ हो बोलीं—"हे वत्सो! ऐसा विचार कर, तुम अनर्थकी इच्छा क्यों करते हो? तुम्हारे काका और पिता देवताओंके लिए भी दुर्जय हैं। उन्होंने तीन लोकके कंटकरूप लंकापति राक्षस रावणका भी संहार कर दिया है। हे बालको! तुम यदि अपने पिताको देखना चाहते हो, तो नम्र होकर, वहाँ जाओ। क्योंकि:—

"पूज्ये हि विनयोऽर्हति।"

(पूज्य मनुष्योंके सामने विनय करना उचित है।)

राजकुमारोंने उत्तर दिया:—"हे माता! आपका त्याग करनेवाले राम हमारे शत्रुपदको प्राप्त कर चुके हैं। इस लिए अब हम उनका विनय कैसे कर सकते हैं? हम कैसे उनको जाकर कह सकते हैं कि हम दोनो तुम्हारे पुत्र हैं; तुम्हारे पास आये हैं। हमारी ऐसी कृति उनके लिए भी लज्जाकी कारण होगी। मगर यदि हम उनको युद्धके लिए आह्वान देंगे तो यह बात उनके लिए बहुत आनंदका कारण होगी। दोनों कुलोंकी शोभा भी इसीमें है।"

सीता कुछ न बोली। वे रुदन करती रहीं। दोनों कुमार बड़ी भारी सेना लेकर उत्साहके साथ अयोध्याकी तरफ रवाना हुए। कुल्हाड़ियों और कुदालियोंको लेकर

दश हजार पुरुष उनकी सेनाके आगे आगे मार्गको साफ करते हुए जाते थे। युद्धकी इच्छा रखनेवाले दोनों वीर क्रमशः अपनी सेनासे दिशाओंको आच्छादित करते हुए अयोध्याके पास जा पहुँचे।

अपने नगरके बाहिर बहुत बड़ी सेना आई जान; राम लक्ष्मणको विस्मय हुआ। दोनों मन ही मन मुस्कराये। लक्ष्मण बोलेः—“ आर्य बन्धु रामकी पराक्रमरूपी अग्निमें पतंगकी भाँति पड़कर मरनेके लिए कौन आया है ? ” तत्पश्चात शत्रुरूपी अंधकारमें सूर्यके समान, राम-लक्ष्मण सुग्रीवादि वीरों सहित युद्ध करनेके लिए नगरके बाहिर आये।

राम, लक्ष्मण और लवण, अंकुशका युद्ध।

नारदसे भामंडलने सीताके समाचार सुने। वह तत्काल ही विमानमें बैठकर, सीताके पास पुंडरीकपुरमें गया। सीताने रोते हुए कहाः--“ हे भ्राता ! रामने मेरा त्याग किया है। मेरा त्याग तेरे भानजोंके लिए असह्य हुआ है। इसी लिए वे रामसे युद्ध करनेको गये हैं। ”

भामंडलने कहाः—“ रामने रभसवृत्तिसे—बे सोचे समझे—तुम्हारा त्याग तो किया ही है; अब अपने पुत्रोंको मारनेका दूसरा अविचारी कार्य न कर बैठें; क्योंकि उन्हें खबर नहीं है कि लवण और अंकुश उनके पुत्र हैं। अतः

चलो राम उन्हें मार डालें इसके पहिले ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

तत्पश्चात सीताको अपने विमानमें बिठाकर, भामंडल लवण और अंकुशके पास उनकी छावनीमें आये। लवणांकुशने सीताको नमस्कार किया। सीताने उनको कहाः— "इनका नाम भामंडल है। ये तुम्हारे मामा हैं।" दोनोंने भाममंडलको भी प्रणाम किया। भामंडलने उनका मस्तक चूमा। उसका शरीर हर्षसे रोमांचित हो आया। उसने उन्हें अपनी गोदमें बिठा, गद्गद कंठ हो, कहाः— मेरी बहिन पहिले वीरपत्नी थी। सद्भाग्यसे अब वह वीरमाता भी हो गई है। तुम्हारे समान वीर पुत्रोंसे उसकी निर्मलता चंद्रसे भी विशेष हो गई है। हे पुत्रो! यद्यपि तुम वीरपुत्र हो; स्वयं वीर हो, तथापि पिता और काकाके साथ युद्ध न करना। क्योंकि रावणके समान योद्धा भी- जिसमें अतुल भुजबलके सिवा विद्याबलभी था-जिनके सामने युद्धमें न ठहर सका था; तब उन्हीं महाबाहु वीरोंके साथ केवल अपनी भुजाओंके बलसे युद्ध करनेका तुम कैसे साहस कर रहे हो?"

लवणांकुशने उत्तर दियाः—"हे मामा! आप स्नेहके वशमें होकर ऐसी भीरुता न दिखाइए। माताने भी हमको ऐसे ही कायरताके वचन कहकर, डराया था। हम जानते हैं कि, रामलक्ष्मणके सामने युद्ध करनेका किसीमें सामर्थ्य

नहीं है; परन्तु अब युद्धको छोड़कर, हम किसलिए उनको लज्जित करें?"

इधर इनके ऐसी बातें हो रही थीं; उधर रामकी और उनकी सेनामें प्रलयकालके मेघके तुल्य युद्ध प्रारंभ हुआ। इसलिए भामंडल इस आशंकासे युद्धमें आये कि, कहीं सुग्रीवादि खेचर इस भूचारी सेनाको न मार डालें।

तत्पश्चात अतिशय रोमांचके कारण जिनके कवच भी उच्छ्वसित हो उठे थे; ऐसे वे महा पराक्रमी कुमार युद्ध करनेके लिए तैयार हुए। निःशंक होकर युद्ध करते हुए सुग्रीवादिने युद्धमें सामने भामंडलको, देखकर, उससे पूछाः—"ये दोनों कुमार कौन हैं?" भामंडलने उत्तर दियाः—"ये रामके पुत्र हैं।" यह जान, सुग्रीवादि खेचर तत्काल ही सीताके पास आये और प्रणाम करके उनके सामने भूमिपर बैठ गये।

प्रलयकालके समुद्रकी भाँति उद्भ्रांत बने हुए दुर्द्धर और महापराक्रमी लवण और अंकुशने क्षणवारमें रामकी सेनाको भग्न कर दिया। वनके सिंहकी भाँति जिधर वे गये उधर ही रथी, घोड़ेसवार या हस्ति-सवार कोई भी आयुध हाथमें लेकर उनके सामने खड़ा न रह सका। इस भाँति रामकी सेनाको छिन्नविच्छिन्न करते हुए, अस्खलित गतिवाले वे वीर राम, लक्ष्मणके सामने युद्ध

करनेको आये । उन्हें देखकर, आपसमें रामलक्ष्मण कहने लगे—" अपने शत्रुरूप ये सुंदर कुमार कौन हैं ? "

रामने कहाः—" इन कुमारोंके लिए मनमें स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न हो रहा है; इनको हृदयसे लगा लेनेकी इच्छा हो रही है । इनके प्रति मनको विवश करके भी वैरभाव कैसा ला सकता हूँ ? समझमें नहीं आता कि इनके साथ कैसा वर्ताव करूँ ? "

इस तरह रथमें बैठे हुए राम, लक्ष्मणको कह रहे थे । उसी समय लवण और अंकुश उनके रथके सामने जा खड़े हुए । अंकुश बोलाः—" हमारी वीर-युद्धमें बड़ी श्रद्धा है । जगतके लिए अजेय रावणको आप जीतनेवाले हैं । आपको देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है । हे राम, लक्ष्मण आपकी जिस युद्ध—इच्छाको रावण पूरी न कर सका उसको हम पूरी करेंगे । आप हमारी इच्छा पूरी कीजिए । "

तत्पश्चात राम लक्ष्मणने और लवण—अंकुशने अपने अपने धनुषोंकी भयंकर ध्वनियुक्त टंकार की । कृतांत सारथीने रामके रथको और वज्रजंघने लवणके रथको एक दूसरेके मुकाबिलेमें खड़ा कर दिया । इसी भाँति लक्ष्मणके रथको विराधने और अंकुशके रथको पृथु राजाने एक दूसरेके रथके सामने खड़ा किया । चारोंका युद्ध प्रारंभ हुआ । उनके चतुर सारथि नानाभाँतिसे

रथोंको फिराते थे। चारों योद्धा नाना भाँतिसे एक दूसरे पर शस्त्रप्रहार करते थे।

क्योंकि लवण और अंकुश रामलक्ष्मणके साथका अपना संबंध जानते थे, इसलिए वे सापेक्ष-विचारके साथ-शस्त्रप्रहार करते थे और राम लक्ष्मण अजान थे, इसलिए वे निरपेक्ष होकर शस्त्र चला रहे थे।

विविध आयुधों द्वारा युद्ध करनेके बाद, युद्धका शीघ्र-ही अन्त कर देनेके लिए रामने अपने रथको शत्रुके ठीक सामने खड़ा करने की आज्ञा की। कृतान्तने उत्तर दिया:— "मैं क्या करूँ? हमारे रथके घोड़े बिलकुल थक गये हैं। शत्रुने मारे बाणोंके उनका सारा शरीर बींध दिया है। मैं चाबुक मारता हूँ, तो भी घोड़े शीघ्रतासे नहीं चलते हैं। रथ भी सारा जर्जर हो गया है। इतना ही नहीं मेरे भुज-दण्ड भी शत्रु-बाणोंके आघातसे जर्जरित हो गये हैं। इस लिए इनमें घोड़ोंकी रास और चाबुक पकड़नेकी भी शक्ति नहीं रही है।"

रामने कहा:—"मेरा वज्रावर्त धनुष भी चित्रस्थ-चित्रमें लिखे हुए धनुषकी भाँति शिथिल हो गया है। यह कोई कार्य नहीं कर सकता है। यह मूसल रत्न भी शत्रुका नाश करनेमें असमर्थ हो गया है। अब तो यह केवल नाज कूटने योग्य रह गया है। यह हलरत्न—जो दुष्ट राजारूपी हाथियोंको वश करनेमें अंकुशरूप था—आज

मात्र पृथ्वीको बाने योग्य रह गया है । जिन शस्त्रोंकी यक्ष रक्षा करते हैं; जो शस्त्र हमेशा शत्रुओंको नष्ट करते रहे हैं, उन्हीं शस्त्रोंकी आज यह क्या दशा हो गई है ? ”

इधर लवणके साथ युद्ध करते हुए, रामके शस्त्र निकम्मे हो गये । उसी भाँति अंकुशके साथ युद्ध करते हुए, लक्ष्मणके शस्त्रास्त्र भी निकम्मे हो गये ।

अंकुशने लक्ष्मणके हृदयमें वज्रके समान बाण मारा । उसके आघातसे लक्ष्मण रथमें ही गिरकर, मूर्च्छित हो गये । लक्ष्मणको मूर्च्छित देख, विराध घबराया । वह रथको रणभूमिमेंसे अयोध्याकी तरफ ले चला । चलते हुए लक्ष्मणको चेत आगया । इसलिए वे सरोष बोलेः— “ तूने यह नवीन काम क्या किया ? रामके भाई और दशरथके पुत्रके लिए युद्धभूमिसे चला जाना अनुचित है । इसलिए जहाँ मेरा शत्रु है वहाँ मुझको शीघ्रतासे ले चल । मैं तत्काल ही चक्रद्वारा शत्रुका शिरच्छेद कर दूँगा । ”

नारदका रामको-लवणांकुशका-हाल बताना ।

लक्ष्मणके ऐसे वचन सुन, विराधने रथको वापिस युद्ध भूमिकी ओर चलाया । रथ रणभूमिमें पहुँचा । खड़ा रह, खड़ा रह ’ कहते हुए लक्ष्मणने चक्रको उठाकर घुमाया । घूमता हुआ चक्र घूमते हुए सूर्यका भ्रम कराने लगा घुमाकर लक्ष्मणने वह अस्खलित गतिवाला चक्र क्रोधपूर्वक अंकुशपर चलाया । आते हुए चक्रको रोकनेके

लिए लवणने और अंकुशने बहुत बाण मारे; परन्तु वह नहीं रुका। वह वेग पूर्वक आ अंकुशके प्रदक्षिणा दे, वापिस लक्ष्मणके हाथमें चला गया। जैसे कि, पक्षी अपने घौंसलेमें आते हैं। लक्ष्मणने दूसरीवार और चलाया। दूसरीवार भी वह उसी भाँति अंकुशके प्रदक्षिणा देकर, वापिस लक्ष्मणके हाथमें चला गया; जैसे कि छूटा हुआ हाथी वापिस अपने ठाणमें—गजशालामें—चला जाता है।

यह देखकर, रामलक्ष्मण सखेद विचार करने लगेः—"क्या ये ही दोनों कुमार भरतक्षेत्रमें बलदेव और वासुदेव हैं? हम नहीं हैं?" वे इस तरह विचार रहे थे, उसी समय नारद मुनि सिद्धार्थ सहित वहाँ आये। उन्होंने खेदित रामलक्ष्मणसे कहाः—"हे रघुनाथजी! इस हर्षके स्थानमें तुम खेद कैसे कर रहे हो? ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। सीताकी कूखसे इनका जन्म हुआ है। नाम इनके लवण और अंकुश हैं। युद्धके बहाने ये तुम्हें देखनेके लिए आये हैं। ये तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। तुम्हारा चक्र उनपर नहीं चला। इसका यही कारण है कि, वे तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। प्राचीन समयमें भी बाहुबलिपर भरतका चक्र नहीं चला था।"

तत्पश्चात नारदने सीताके त्यागसे लेकर, इस युद्धतक जगतको विस्मित करनेवाला वृत्तान्त कह सुनाया। उसको सुनकर आश्चर्य, लज्जा, हर्ष और शोकसे व्याकुल होकर

राम मूर्च्छित हो गये। उनपर चंदनका जल सिंचित किया गया। उससे उनको चेत हुआ। पुत्रवात्सल्य-परिपूर्ण हृदयी राम साश्रुनयन हो लक्ष्मणको साथ ले, लवण और अंकुशसे मिलने चले। उनको आते देख, विजयी लवण और अंकुश शस्त्रास्त्रोंका परित्याग कर, रथसे उतर सामने जा, क्रमशः रामलक्ष्मणके चरणोंमें पड़े। उनको उठा, हृदयसे लगा, गोदमें बिठा रामने उनके मस्तकको चूमा। फिर शोक और स्नेहसे आकुल होकर राम उच्च स्वरसे रुदन करने लगे। रामकी गोदमेंसे लक्ष्मणने उनको अपनी गोदमें ले लिया और सीनेसे लगा साश्रुनयन उनके मस्तकको चूमा। पिताके तुल्य ही शत्रुघ्नको समझ उन्होंने इनके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया। शत्रुघ्नने भी उन विनीत पुत्रोंको उठाकर, आलिंगन दिया। दोनों ओरके अन्यान्य राजा उस जगह एकत्रित होगये और इस अपूर्व मिलन-आनंदको देखकर हर्षित होने लगे।

शुद्धिके लिए सीताका अग्निमें प्रवेश करना।

सीता अपने पुत्रोंका पराक्रम और उनके पिताके साथ उनका मिलन देख, हर्षित हो, वहाँसे विमानमें बैठकर पुण्डरीकपुर चली गई। अपने ही समान बली पुत्रोंको प्राप्त कर, रामलक्ष्मण बहुत हर्षित हुए। सारे भूचर और खेचर भी प्रसन्न हुए। भामंडलने वज्रजंघकी पहिचान करवाई। इसने चिरकालके सेवककी तरह रामलक्ष्मणको प्रणाम किया।

रामने वज्रजंघसे कहाः-" हे भद्र! तुमने मेरे पुत्रोंका लालन पालन करके बड़ा किया और उन्हें इस स्थितिमें पहुँचाया, इस लिए तुम मेरे लिए भामंडलके समान हो।"

तत्पश्चात रामलक्ष्मण अपने पुत्रों सहित पुष्पक विमानमें बैठकर, अयोध्याकी ओर चले। लोग विस्मयके साथ ऊँची गर्दनें कर, पंजोंपर खड़े हो लवण, अंकुशको देखते थे और उनकी स्तुति करते थे। राम अपने महलोंके पास पहुँचे। विमानमेंसे उतरकर अंदर गये। उन्होंने नगरमें पुत्रागमनका बहुत बड़ा महोत्सव कराया।

एक वार लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान और अंगद आदिने मिलकर रामसे विनती कीः—" हे राम! देवी सीता आपके विरहका दुःख झेलती हुई विदेशमें अपने दिन निकाल रही हैं। अब कुमारोंका वियोग हो जानेसे वे और भी ज्यादा दुखी होंगी। इसलिए यदि आप आज्ञा दें, तो हम उनको यहाँ ले आवें। यदि आप उन्हें यहाँ नहीं बुलायँगे तो पति, पुत्र विहीना सीता मर जायँगी।

रामने जरासी देर सोचा और कहाः—" सीता ऐसे ही कैसे बुलाई जा सकती है? लोकापवाद मिथ्या होने पर भी वह बहुत बड़ा अन्तराय है। मैं जानता हूँ कि सीता सती है। वह भी अपने आत्माको पवित्र मानती है, सारे लोगोंके सामने सीता दिव्य करे। फिर मैं उस शुद्ध सतीको ग्रहण कर लूँगा।"

" ऐसा ही होगा । " कह कर वे वहाँसे उठ गये। उन्होंने जाकर, नगरके बाहिर विशाल मंडप बनवाया । उसके अंदर गेलेरियाँ–बैठकें–बनवाई । उनमें राजा लोग, मंत्रीगण, नगरवासी, राम लक्ष्मण, और विभीषण, सुग्रीव आदि खेचर आकर बैठे । रामने सुग्रीवको, सीताको लानेकी आज्ञा दी । सुग्रीव उठकर पुंडरीकपुर गया । उसने सीताको नमस्कार कर कहाः– " हे देवी ! रामने आपके लिए पुष्पक विमान भेजा है, इसलिए इसमें सवार होकर अयोध्या चलिए । "

सीताने उत्तर दियाः—" रामने मुझे जंगलमें छुड़वा दिया । वह दुःख भी अब तक मेरे हृदयसे शान्त नहीं हुआ, तो फिर दूसरा दुःख देनेको बुलानेवाले रामके पास मैं कैसे चलूँ ? "

सुग्रीवने फिरसे नमस्कार कर कहाः—" हे सती ! कोप न करो । रामने आपकी शुद्धि करनेका निश्चय किया है । मंडप तैयार है । वे अन्यान्य राजाओं और पुरवासियों सहित वहीं बैठे हुए हैं ! "

सीता यह बात तो–शुद्ध होनेकी परीक्षा तो–पहिलेहीसे चाहती थीं । इसलिए वे सुग्रीवकी अन्तिम बात सुनकर विमानमें सवार हो गईं । सुग्रीव सहित वे अयोध्याके पास महेन्द्रोद्यानमें जाकर उतरीं । वहाँ लक्ष्मणने और अन्यान्य राजाओंने अर्घ समर्पण कर उनको नमस्कार किया। फिर लक्ष्मणादि सब राजा उनके सामने बैठ गये और कहने

लगे:—" हे देवी ! अपने नगर और गृहमें प्रवेश कर उनको पवित्र कीजिए ।'

सीताने उत्तर दिया:—" हे वत्स ! शुद्धि प्राप्त करनेके बाद मैं नगरमें प्रवेश करूँगी; क्योंकि ऐसा हुए बिना अपवाद कभी शान्त नहीं होगा । "

सीताका यह दृढ निश्चय उन्होंने जाकर, रामको सुनाया । राम वहाँ आये और सीतासे न्याय निष्ठुर वचन बोले:—" तुम रावणके यहाँ रहकर भी यदि शुद्ध रही हो; यदि रावणने तुमको अपवित्र न किया हो; तो अपनी शुद्धिके लिए सबके सामने दिव्य करो । "

सीताने मुस्कराते हुए रामसे कहा:—" आपके समान अन्य ऐसा कौन बुद्धिमान होगा; जो दोष जाने विना ही किसीको वनमें छोड़ देता होगा । यह भी आपकी विचक्षणता ही है कि दण्ड देकर अब आप परीक्षा करने बैठे हैं । जो हो सो । मैं परीक्षा देनेको तैयार हूँ ।'

सीताके वचन सुन, राम म्लानमुख होकर, बोले:—" हे भद्रे ! मैं जानता हूँ कि, तुम सर्वथा निर्दोष हो, तो भी लोगोंके हृदयोंमें जो दोष भाव उत्पन्न हुए हैं; उनका निवारण करना आवश्यकीय है । "

सीताने कहा:—" मैं पाँचों प्रकारके दिव्य करनेको तैयार हूँ । कहो तो अग्निमें प्रवेश करूँ; कहो तो मंत्रित तांदुल भक्षण करूँ; कहो तो (कच्चे धागोंके) तराजूपर चढ़ूँ; कहो तो पिघला हुआ शीशा पीऊँ और कहो तो

अपनी जीभसे शस्त्रके फलको उठा लूँ। इनमेंसे आप कहें वही दिव्य मैं करनेको तैयार हूँ।"

उस समय अन्तरिक्षस्थ नारदने और सिद्धार्थने और भूमिस्थ लोगोंने, कोलाहलको बंद करके, कहाः—"हे राघव! सीता वास्तवमें सती है! सती है! महा सती है! इसमें आपको लेशमात्र भी संदेह नहीं करना चाहिए।"

रामने कहाः—"हे लोगो! तुम सर्वथा मर्यादा विहीन हो। मेरे हृदयमें संकल्प दोष तुम्हारे ही कारणसे उत्पन्न हुआ है। पहिले तुम्हींने सीताको दूषित बताया था और आज तुम्हीं उसे यहाँपर सती बता रहे हो। यहाँसे जाकर, फिर तुम कोई तीसरी ही बात कहने लगोगे। पहिले सीता कैसे दूषित थीं और अब वे कैसे शीलवान हो गई? फिर भी तुम उन्हें दूषित बता सकते हो; इसलिए मेरी यही इच्छा है कि, सीता सबकी प्रतीतिके लिए अग्नि-दिव्य करें—अग्निप्रवेश करें।"

तत्पश्चात रामने तीन सौ हाथ लंबा चौड़ा और दो पुरुष प्रमाण गहरा खड्डा करवाया और उसको चंदनकी लकड़ियोंसे भरवाया।

वैताढ्य गिरिकी उत्तर श्रेणीमें हरिविक्रम राजाका जयभूषण नामा कुमार था। उसके आठ सौ विवाहित स्त्रियाँ थीं। एक वार उसने अपनी किरणमंडला नामा स्त्रीको—हिमशिख नामा उसके मामाके साथ सोते हुए देखा। उसको क्रोध उत्पन्न हुआ। इसलिए उसने किरणमंडलाको

निकाल दिया। फिर उसको वैराग्य हो आया, इसलिए उसने दीक्षा लेली। किरणमंडला मरकर, विद्युद्दंष्ट्रा नामा राक्षसी हुई। जयभूषण दिव्यवाले दिनकी पहिली रातको अयोध्याके बाहिर काउसग्ग करने लगे। विद्युद्दंष्ट्रा वहाँ–आकर, उनको सताने लगी। मुनि अचल रहे। शुभ ध्यानके बलसे उनको दिव्यवाले दिन ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान महोत्सवके लिए इन्द्रादि देव वहाँ आये। उसी समय उधर सीता शुद्धिके लिए अग्निमें प्रवेश करनेवाली थीं। यह बात देवताओंने देखी। उन्होंने इन्द्रसे जाकर कहाः—"हे स्वामी! लोगोंके मिथ्या अपवादसे सीता आज अग्निमें प्रवेश कर रही हैं।" सुनकर इन्द्रने अपनी प्यादा सेनाके सेनापतिको सीताकी सहायताके लिए भेजा और आप जयभूषण मुनिका केवलज्ञान महोत्सव करनेमें रत हुआ।

उधर रामकी आज्ञासे चंदनपूरित खड्डेमें सेवकोंने आग लगा दी। अग्नि भयंकर रूप धारण कर जल उठी। आँखोंके लिए उसकी ओर देखना कठिन हो गया। अग्निकी विकराल ज्वालाओंको देखकर, रामने हृदयमें सोचा,– अहो! यह कार्य तो अति विषम होगया है। यह महा सती तो अभी निःशंक होकर अग्निमें प्रवेश करेगी। प्रायः दैवकी और दिव्यकी विषम गति होती है। सीता मेरे साथ वनमें गई; रावणने उसका हरण किया। फिर मैंने उसको अरण्यमें छोड़ा, और अन्तमें अग्निप्रवेशका यह कष्ट उप-

स्थित हुआ। यह सब कुछ मैंने ही किया है; मेरे ही द्वारा हुआ है।"

राम इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय सीता खड्डेके पास गईं और सर्वज्ञका स्मरण कर, बोलीं:—"हे लोकपालो! हे लोगो! सुनो, यदि अब तक मैंने रामके विना किसी अन्य पुरुषकी इच्छाकी हो, तो यह अग्नि मुझको जला देवे और यदि नहीं की हो, तो इसका स्पर्श जलके समान शीतल हो जाय।"

फिर नवकार मंत्रका जाप करती हुई, सीता अग्नि-कुंडमें कूद पड़ी। उनके कुंडमें पड़ते ही आग बुझगई। वह खड्डा स्वच्छ जलसे भरकर सरोवरके समान होगया। देवोंने सीताके सतीत्वसे संतुष्ट होकर उस जलमें कमलपर सिंहासन बना दिया। सीता उस सिंहासनपर बैठी हुई दृष्टिगत हुई। उसका जल समुद्र जलकी भाँति तरंगित होता हुआ दिखाई दिया। जलमेंसे कहींसे हुंकार ध्वनि उठ रही थी, कहींसे गुल गुल शब्द निकल रहा था, कहींसे भेरीकीसी आवाज आ रही थी, कहींसे 'दिलि दिलि' शब्द होता सुनाई पड़ रहा था और कहीं 'खल खल' शब्द हो रहा था।

तत्पश्चात समुद्रके चढावकी भाँति उस खड्डेमेंसे जल उछलने लगा। वह बाहिर निकल कर बड़े बड़े मंचोंको बहाने, और डुबाने लगा। विद्याधर भयभीत होकर, आकाशमें उड़े और आकाशमें चले गये। मगर भूचर मनुष्य पुकारने

सीताजीका अग्निप्रवेश।   पृष्ठ ४२६.

लगे:—" हे महासती सीता ! हे देवी ! हमें बचाओ ! हमारी रक्षा करो ! " सीताने उस ऊँचे उठते हुए जलको अपने दोनों हाथोंसे दबाया । इससे जल वापिस पूर्ववत होगया । उस सरोवरकी शोभा बहुत ही मनोहर थी । उसमें उत्पल, कुमुद और पुंडरीक जातिके कमल खिल रहे थे । कमलोंकी सुगंधिसे उद्भ्रांत होकर भँवर उसमें संगीत कर रहे थे । उसके चहुँ ओर मणिमय पाषाणोंसे बँधे हुए घाट सुशोभित हो रहे थे । निर्मल जलकी तरंगें घाटोंपर आ आकर टकराने लग रहीं थीं ।

सीताके शीलकी प्रशंसा करते हुए नारदादि आकाश में नृत्य करने लगे । संतुष्ट देवताओंने सीता पर पुष्पवृष्टि की । ' अहो ! रामकी पत्नी सीताका शील कैसा यशस्वी है ? ' इस घोषणासे पृथ्वी और आकाश मंडल भरगये । अपनी माताके प्रभावको देखकर लवण और अंकुश बहुत ही हर्षित हुए । वे हंसकी भाँति तैरते हुए उनके पास गये । सीताने उनको, मस्तक सूँघकर, अपने दोनों तरफ बिठाया । वे दोनों कुमार, नदीके दो किनारोंपर रहे हुए हाथीके बच्चोंकी तरह सुशोभित होने लगे ।

सीताका दीक्षाग्रहण ।

उस समय, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भामंडल, विभीषण, और सुग्रीव आदि वीरोंने आकर भक्ति पूर्वक सीताको नमस्कार किया । तत्पश्चात अति मनोहर कान्तिवाले राम भी सीता-

के पास आये। उनका हृदय पश्चात्ताप और लज्जासे परिपूर्ण हो रहा था। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहाः—" हे देवी! स्वभावसे ही असत् दोषको ग्रहण करनेवाले नगरवासियोंके पीछे लगकर, मैंने तुम्हारा त्याग किया; उसके लिए मुझे क्षमा करो। भयंकर जन्तुपूर्ण वनमें रहकर भी तुम अपने प्रभावसे जीवित रही। यह भी एक प्रकारसे तुम्हारा दिव्य ही था। मैं इसको न समझ सका। अस्तु। अब सब गई बातोंके लिए मुझे क्षमा करो; इस पुष्पकविमानमें बैठकर घर चलो और पूर्वकी भाँति ही मुझको आनंदित करो।"

सीताने उत्तर दियाः—" इसमें आपका या लोगोंका कोई भी दोष नहीं है। मेरे पूर्व कर्मोंका ही दोष है। अतः दुःखके चक्रमें डालनेवाले कर्मोंसे छुटकारा पानेके लिए, उनको नष्ट करनेके लिए; मैं तो अब दीक्षा ग्रहण करूँगी।"

तत्पश्चात उसी समय सीताने अपने हाथोंसे केशलोच किया; और प्रभु जैसे अपने केश इन्द्रको देते हैं, वैसे ही सीताने अपने केश रामको देदिये। यह देखकर, रामको मूर्च्छा आगई। राम मूर्च्छासे उठे भी नहीं थे, इसके पहिले ही सीता जयभूषण मुनिके पास चली गई। जयभूषण केवलीने उसी समय उनको सविधि दीक्षा दी। फिर मुनिने, तप परायणा साध्वी सीताको, सुप्रभा नामा गणिनी—गुरणी—के परिवारमें सौंप दिया।

सर्ग दसवाँ।

रामका निर्वाण।

रामका जयभूषण मुनिके पास जाना।

राम चंदनजलसे सिंचित किये गये। उनकी मूर्च्छा भंग हुई। वे स्वस्थ होकर बोलेः—"मनस्विनी सीता कहाँ है? हे भूचरो! हे खेचरो! यदि तुम मरना नहीं चाहते हो तो, मेरी सीता मुझे बताओ। उसने लोच करलिया तो कोई हानि नहीं है। हे वत्स लक्ष्मण! मुझे तत्काल ही धनुषबाण दो। मैं इतना दुखी हो रहा हूँ तो भी ये सब उदासीन और स्वस्थ कैसे हो रहे हैं?"

इतना कह राम अपना धनुषबाण उठाने लगे। लक्ष्मण बोलेः—"हे आर्य! आप यह क्या कर रहे हैं? ये सारे तो आपके सेवक हैं। न्यायके लिए दोषके भयसे आपने जैसे सीताका त्याग किया था, वैसे ही स्वार्थके लिए—आत्महितके लिए—सीताने हम सबको छोड़ दिया है। आपकी प्रिया सीताने लोच आपके सामने ही किया था। यहाँसे जाकर उन्होंने जयभूषण मुनिके पाससे दीक्षा लेली है। इन महर्षिको इसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनका ज्ञानमहोत्सव करना हमारा भी कर्तव्य है।

हे स्वामी ! महाव्रतधारिणी स्वामिनी सीता भी वहीं हैं। अब वे निर्दोष शुद्ध सती-मार्गकी भाँति मोक्ष मार्ग बता रही हैं। ”

लक्ष्मणके वचन सुनकर राम स्थिर हुए और कहने लगेः—“ हे बन्धु ! प्रिया सीताने केवलीके पाससे व्रत ग्रहण किया; यह बहुत ही अच्छा किया। ”

तत्पश्चात राम जयभूषण मुनिके पास गये। और नमस्कार करके उनके सामने बैठ गये। मुनिकी देशना सुनी। फिर रामने पूछाः—“ हे स्वामी ! मैं आत्माको नहीं जानता हूँ, इसलिए कृपा करके बताइए कि मैं भव्य हूँ या अभव्य ? ” केवलीने उत्तर दियाः—“ हे राम ! तुम केवल भव्य हो। इतना ही नहीं, तुम इसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें जानेवाले हो। ” रामने फिर पूछाः—“ हे भगवान ! मोक्ष तो दीक्षा लेनेसे मिलता है, और दीक्षा सबका त्याग करनेको ली जाती है। मगर बन्धु लक्ष्मणको छोड़ना मेरे लिए कष्टसाध्य है। फिर मैं मोक्षमें कैसे जा सकता हूँ ? ” केवलीने उत्तर दियाः—“ अबतक तुम्हें बलदेवकी संपत्ति भोगना है। उस भोगावलीके पूर्ण होनेपर तुम निःसंग-वैरागी-बनोगे और दीक्षा लेकर मोक्षमें जाओगे; शिवसुख पाओगे। ”

राम और सुग्रीवका पूर्वभव।

विभीषणने नमस्कार कर मुनिसे पूछाः—“ हे स्वामी !

रावणने पूर्वजन्मके कौनसे कर्मके कारण सीताका हरण किया ? कौनसे कर्मके कारण लक्ष्मणने उसको मारा ? और सुग्रीव, भामंडल, लवण, अंकुश और मैं कौनसे कर्मके कारण रामपर इतना स्नेह रखते हैं ? "

मुनि बोलेः—" दक्षिण भरतार्द्धमें क्षेमपुर नामका एक नगर है। उसमें नयदत्त नामा एक वणिक रहता था। उसकी स्त्री सुनंदाके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। एकका नाम था धनदत्त और दूसरेका वसुदत्त । उन दोनोंकी याज्ञवल्क्य नामा एक ब्राह्मणके साथ मित्रता हो गई। उसी नगरमें सागरदत्त नामा एक वणिक और था। उसके दो सन्तान थी। एक था गुणधर नामा पुत्र और दूसरी थी गुणवती नामा कन्या। सागरदत्तने नयदत्तके गुणवान पुत्र धनदत्तके साथ अपनी कन्याकी सगाई कर दी। कन्याकी माता रत्नप्रभाने-धनके लोभमें आकर, श्रीकान्त नामा एक धनाढ्यके साथ गुप्त रीतिसे—कन्याका संबंध करना ठीक किया। याज्ञवल्क्यको यह बात मालूम हो गई। मित्रोंकी वंचना सहनेमें असमर्थ याज्ञवल्क्यने अपने मित्रोंको यह खबर सुनाई। सुनकर वसुदत्त श्रीकान्तको मारनेके लिए गया। दोनोंके परस्पर तलवारकी चोटें लगीं। दोनों ही इस संसारको छोड़कर चल बसे। वहाँसे मरकर, दोनों विंध्याटवीमें मृग हुए। गुणवती भी कँवारी ही मरकर उसी अटवीमें मृगी हुई। वहाँ भी उन्होंने

इस मृगी के लिए परस्पर युद्ध करके अपने प्राण खोये। इस भाँति परस्पर वैरके कारण वे भवभ्रमण करते रहे।

धनदत्त अपने भाईकी मृत्युसे बहुत दुखी हुआ और धर्म रहित भावोंसे इधर उधर भटकने लगा। एक रातको क्षुधातुर धनदत्तने कुछ साधुओंको देखा। उनके पाससे उसने भोजन माँगा। उनमेंसे एक मुनिने कहाः—"हे भाई! मुनि लोग दिनमें भी अन्नसंग्रह करके नहीं रखते हैं; फिर रातमें तो उनके पास अन्न हो ही कैसे सकता है? हे भद्र! तुझको भी रातमें खान, पान नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसे अंधकारमें अन्नादिमें रहे हुए जीवोंको कौन देख सकता है?"

मुनिका बोध उसके हृदयको अमृत-सिंचनके समान सुखदायी जान पड़ा। वह श्रावक बना। आयु पूर्णकर मरा और सौधर्म देवलोकमें देवता हुआ। वहाँसे चवकर, वह महापुर नगरमें धारिणीकी कूखसे मेरु सेठके घर पद्मरुचि नामा पुत्र होकर जन्मा। पूर्ण श्रावक बना। एक वार पद्मरुचि घोड़ेपर चढ़कर गोकुलमें जा रहा था; दैव-योगसे मार्गमें उसने एक बूढ़े बैलको मरणासन्न पड़े हुए देखा। वह दयालु हृदयी अपने घोड़ेसे उतरकर बैलके पास गया। उसके कानमें उसने नवकार मंत्र सुनाया। नवकार मंत्रके प्रभा-वसे बैल मरकर, उस नगरके राजा छत्रच्छायाके घर श्रीदत्ता रानीकी कूखसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। वृषभध्वज उसका

नाम रक्खा गया। एक वार फिरता हुआ वह वृद्ध वृषभके मृत्युस्थानपर पहुँच गया। पूर्व जन्मके स्थानको देखकर, उसको जातिस्मरण ज्ञान हो आया। इसलिए उसने उसी स्थानपर एक चैत्य बनवाया। चैत्यकी एक ओरकी भींतपर उसने एक चित्र बनावाया। उस चित्रमें दिखाया कि, एक वृद्ध बैल मरणासन्न पड़ा हुआ है, उसके कानमें एक व्यक्ति नवकार मंत्र सुना रहा है और उसके पास ही एक कसा कसाया घोड़ा खड़ा है। फिर उसने चैत्यके रक्षकोंसे कहा कि, जो व्यक्ति इस चित्रके परमार्थको समझ जाय उसकी मुझको सूचना देना। कुमार अपने महलमें गया।

एकवार पद्मरुचि सेठ चैत्यमें वंदना करनेके लिए आया, वहाँ अर्हतको वंदना करके उसने भींतपर बने हुए चित्रको देखा। उसको देखकर, विस्मित हुआ और बोला:—"इस चित्रमें बताई हुई बातें तो सब मेरे साथ बीती हुई हैं।" रक्षकोंने जाकर राजकुमार वृषभध्वजको यह खबर दी। राजकुमार तत्काल ही मंदिरमें आया। उसने सेठसे पूछा:—"क्या तुम इस चित्रका वृत्तान्त जानते हो?" सेठने उत्तर दिया:—"मरते हुए बैलके कानमें मुझे नवकार मंत्र सुनाते देखकर, ही किसीने यह चित्र बनाया है।" सुनकर वृषभध्वजने सेठको नमस्कार किया और कहा:—"हे भद्र! यह वृद्ध वृषभ मैं ही हूँ। नवकार मंत्रके प्रभावसे मैं राजकुमार बना हूँ। आपने कृपाकरके,

क्षमा कीजिए ।" उसके वचन सुन, लोग फिरसे मुनिकी पूजा करने लग गये । वेगवती भी उसी समयसे परम श्रद्धालु श्राविका होगई । उसको रूपवती देखकर शंभु राजाने उसको माँगा । श्रीभूतिने उत्तर दियाः—"मैं किसी मिथ्या-दृष्टिको अपनी कन्या नहीं दूँगा ।" इससे शंभु राजाने श्रीभूतिको मारडाला और वेगवतीके साथ बलात् संभोग किया । उस समय उसने शाप दियाः—"भवांतरमें मैं तेरी मृत्युका कारण होऊँगी ।"

तत्पश्चात शंभु राजाने वेगवतीको छोड़ दिया उसने हरिकान्ता साध्वीके पास जाकर दीक्षाली और मरकर ब्रह्मदेवलोकमें गई । वहाँसे चवकर वह जनक राजाकी पुत्री जानकी हुई; और पूर्वभवके शापके कारण वह शंभु राजाके जीव राक्षस पति रावणकी मृत्युका हेतु हुई । पूर्व भवमें उसने सुदर्शन मुनिपर मिथ्या दोष लगया था, इस लिए इस भवमें लोगोंने भी उसपर मिथ्या दोष लगाया ।

शंभु राजाका जीव भव भ्रमण करके कुशध्वज नामा ब्राह्मणकी स्त्री सावित्रीके गर्भसे प्रभास नामा पुत्र हुआ । कुछ कालबाद उसने विजयसेन नामा मुनिके पाससे दीक्षा ली । दुर्द्धर तप करता हुआ वह अनेक प्रकारके परिसह सहने लगा । प्रभास मुनिने एकवार विद्याधरोंके राजा कनकप्रभको, इन्द्रके समान समृद्धि सहित संवेतशिखरकी यात्राको जाते हुए देखा । मुनिने उस समय नियाणा

बाँधा-निदान किया-कि इस तपके फल स्वरूप मैं भी इस विद्याधरके समान समृद्धिवान होऊँ । वहाँसे मरकर वह तीसरे देवलोकमें देवता हुआ और वहाँसे चवकर हे विभीषण ! वह तुम्हारा बड़ा भाई रावण हुआ और कनकप्रभकी समृद्धिको देखकर उसने निदान किया था इसलिए वह खेचरोंका स्वामी बना ।

धनदत्त और वसुदत्तके मित्र याज्ञवल्क्य ब्राह्मणका जीव भवभ्रमण करके विभीषण हुआ-तू हुआ । शंभुके मार डालनेपर श्रीभूतिका जीव स्वर्गमें गया । वहाँसे चवकर, सुप्रतिष्ठापुरमें पुनर्वसु नामका विद्याधर हुआ । एकवार कामातुर होकर उसने पुंडरीक विजयमेंसे त्रिभुवनानंद नामा चक्रवर्तीकी कन्या अनंगसुंदरीका हरण किया । चक्रवर्तीने उसके पीछे विद्याधर भेजे । पुनर्वसु युद्ध करनेमें आकुल-व्याकुल-हो रहा था । अनंगसुंदरी उसके विमानमेंसे एक लतागृह पर गिर पड़ी । पुनर्वसुने उसकी प्राप्तिका निदानकर दीक्षा ली । वहाँसे मरकर वह देवलोकमें गया और वहाँसे चवकर उसका जीव यह लक्ष्मण हुआ है ।

अनंगसुंदरी वनमें रहकर उग्र तप करने लगी । अंतमें उसने अनशन किया । अनशनमें उसको अजगर निगल गया । समाधिसे मरकर वह देवलोकमें देवी हुई । वहाँसे

चवकर वह विशल्या नामा लक्ष्मणकी स्त्री हुई है। गुण-धर नामा गुणवतीका भाई भवभ्रमण करके कुंडलमंडित नामा राजपुत्र बना। उस भवमें उसने चिरकालतक श्रावक व्रत पाला और अन्तमें मरकर सीताका सहोदर भ्राता-भामंडल हुआ।

काकंदी नामा नगरीमें वामदेव ब्राह्मणकी पत्नी श्याम-लाके वसुनंद और सुनंद नामा दो पुत्र हुए। एकवार वे दोनों अपने घरमें बैठे हुए थे। उसी समय मासोप-वासी मुनि आये। उन्होंने भक्ति पूर्वक उनको प्रतिलाभा। दानधर्मके प्रभावसे दोनों मरकर, उत्तरकुरुमें युगलिया हुए। वहाँसे मरकर, वे सौधर्म देवलोकमें देवता हुए। वहाँसे चवकर, फिर काकंदी पुरीहीमें वामदेवराजाकी सुदर्शना नामा स्त्रीकी कूखसे वे प्रियंकर और शुभंकर नामा दो पुत्र जन्मे। वहाँ चिरकालतक राज्यकरनेके बाद वे दीक्षा लेकर मरे और ग्रैवेयकमें देवता हुए। वहाँसे चव-कर, दोनों लवण और अंकुश हुए हैं। इनके पूर्व भवकी माता सुदर्शना चिरकालतक भवभ्रमण करके यह सिद्धार्थ हुआ है; जिसने रामके दोनों पुत्रोंको पढ़ाया है।"

इस भाँति जयभूषण मुनिसे पूर्व भव सुनकर कई लोगोंको वैराग्य हो आया। रामके सेनापति कृतान्तने तत्काल ही दीक्षा ले ली। रामलक्ष्मण जयभूषण मुनिको वंदना कर, वहाँसे सीताके पास गये। सीताको देखकर

राम चिन्तित भावसे सोचने लगे,—" शिरीष कुसुमके समान सुकोमल राजकुमारी सीता शीत और आतापके क्लेशको कैसे सहेगी ? यह कोमलांगी सारे भारोंसे भी अधिक और हृदयसे भी दुर्वह संयमभारको कैसे सहेगी ?" फिर उन्हें विचार आया,—" जिसके सती व्रतको रावण भी भग्न न कर सका, वह सती संयममें भी अपनी प्रतिज्ञाका अवश्यमेव निर्वाह कर सकेगी।" तत्पश्चात रामने सीताको वंदना की। उसके बाद शुद्ध हृदयी लक्ष्मणने और अन्यान्य राजाओंने भी उनको वंदना की। फिर राम अपने परिवार सहित अयोध्यामें गये।

सीताने और कृतान्तवदनने उग्र तप करना प्रारंभ किया। कृतान्तवदन तप करता हुआ मरा और ब्रह्मलोकमें देव हुआ। सीता साठ वर्ष पर्यन्त नाना भाँतिका तप कर, तेतीस दिन रात तक अनशन रह, मरीं और अच्युतेन्द्र हुई। बाईस सागरोपमका आयुष्य हुआ।

कनक राजाकी लड़कियोंके साथ लवणांकुशके लग्न।

वैताढ्य गिरिपर कांचनपुर नगर है। उसमें विद्याधरोंका राजा कनकरथ राज्य करता था। उसके मंदाकिनी और चंद्रमुखी नामा दो कन्याएँ थीं। उसने कन्याओंका स्वयंवर किया। उसमें रामलक्ष्मणादि बड़े बड़े राजाओंको उनके पुत्रों सहित बुलाया। सारे जा, जाकर स्वयंवर मंडपमें जमा हुए। मंदाकिनीने अनंगलवणको और चंद्रमुखीने

मदनांकुशको निज इच्छानुसार वरा । यह देखकर, लक्ष्मणके ढाई सौ पुत्र क्रोध करके युद्ध करनेको तैयार हुए । सुनकर लवणांकुशने कहा:—" उनके साथ कौन युद्ध करेगा ? (हम नहीं करेंगे) क्योंकि वे भाई हैं, इसलिए अवध्य हैं । जैसे राम लक्ष्मणमें छोटे बड़ेका कुछ भेद नहीं है, वैसे ही हमारेमें भी भेद नहीं होना चाहिए । " लक्ष्मणके पुत्रोंको गुप्तचरोंने जाकर यह बात कही । लक्ष्मणके पुत्र अपने अकृत्य-विचारके लिए निजात्माकी निंदा करने लगे, और वैराग्य प्राप्तकर, माता पिताकी आज्ञा ले महाबल मुनिके पास जाकर दीक्षित होगये । अनंगलवण और मदनांकुश दोनों कन्याओंके साथ लग्न कर बलभद्र और वासुदेवके साथ अयोध्यामें आये ।

भामंडलकी मृत्यु ।

एकवार भामंडल राजा अपने नगरमें, राजमहलोंकी छत पर बैठा हुआ था । बैठे हुए उस शुद्ध बुद्धिवालेके मनमें विचार आयें,—" वैताढ्यकी दोनों श्रेणियाँ मेरे वशमें हैं । अस्खलित गतिसे मैंने लीला पूर्वक सर्वत्र विहार करके सांसारिक सुखोपभोग किया है । अब दीक्षा ग्रहण कर पूर्ण-वांछित बनूँ । " इस प्रकार विचार करते हुए उसके सिरपर आकाशसे विजली गिरी । इससे तत्काल ही वह मर गया और देवकुरुमें जाकर युगालिया उत्पन्न हुआ ।

एक वार हनुमान शाश्वत चैत्योंकी वंदना करनेके लिए मेरु पर्वत पर गया। वहाँ उसने सूर्यको अस्त होते हुए, देखा। उसको देखकर सोचने लगा,—" अहो! इस संसारमें उदय और अस्त सबका होता है। सूर्यका दृष्टान्त इसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस नाशमान जगतको धिक्कार! है।" ऐसा विचार कर हनुमान अपने नगरमें गया। वहाँ जाकर उसने, अपने पुत्रोंको राज्यदे, धर्मरत्न आचार्यके पाससे दीक्षा लेली। उसके साथ अन्यान्य साढे सातसौ राजाओंने भी दीक्षा लेली। उसकी पत्नियोंने भी लक्ष्मीवती आर्याके पाससे व्रत अंगीकार कर लिया। अन्तमें हनुमान मुनि ध्यानरूपी अग्निसे सारे कर्मोंको जड़-मूलसे जला, शैलेशी अवस्थाको प्राप्तकर, मोक्षमें गये।

दो देवोंका अयोध्यामें आना; लक्ष्मणकी मृत्यु

हनुमानके दीक्षालेनेकी बात रामने सुनी। वे सोचने लगे:—" भोग सुखका त्याग करके हनुमानने कष्टदायिनी दीक्षा कैसे ग्रहणकी होगी?" सौधर्मेन्द्रने रामके ये विचार अवधिज्ञानद्वारा जाने। उसने अपनी सभामें कहा:— "अहो! कर्मकी गति बड़ी ही विचित्र है। रामके समान चरम शरीरी पुरुष भी इस समय धर्मपर हँस रहे हैं और विषय सुखकी प्रशंसाकर रहे हैं। मगर इसका कारण राम,

लक्ष्मणका प्रगाढ प्रेम है। रामके हृदयमें लक्ष्मणपर जो स्नेह है, वह उनकी वैराग्यवृत्तिको उत्पन्न नहीं होने देता है।"

इन्द्रके वचन सुन, सुधर्मा सभामेंसे दो देवता कौतुकसे रामलक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिए अयोध्यामें गये। वे लक्ष्मणके घर पहुँचे। वहाँ उन्होंने मायासे सारे अन्तःपुरकी स्त्रियोंको करुण-आक्रंदन करती हुईं, लक्ष्मणको दिखाईं। वे विलाप कर रही थीं—"हा पद्म! हा पद्मनयन! हा बन्धुरूप कमलमें सूर्यके समान राम! (विरुद्ध) जगतके लिए भयंकर हा बलभद्र! तुम्हारी अकाल मृत्यु कैसे हो गई?" स्त्रियोंके केश बिखर रहे थे, वे छाती कूट रही थीं। उनकी ऐसी स्थिति देख लक्ष्मणको बहुत दुःख हुआ। वे बोलेः—"ओह! क्या मेरे जीवनके जीवन रामकी मृत्यु हो गई? छलसे घात करनेवाले दुष्ट यमराजने यह क्या किया?" इस प्रकार बोलते बोलते लक्ष्मणके प्राण पखेरु उड़ गये। सच है—

"........कर्म, विपाको दुरतिक्रमः।

(कर्मका फल अमिट है) उनका शरीर स्वर्ण स्तंभके सहारे सिंहासनपर टिका रह गया। मुख खुला हुआ था। लक्ष्मणका शरीर निष्क्रिय स्थिर लेप्यमय मूर्तिके समान मालूम होने लगा। इस भाँति सहजहीमें लक्ष्मणकी मृत्यु होती देख दोनों देवता दुखी हुए। वे पश्चात्ताप करते हुए परस्परमें कहने लगे—"हम लोगोंने यह क्या

कर डाला ? अरे ! विश्वाधार पुरुषको हमने इस भाँति मार डाला !" आत्मनिंदा करते हुए दोनों देवता अपने देवलोकमें चले गये।

लवण-अंकुशका दीक्षा ग्रहण।

लक्ष्मणको मरा जान अन्तःपुरमें हाहाकर मच गया। स्त्रियाँ बाल बिखेर हृदयभेदी आर्त-आक्रंदन करने लगीं। उनका रोना सुन, राम वहाँ दौड़ गये और बोले:— " अहो ! अमंगल जाने विना ही तुमने यह क्या आरंभ किया है ? मैं जीवित हूँ; अनुज बंधु लक्ष्मण भी जीवित है; फिर यह रुदन किस लिए ? लक्ष्मणको कोई रोग पीडित कर रहा है, सो मैं वैद्योंको बुलाकर इसी समय इसका इलाज कराता हूँ।"

तत्पश्चात रामने अनेक वैद्यों और ज्योतिषियोंको बुलाया। जंत्रमंत्र आदिके भी प्रयोग कराये। मगर लक्ष्मणपर किसीने कुछ असर नहीं किया। यह देख कर राम मूर्च्छित होकर गिरपड़े। थोड़ी देरबाद उन्हें चेत हुआ। वे उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। उनका विलाप सुन, बिभीषण, सुग्रीव शत्रुघ्न आदि भी 'हाय ! हम मारे गये' 'हमारा सर्व नाश हो गया' आदि बोलते हुए उच्च कण्ठसे रुदन करने लगे। कौशल्यादि माताएँ और पुत्रवधुएँ भी करुण स्वरमें आक्रंदन करने लगीं और बार बार मूर्च्छित होने लगीं। नगर भरमें प्रत्येक दुकानमें, प्रत्येक

घरमें और प्रत्येक मार्गमें सर्व रसहर्त्ता अद्वैत शोकका साम्राज्य छा गया ।

उस समय लवण और अंकुश रामके पास आये । और नमस्कार करके बोलेः—" हमारे इन लघु पिताकी मृत्युसे संसारसे हम अत्यंत भयभीत हुए हैं । मृत्यु सबहीको अकस्मात आ दबाती है; अतः सबको पहिलेहीसे परलोकके लिए तैयारी कर रखना चाहिए । इसलिए हे पिताजी ! हमें आप दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दीजिए। लघु पिता विना हमारा घरमें रहना सर्वथा अयुक्त है । " फिर रामको नमस्कार कर, लवण और अंकुशने अमृत-घोष मुनिके पाससे दीक्षा लेली । तपकर दोनों मोक्षमें गये ।

रामका कष्ट वर्णन ।

भाईकी मृत्युसे और पुत्रोंके वियोगसे, राम बार बार मूर्च्छित होने लगे और मोहसे शोकाकुल होकर, कहने लगेः—" हे बन्धु ! अभी तो मैंने तेरा कुछ भी अपमान नहीं किया है; फिर तू मौन धारकर, कैसे बैठा है ? हे भ्राता, तेरे मौनावलम्बी होनेसे मेरे पुत्र भी मुझको छोड़-कर, चले गये । छिद्र देखकर, मनुष्योंके शरीरमें सैकड़ों भूत घुस जाते हैं । "

इस प्रकार उन्मत्तके समान रामको बोलते हुए देख, विभीषणादि एकत्रित होकर उनके पास गये और गद्गद कंठ हो कहने लगेः—" हे प्रभो ! आप जैसे वीरोंमें वीर

हैं वैसे ही धीरोंमें धीर भी हैं। इसलिए लज्जोत्पादक अधैर्यका परित्याग कीजिए। अब तो लोकप्रसिद्ध और समयोचित लक्ष्मणका और्ध्व-देहिक[1] कृत्य अंग संस्कार पूर्वक कीजिए।"

उनके ऐसे वचन सुन क्रोधसे रामके होठ फड़कने लगे। वे बोलेः—"रे दुर्जनो! मेरा भ्राता लक्ष्मण तो अभी-तक जीवित है, तो भी तुम ऐसी बातें कैसे कह रहे हो? बन्धु सहित तुम सबका अग्निदाह पूर्वक मृत-कार्य करना चाहिए। यह मेरा भाई तो दीर्घायुषी है। हे भाई! हे वत्स! हे लक्ष्मण! अब तो शीघ्र बोलो। तुम्हारे नहीं बोलनेसे ये दुर्जन प्रवेश करते हैं। बहुत देरसे मुझे क्यों दुखी कर रहे हो? हे भाई! इन दुर्जनोंके सामने तुमको कोप करना उचित नहीं है।"

इस प्रकार कह, लक्ष्मणको कंधेपर उठा, राम वहाँसे दूसरी जगह गये। किसी वार वे लक्ष्मणको स्नानागरमें ले जाकर, स्नान करवाते थे और उनके शरीरपर चंदनका लेप करते थे; किसी वार दिव्य भोजन मँगवा, भोजनसे पात्रोंको भर लक्ष्मणके शवके आगे रखते थे; किसी बार उसको अपनी गोदमें लिटा कर बार बार उसका मुख चूमते थे; किसी वक्त शैया पर सुलाकर वस्त्र ओढाते थे; किसी बार उनको पुकारते थे और फिर आप ही उसका उत्तर

१—प्रेत देहके लिए किया गया कर्म।

देते थे; और किसी बार आप संवाहक–तैल मलनेवाले बन उनके शरीरपर तैल मलते थे। इस प्रकार स्नेहमें उन्मत्त हो, वे सारा कार्य भूल गये। इसी स्थितिमें उन्मत्तताकी बात सुनकर, इन्द्रजीतके, और सुंद राक्षसके पुत्र व अन्यान्य खेचर रामको मारनेकी इच्छासे उनके पास आये। छली शिकारी जिस गुफामें सिंह सोता होता है, उसको आकर घेर लेते हैं, वैसे ही जिस अयोध्यामें उन्मत्त राम रहे हुए थे उसको उन लोगोंने बहुत बड़ी सेनासे आकर घेर लिया। यह देख रामने लक्ष्मणको गोदमें लेकर उस वज्रावर्त धनुषकी टंकारकी जो अकालमें भी संवर्त–प्रलयकालका–प्रवर्त करा देनेवाला था।

उस समय माहेंद्र देवलोकके देव जटायुके जीवका आसन कम्पित हुआ। वह देवताओंको साथ लेकर, अयोध्यामें आया। उन्हें देख, इन्द्रजीतके पुत्रादि यह सोचकर, वहाँसे भाग गये कि देवता अब भी रामके पक्षमें हैं। तत्पश्चात वे यह सोचकर, संसारसे उदास होगये कि, देवता अब भी रामका पक्ष लेते हैं; उनको मारनेवाला विभीषण अब भी रामके पास है। भय और लज्जासे उनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होगया। उन्होंने गृहवास छोड़, जाकर अतिवेग नामा मुनिके पाससे दीक्षा लेली।

रामका प्रबुद्ध होना।

जटायु देव रामके पास आया और उनको बोध देनेके लिए सूखे हुए वृक्षमें बार बार जल सिंचन करने लगा; पत्थरपर खाद डालकर, उसपर कमल बोने लगा; जमीनमें असमयमें ही बीज बोना प्रारंभ किया; और घानीमें बालुरेत डालकर उसमेंसे तैल निकालना चाहा। इस प्रकार वह सारे असाध्य कार्योंको, रामके सामने, साध्य करनेकी कोशिश करने लगा।

यह देखकर राम बोलेः—" रे मुग्ध ! सूखे हुए वृक्षमें क्यों वृथा जल सिंचन कर रहा है? इसमें फल फलना अतिदूरकी बात है, क्योंकि मूसलमें कभी फल नहीं आते हैं। रे मूर्ख ! पाषाण पर कमल कैसे रोप रहा है? निर्जल प्रदेशमें, मरे हुए बैलसे, बीज कैसे बो रहा है? और रेतीमेंसे आजतक किसीने तैल निकलते नहीं देखा है; तू उसमेंसे तैल निकालनेका वृथा प्रयास कैसे कर रहा है? उपायको नहीं जाननेवाले रे मुग्ध! तेरा सारा प्रयत्न वृथा है।"

रामके वचन सुनकर जटायु देव हँसा और बोलाः— " हे भद्र ! यदि तू इतना समझता है, तो फिर अज्ञानताके चिन्ह रूप इस मुर्देको [illegible] उठाये हुए तू क्यों फिरता है ? "

देवकी बात सुन, लक्ष्मणके शरीरको आलिंगन दे रामने देवको कहाः—" अरे ! ऐसे अमंगलकारी शब्द क्या बोलता है ? तू मेरी नजरके सामनेसे दूर हो जा। "

जटायुको रामने जो बात कही वह कृतान्तवदन सारथिने—जो देवलोकमें देवता हुआ था—अवधिज्ञानसे जानी। वह रामको प्रबोध करनेके लिए रामके पास गया। फिर वह पुरुषका वेष बना, एक स्त्रीका शव-लाश-कंधेपर रख, रामके पाससे निकला। उसको रामने कहाः—" जान पड़ता है, तू पागल हो गया है, इसी लिए कंधेपर स्त्रीका शव लेकर, फिरता है। "

कृतान्त देवने उत्तर दियाः—" अरे! तू ऐसे अमंगलकारी शब्द कैसे बोलता है ? यह तो मेरी प्यारी स्त्री है। एक बात और भी है। तू स्वयं इस शवको—मुर्दाको—क्यों लिए हुए फिरता है ? हे बुद्धिमान ! यदि तू मेरी स्त्रीको मरी हुई समझता है, तो फिर अपने कंधे पर रक्खे हुए मुर्देको मरा हुआ क्यों नहीं समझता है ? " इसी प्रकारकी अन्य भी कई बातें उसने रामको कहीं। उनसे राम प्रबुद्ध हुए—रामको विवेक हुआ। उन्होंने सोचा—" सचमुच ही बन्धु लक्ष्मण मर गया है। वह जीवित नहीं है। " रामको वास्तविकताका ज्ञान हुआ समझ कर, जटायु और कृतान्तवदन देवने, अपना परिचय देकर, निजस्थानको प्रस्थान किया।

रामादिका दीक्षा लेना।

तत्पश्चात रामने अनुज बंधु लक्ष्मणका मृतकार्य किया। और दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट कर, उन्होंने शत्रुघ्नको राज्य लेनेकी आज्ञा दी। शत्रुघ्नने भी राज्य और संसारसे विमुख होकर रामके साथ हीं दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। तब राम लवणके पुत्र अनंगदेवको राज्य देकर, चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष—साधनेको तत्पर हुए। श्रावक अर्हद्दासने मुनिसुव्रत स्वामीकी अविच्छिन्न परम्परासे चले आये मुनिसुव्रत ऋषिका नाम बताया। राम उनके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने शत्रुघ्न, विभीषण, और विराध आदि अनेक राजाओंके साथ दीक्षा ली। जब रामभद्र संसारमेंसे निकले तब उनके साथ सोलह हजार अन्यान्य राजा भी वैराग्य प्राप्त कर संसारमेंसे निकले—सोलह हजार राजाओंने उनके साथ दीक्षा ली। इसी भाँति सैंतीस हजार स्त्रियोंने भी दीक्षा ली। वे सब श्रीमती साध्वीके परिवारमें रहीं।

रामका प्रतिमा धारण कर रहना।

गुरुके चरणोंमें रहकर पूर्वांगश्रुतका अभ्यास करते हुए, रामने नाना प्रकारके अभिग्रहों सहित साठ बरस तक तपस्या की। तत्पश्चात गुरुकी आज्ञासे राम एकल विहारी बने और निर्भयताके साथ किसी अटवीकी गिरि-कन्दरामें जाकर रहे। उसी रातको, जब वे ध्यानस्थ

होकर बैठे थे, उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। इससे वे चौदह राजलोकको करस्थ पदार्थ—हाथमें रक्खी हुई चीज—की भाँति देखने लगे। देखते हुए उन्हें विदित हुआ कि—उनके अनुज बन्धुको दो देवताओंने कपटसे मारा है, और अब लक्ष्मण नरकमें पड़े हुए हैं।

इससे राम विचारने लगे—"पूर्वभवमें मैं धनदत्त नामा वणिक पुत्र था। लक्ष्मण भी उस भवमें वसुदत्त नामा मेरा भाई ही था। वसुदत्त उस भवमें किसी प्रकारका सुकृत्य किये विना मरा था। इसलिए कई भवों तक संसारमें भ्रमण करता रहा। फिर इस भवमें मेरा छोटा भाई लक्ष्मण हुआ था। यहाँ भी उसके सौ वर्ष कुमारावस्थामें तीन सौ वर्ष मांडलिकपनमें चालीस वर्ष दिग्विजयमें और ग्यारह हजार पाँचसौ साठ बरस राज्य करनेमें बीत गये। उसकी बारह हजार वर्षकी आयु इसी भाँति किसी प्रकारका सत्कार्य किये विना बीत गई। इसीलिए अन्तमें उसको नरकमें जाना पड़ा। माया करनेवाले देवताओंका इसमें कुछ भी दोष नहीं है। क्यों कि प्राणियोंको कर्मका विपाक इसी तरह भोगना पड़ता है।"

इस प्रकारका विचार कर, राम कर्मोंका उच्छेद करनेमें विशेष रूपसे प्रयत्नशील हुए; वे विशेष रूपसे ममता हीन होकर तप समाधिमें लीन रहने लगे।

एकवार मुनि राम छठे उपवासके अन्तमें पारणा करनेके लिए युगमात्र दृष्टि डालते हुए–चार हाथ प्रमाण मात्र भूमिको देखते हुए–स्यंदनस्थल नामा नगरमें गये। चंद्रके समान नयनोत्सव रूप रामको पृथ्वीपर चलकर आते हुए देख, नगरवासी जन बड़े आनंदके साथ उनके सामने आये। नगरवासी स्त्रियाँ, रामको भिक्षा देनेके लिए नाना भाँतिके भोजनोंसे परिपूर्ण पात्र लेकर अपने घरके दरवाजोंपर खड़ी हो गईं। उस समय नगरवासियोंने इतना हर्ष-कोलाहल मचा दिया कि, जिससे हाथी अपने बंधनस्तंभ उखाड़ कर भागने लगे और घोड़े भड़क कर, कनौती किये हुए बंधन तुड़ानेके लिए कूदने लगे।

राम उज्झित[1] धर्मवाला आहार लेनेवाले थे, इस लिए उन्होंने नगरवासी जो आहार देते थे वह न लेकर, राज्य महलमें प्रवेश किया। वहाँ प्रतिनंदी राजाने उज्झित आहार द्वारा रामको प्रतिलाभा। रामने विधि पूर्वक आहार किया। देवताओंने वसुधारादि पाँच दिव्य किये। फिर जिस वनमेंसे राम आये थे उसीमें वापिस चले गये।

मेरे जानेसे नगरमें क्षोभ हो जाता है; लोगोंका संघट्ट हो जाता है इस लिए यदि मुझे इस वनमें ही भिक्षाके

१ तजा हुआ; भिक्षुकोंको देनेके लिए निकाला हुआ; घरवालोंके जीम चुकनेपर बचा हुआ; आहार।

समय आहार पानी मिलेगा तो मैं पारणा करूँगा; अन्यथा निराहारी ही रहूँगा । ऐसा अभिग्रह कर, परम समाधिमें लीन हो; प्रतिमा–चित्रकी भाँति स्थिर हो रहे । ”

रामका अभिग्रह पूर्ण होना ।

एक वार विपरीत शिक्षा प्राप्त वेग गतिवाला घोड़ा प्रतिनंदीको उसी वनमें ले गया जहाँ राम प्रतिमा धरकर, खड़े थे । वहाँ जाकर नंदनपुण्य नामा सरोवरके बीचमें उसका घोड़ा कीचमें फँस गया । उसकी, सेना भी खोज करती हुई उसके पीछे ही पहुँच गई । कीचमेंसे घोड़ेको निकाल कर, राजाने वहीं पड़ाव डाला । फिर स्नानाहारसे निवृत्त होकर उसने परिवार सहित भोजन किया । उस समय ध्यान पारकर, राम पारणा करनेकी इच्छासे उसके पडावमें गये । प्रतिनंदी राजा उन्हें देखकर उठ खड़ा हुआ । उसने अवशेष आहार पानीसे रामको प्रतिलाभा । ऋषि रामने पारणा किया । आकाशमेंसे पुष्पवृष्टि हुई ।

तत्पश्चात रामने देशना दी । उसको सुनकर प्रतिनंदी आदि राजा सम्यक्त्व सहित बारह व्रतधारी श्रावक हुए । वनवासी देवताओंसे पुजते हुए राम चिरकालतक उसी वनमें रहे । राम मुनि-भवका पार पानेके लिए, एक माससे, दो माससे, तीनमाससे और चार माससे पारणा करने लगे । किसीवार पर्यंकासन लगाकर, किसीवार

खड़े हो भुजाएँ लंबीकर नासाग्र दृष्टि जमाके, किसीवार अंगूठेपर रहकर, और किसीवार एड़ीपर रहकर, इस तरह राम नाना भाँतिके आसनोंद्वारा ध्यानकरने लगे; दुस्तप तपस्या करने लगे।

रामको सीतेन्द्रका उपसर्ग करना; रामको केवलज्ञान होना।

एकवार राम मुनि विहार करते हुए कोटिशिला नामा शिलापर पहुँचे। यह वही शिला थी जिसको लक्ष्मणने विद्याधरोंके सामने उठाया था। राम उसी शिलापर प्रतिमा धारणकर, क्षपक श्रेणीका आश्रय ले, शुक्लध्यानान्तरको प्राप्त हुए। रामकी इस प्रकारकी स्थिति इन्द्र बने हुए सीताके जीवने, अवधिज्ञान द्वारा देखकर, सोचाः—"यदि राम पुनःभवी–गृहस्थी–हो जायँ तो मैं इनके साथ रहूँ। इसलिए मुझे जाकर अनुकूल उपसर्गों द्वारा रामको क्षपक श्रेणीसे च्युत करना चाहिए। क्षपक श्रेणीसे च्युत होकर मरनेपर राम मेरे मित्र रूप देव होंगे।" ऐसा सोचकर सीतेन्द्र रामके पास आये। वहाँ उन्होंने वसंत विभूषित एक बहुत बड़ा उद्यान बनाया। उसमें कोकिलाएँ कूजने लगीं; मलयानिल बहने लगा; पुष्पोंकी सुगंधसे हर्षित और मस्त हो भ्रमर गूँजने लगे और आम्र, चंपक, कंकिल, गुलाब, और बोरसलीके वृक्षोंने कामदेवके नवीन अस्त्ररूप पुष्प धारण किये।

तत्पश्चात सीतेन्द्र सीताका रूप बना, अन्यान्य स्त्रियोंको

साथ ले रामके पास गये और उनको कहने लगेः—" हे प्रिय ! मैं तुम्हारी प्रिया सीता तुम्हारे पास आई हूँ । हे नाथ ! उस समय मैंने, अपने आपको दुखी समझकर दीक्षा लेली थी; और आपके समान प्रेम करने वालेका परित्याग कर दिया था; परन्तु पीछेसे मुझको बहुत पश्चात्ताप हुआ । आज इन विद्याधर कुमारिकाओंने मेरे पास आकर कहा कि, तुम दीक्षा छोड़कर, पुनः रामकी पट्ट रानी बनो । तुम्हारी आज्ञासे हम भी रामकी रानियाँ बनेंगीं । इसलिए हे राम ! इन विद्याधर कन्याओंके साथ ब्याह करो । मैं भी पहिलेकी भाँति ही आपके साथ रमण करूँगी । मैंने आपका जो अपमान किया था, उसके लिए मुझको क्षमा कर दीजिए । "

तत्पश्चात सीतेन्द्रकी मायासे बनी हुई खेचर कुमारियाँ कामदेवको सजीवन करनेमें औषधके समान गीत गाने लगीं । मायावी सीताके वचनोंसे, विद्याधरियोंके संगीतसे और वसंत ऋतुसे राम जरासे भी विचलित नहीं हुए । इस लिए माघ मासकी शुक्ला द्वादशीको रात्रिके पिछले पहरमें राम मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होगया । सीतेन्द्रने और अन्यान्य देवताओंने विधि पूर्वक भक्ति सहित केवलज्ञानमहोत्सव किया । फिर दिव्य स्वर्ण कमल पर बैठकर, दिव्य चामर और दिव्य छत्रसे सुशोभित रामने धर्मदेशना दी ।

रामका सीतेन्द्रको लक्ष्मण और रावणकी गति बताना।

देशनाके अन्तमें सीतेन्द्रने अपने अपराधकी क्षमा माँगकर, राम और लक्ष्मणकी गति पूछी। केवली राम बोले:— "इस समय शंबूक सहित रावण और लक्ष्मण चौथे नरकमें हैं। क्योंकि—

"........ गतयः, कर्माधीना हि देहिनाम्।"

(प्राणियोंकी गति कर्माधीन है।) नरकायु पूर्णकर लक्ष्मण और रावण, पूर्व विदेहके आभूषण रूप विजयावती नगरीमें सुनंदके घर रोहिणीकी कूखसे पुत्ररूपमें पैदा होंगे। जिनदास और सुदर्शन उनका नाम होगा। वहाँ वे निरन्तर जिनधर्मका पालन करेंगे। वहाँसे मरकर, वे सौधर्म देवलोकमें देवता होंगे। वहाँसे चवकर पुनः विजयपुरमें ही श्रावक होंगे। वहाँसे मरकर, हरिवर्ष क्षेत्रमें दोनों पुरुष होंगे। वहाँसे मरकर देवलोकमें जायँगे। वहाँसे चवकर फिरसे विजया पुरीमें कुमारवति राजाके, लक्ष्मी रानीकी कूखसे जन्म लेकर, जयकान्त और जयप्रभ नामा पुत्र होंगे। वहाँ जिन धर्मोक्त संयमपालकर लांतक नामा छठे स्वर्गमें देवता होंगे उस समय तू अच्युत देवलोकमेंसे चवकर, इस भरत क्षेत्रमें, सर्वरत्नमति नामा चक्रवर्ती होगा। वे दोनों लांतक देवलोकमेंसे चवकर इन्द्रायुध और मेघरथ नामा तेरे पुत्र होंगे। वहाँसे तू दीक्षा लेकर वैजयंत नामा दूसरे अनुत्तर विमानमें जायगा। रावणका

जीव इन्द्रायुध, तीन शुभ भव करनेके बाद तीर्थंकर गोत्र बाँधेगा और तीर्थंकर होगा। उस समय तू वैजयंत विमानमेंसे चवकर, उसका गणधर बनेगा। अन्तमें तुम दोनों ही मोक्षमें जाओगे। लक्ष्मणका जीव–जो मेघरथ नामक तेरा पुत्र होगा–शुभ गतियाँ पाकर, पुष्करवर द्वीपके पूर्व विदेहके आभूषण रूप रत्नचित्रा नगरीमें चक्रवर्ती होगा। चक्रवर्तीकी संपत्तिका उपभोग कर, दीक्षा ले, अनुक्रमसे तीर्थंकर होगा और निर्वाण प्राप्त करेगा।

नरकमें शंबूक, रावण और लक्ष्मणका दुःख।

इस प्रकार वृतान्त सुन, पूर्वस्नेहके कारण सीतेन्द्र–लक्ष्मण जहाँ दुःख भोग रहे थे वहाँ–नरकमें गये। वहाँ उन्होंने देखा–शंबूक और रावण सिंहादिका रूपधर क्रोध सहित लक्ष्मणसे युद्धकर रहे हैं। फिर परमाधार्मिकोंने क्रोध पूर्वक उनको, यह कहकर कि, तुम युद्ध करनेवालोंको इसमें कुछ दुःख नहीं होगा, अग्निकुंडमें डाल दिया। वहाँ वे तीनों जलने लगे। उनका शरीर सारा जल गया। वे उच्चस्वरसे पुकारने लग रहे थे। उसी समय परमाधामी देवोंने उन्हें बलपूर्वक खींचकर, तैलकी कुंभीमें डाल दिया। वहाँ देह विलीन होनेपर वे भट्टीमें डाले गये। उसमें तड़ तड़ करके उनके शरीर फटने लगे। इससे वे बहुत दुःखी हुए।

इस प्रकार उन्हें दुःख पाते देख सीतेन्द्रने परमाधार्मिक देवोंसे कहाः—" रे दुष्टो ! क्या तुम जानते नहीं हो, कि ये तीनों उत्तम पुरुष हैं ? हे असुरो ! दूर हो जाओ । इन महात्माओंको छोड़ दो ।" असुर अलग हट गये। फिर सीतेन्द्रने शंबूक और रावणको कहाः—" तुमने पूर्व भवमें ऐसा दुष्कृत्य किया है कि, जिससे तुम ऐसे नरकमें आये हो । अपने दुष्कृत्योंका परिणाम देखकर भी अबतक तुम पूर्वके वैरको क्यों नहीं छोड़ते हो ? " इस प्रकार समझा, उन्हें युद्ध करनेसे रोक सीतेन्द्रने लक्ष्मण और रावणको उनका पूर्वभव उनको बोध होनेके लिए, जैसा कि केवली रामने कहा था, कह सुनाया ।

फिर वे बोलेः—" हे कृपानिधि ! आपने बहुत अच्छा किया जो हमें उपदेश दिया । आपके शुभ उपदेशसे हम हमारे अबतकके सारे दुःख भूल गये हैं । मगर पूर्व जन्मोपार्जित क्रूर कर्मोंने हमको सुदीर्घ कालके लिए यह नरकवास दिया है । इसका विषम दुःख अब कौन मिटायगा ? " उनके ऐसे वचन सुन, सीतेन्द्र सकरुण हो बोलेः—" चलो, मैं तुम तीनोंको इस नरकमेंसे देवलोकमें ले चलता हूँ ।"

तत्पश्चात सीतेन्द्रने उन तीनोंको उठाया । मगर उनका शरीर पारेकी भाँति कणकण होकर उनके हाथमेंसे गिर गया और उनका शरीर वापिस मिल गया । सीतेन्द्रने

दुबारा फिर उन्हें उठाया। दुबारा भी उनका शरीर पहिलेहीकी तरह बिखरकर वापिस मिल गया। तब उन्होंने सीतेन्द्रको कहाः—"हे भद्र ! तुम्हारे यहाँसे उठानेसे हमें और विशेष दुःख होता है, इसलिए हमें छोड़ दो और तुम अपने देवलोकमें जाओ।"

तत्पश्चात उन्हें छोड़कर सीतेन्द्र रामके पास गये। रामको नमस्कार करके शाश्वत अर्हतकी तीर्थयात्रा करनेके लिए वे नंदीश्वरादि तीर्थोंमें गये। वहाँसे लौटते हुए उन्होंने मार्गमें, देवकुरु क्षेत्रमें, भामंडल राजाके जीवको युगलिया रूपमें देखा। पूर्व स्नेहके कारण उसको भली प्रकार उपदेश देकर सीतेन्द्र अपने कल्पमें गये।

रामका निर्वाण गमन।

भगवान रामर्षि केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद पचीस बरस तक पृथ्वीमें विचरणकर, भव्य जीवोंको बोध दे, पन्द्रह हजार वर्षकी आयु पूर्णकर, अन्तमें कृतार्थ हुए। और 'शैलेशीपन' स्वीकार कर शाश्वत सुखवाले आनन्दमय स्थानको—मोक्षको—पाये।

धन्यवाद पत्र।

जिन महाशयोंने पहिले हीसे 'इस ग्रंथकी' ३ या विशेष प्रतियाँ एक साथ खरीदनेका आर्डर देकर हमें उत्साहित किया; उनके नाम धन्यवाद पूर्वक यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं।

ऑनररी मजिस्ट्रेट सेठ केसरीमलजी धामकनिवासी।	१२५	प्रतियाँ।
सेठ लक्ष्मीचंद्रजी धीया प्रतापगढ़ निवासी।	७	"
" मोहनचंद्रजी मूथा दिगरस निवासी।	३	"
" कुंदनमलजी कोठारी दारव्हा निवासी।	३	"
" नेमिचंद्रजी कोठारी तऱ्हाला निवासी।	३	"
" राजमलजी तेजराजजी कोठारी दारव्हा निवासी।	३	"
" स्वर्गीय पेमराजजी आरंभीवालोंके ज्ञा.प्र. केंद्रानमें।	१०	"
" सोभागमलजी कारंजा निवासी।	३	"
" वीरसिंहजी लूनावत बोलपुर निवासी।	३	"
श्रीमान यति अनूपचंद्रजी उदयपुर निवासी	३	"

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

१–मैनेजर, ग्रंथभंडार,

डालमिया बिल्डिंग, लेडी हार्डिंज रोड,

माटूँगा–बम्बई ।

२–मोतीलाल बनारसीदास जैन,

मालिक, पंजाब संस्कृत–पुस्तक–भंडार ।

सेदमीठा बाजार, लाहोर ।

जिसको नहीं निज पूर्वजों औ धर्मका कुछ ज्ञान है।
सच जानिए वह नर नहीं-नर-पशु निरा है और मृतक समान है।

महावीर-हिन्दी-जैनग्रंथमाला।

हमारे यहाँसे इस नामकी एक ग्रंथमाला प्रकाशित होने लगी है। उसमें श्वेतांबराचार्य-रचित प्राकृत और संस्कृत ग्रंथोंका हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित होता है। ग्रंथ सचित्र होते हैं। मालाके स्थायी ग्राहकोंको प्रत्येक ग्रंथ पौनी कीमतमें दिया जाता है।

१ आठ आने पहिले जमाकरानेपर स्थायी ग्राहक होते हैं।

२ स्थायी ग्राहकोंको बरस भरमें कमसे कम ४) रु. की पुस्तकें जरूर लेनी पड़ती हैं।

३ स्थायी ग्राहक यदि ग्राहक नहीं रहना चाहेंगे तो उनके ॥) वापिस नहीं लौटाये जायँगे।

इस मालाका पहिला ग्रंथ, कलिकाल सर्वज्ञ, प्रातःस्मरणीय श्रीमद् हेमचंद्राचार्य-रचित त्रिषष्ठिशलाका-पुरुष-चरित्रके सातवें पर्वका हिन्दी अनुवाद—

जैनरामायण। (सचित्र)

प्रकाशित हो चुका है। इसमें राम, लक्ष्मण, सीता, रावणके मुख्यतासे और हनुमान, अंजनासुंदरी, पवनंजय, वालीके गौणरूपसे चरित्र हैं। प्रसंगवश और भी कई कथायें इसमें आगई हैं। वर्णन करनेका ढंग कितना सुन्दर होगा, सो पाठक स्वयं आचार्य महाराजके नामसे ही जान सकते हैं। हिन्दुओंकी रामायणसे यह बिलकुल भिन्न है। इसके पढ़नेसे पाठकोंको यह भी ज्ञात हो जाता है, कि रामचंद्रजीकी ओरसे युद्ध करने वाले 'वानर' पशु नहीं थे बल्के वे विद्याधार थे। 'वानर' एक वंशका नाम था। इसी तरह रावण आदि 'राक्षस-दैत्य' नहीं थे बल्के राक्षस एक वंशका नाम था। छपाई सफाई बढ़िया। सुंदर कागज है। सुन-